राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 की अपेक्षाओं के अनुरूप शिक्षक– शिक्षा का उद्देश्य प्रत्येक छात्राध्यापक को इस प्रकार समर्थ बनाना है कि वह–

- बच्चों का ख्याल रख सके और उनके साथ रहना पसंद करे।
- सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक संदर्भों में बच्चों को समझ सके।
- व्यक्तिगत अनुभवों से अर्थ निकालने को अधिगम अर्थात सीखना समझे।
- सीखने के तरीके समझे, सीखने की अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा करने के संभावित तरीके जाने तथा सीखने के प्रकार, गति तथा तरीकों के आधार पर विद्यार्थियों की विभिन्नताओं को समझे।
- ज्ञान को, चिंतनशील सीखने की सतत् उभरती प्रक्रिया माने।
- ज्ञान को पाठ्यपुस्तकों के वाह्य ज्ञान के रूप में न देखकर साझा संदर्भों और व्यक्तिगत संदर्भों में उसके निर्माण को देखे।
- उन सामाजिक, पेशेवर और प्रशासनिक संदर्भो के प्रति संवेदनशील हो जिनमें उसे काम करना है।
- ग्रहणशील हो और लगातार सीखता रहे, समाज और विश्व को बेहतर बनाने की दिशा में अपनी जिम्मेदारियों को समझ सके।
- वास्तविक परिस्थितियों में न केवल समझदारी वाले रवैये को अपनाने की उपयुक्त योग्यता का विकास करे बल्कि इस तरह की परिस्थितियों का निर्माण करने के भी योग्य बने।
- उसके भाषायी ज्ञान और दक्षता का आधार ठोस हो।
- व्यक्तिगत अपेक्षाओं, आत्मबोध, क्षमताओं, अभिरूचियों आदि की पहचान कर सके।
- अपना पेशेवर उन्मुखीकरण करने के लिए सोच समझ कर प्रयास करता रहे। यह विशेष परिस्थितियाँ अध्यापक के रूप में उसकी भूमिका तय करने में मदद करेंगी।

डिप्लोमा इन एजुकेशन (डी.एड.)

(शिक्षा में पत्रोपाधि)

दूरस्थ शिक्षा हेतु स्व-अधिगम सामग्री

शाला और समुदाय

प्रथम वर्ष

प्रकाशन वर्ष -2013

निःशुल्क वितरण हेतु

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्,छत्तीसगढ़, रायपुर

डिप्लोमा इन एजुकेशन (डी.एड.)

(शिक्षा में पत्रोपाधि)

दूरस्थ शिक्षा हेतु स्व–अधिगम सामग्री

शाला और समुदाय

प्रथम वर्ष

प्रकाशन वर्ष–2013

निःशुल्क वितरण हेतु

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्,

छत्तीसगढ़, रायपुर

प्रकाशन वर्ष – 2013
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छत्तीसगढ़, रायपुर

राज्य कार्यक्रम प्रभारी
अनिल राय (भा.व.से)
संचालक, राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छत्तीसगढ़, रायपुर

राज्य समन्वयक
ए.लकड़ा,
संयुक्त संचालक,राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छत्तीसगढ़, रायपुर

पाठ्य सामग्री समन्वय
आर. के. वर्मा
यू.के. चक्रवर्ती
डेकेश्वर प्रसाद वर्मा

विषय संयोजक
एस. के. वर्मा
सी.बी.बगरिया

तकनीकी सहयोग एवं सामग्री संकलन
एकलव्य भोपाल, छत्तीसगढ़ शिक्षा संदर्भ केन्द्र, रायपुर,
अजीम प्रेमजी फाउण्डेशन बैंगलुरू

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद रायपुर उन सभी लेखकों/प्रकाशकों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता है जिनकी रचनाएँ/आलेख इस पुस्तक में समाहित है।

प्राक्कथन

''अनिवार्य एवं निःशुल्क बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009'' के निर्देशानुसार समस्त अप्रशिक्षित सेवारत प्रारंभिक शिक्षकों को 5 वर्ष की समय सीमा में प्रशिक्षिण प्राप्त किया जाना है। राज्य के समक्ष यह एक बड़ी चुनौती है,साथ ही एक बड़ा अवसर भी है उन शिक्षकों के परस्पर साथ आने का,अपने अनुभवों को साझा करने का जो पूर्व से ही स्कूलों में बच्चों के साथ कार्य कर रहे हैं। इसी अनुक्रम में राज्य में सेवारत अप्रशिक्षित प्राथमिक शिक्षकों को डी.एड. प्रशिक्षण प्राप्त करने का अवसर डी.एड.दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से उपलब्ध कराया जा रहा है।

आज निश्चित ही शिक्षक की भूमिका में काफी बदलाव आया है। इस बदलती भूमिका के लिए उनको बेहतर तरीके से तैयार करने की आवश्यकता है। दूरस्थ शिक्षा से डी.एड.प्रशिक्षण का यह कार्यक्रम इसी दिशा में एक प्रयास है, जिसे आप सबके सकारात्मक सहयोग से निश्चित ही सफलता मिलेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

इस कार्यक्रम के माध्यम से आप अपने अनुभवों को एक दूसरे के साथ साझा करेंगे तथा और अधिक संवेदनशीलता के साथ स्कूल में अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन कर सकेंगे, बच्चों को उनकी विशेषताओं के साथ बेहतर ढंग से समझ सकेंगे और सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में अपनी भूमिका निर्धारित कर सकेंगे। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 में शिक्षकों की भूमिका के संबंध में कहा गया है कि वे सीखने–सिखाने की परिस्थितियों में उत्साहवर्धक सहयोगी तथा सीखने को सहज बनाने वाले बनें जो अपने विद्यार्थियों को उनकी प्रतिभाओं की खोज में उनकी शारीरिक तथा बौद्धिक क्षमताओं को पूर्णता तक जानने में,उनमें अपेक्षित सामाजिक तथा मानवीय मूल्यों व चरित्र के विकास में तथा जिम्मेदार नागरिकों की भूमिका निभाने में समर्थ बनाएँ।

राज्य में कुछ वर्षों पूर्व से ही डी.एड. का नवीन पाठ्यक्रम एवं पाठ्यसामग्री तैयार कर सेवा पूर्व डी.एड. प्रशिक्षण कार्यक्रम हेतु लागू कर दिया गया है। डी.एड. पाठ्यसामग्री को स्व–अधिगम सामग्री में परिणित कर इसे सेवारत शिक्षकों के अनुरूप तैयार किया गया है।

प्रथम वर्ष के पाठ्यक्रम में इन छः विषयों को सम्मिलित किया गया है–

1. ज्ञान शिक्षाक्रम व शिक्षण शास्त्र।
2. बाल विकास और सीखना।
3. शाला व समुदाय।
4. कला व कला शिक्षण।
5. गणित व गणित शिक्षण।
6. भाषा व भाषा शिक्षण।

इस पाठ्यसामग्री का फोकस विषयवार समझ विकसित करने की अपेक्षा एक एकीकृत समझ विकसित करने में है किसी विशेषीकृत शिक्षण विधि से हटकर एक समग्र शिक्षण विधि जो बच्चों को सीखने में मदद करें।

चयनित पाठ्यसामग्री में कुछ लेखक/प्रकाशकों की पाठ्य सामग्री प्रशिक्षार्थियों के हित को ध्यान में रखकर ज्यों की त्यों ली गई है। कहीं–कहीं स्वरूप में परिवर्तन भी किया गया है, कुछ सामग्री अंग्रेजी की पुस्तकों से लेकर अनुदित की गई है। हमारा प्रयास यह है कि प्रबुद्ध लेखकों की लेखनी का लाभ हमारे भावी शिक्षकों को मिल सके। इग्नू और एन.सी.ई.आर.टी. सहित जिन भी लेखकों/प्रकाशकों की पाठ्यसामग्री किसी भी रूप में उपयोग की गई है, हम उनके ह्रदय से आभारी हैं। हम विद्या भवन सोसायटी उदयपुर, दिगंतर जयपुर, एकलव्य भोपाल, अजीम प्रेमजी फाउण्डेशन बैंगलुरू, आई.सी.आई.सी.आई. फाउण्डेशन पुणे, आई.आई.टी. कानपुर, छत्तीसगढ़ शिक्षा संदर्भ केन्द्र रायपुर के आभारी हैं जिनकी टीम ने एस.सी.ई.आर.टी. और डाइट के संकाय सदस्यों के साथ मिलकर पठन–सामग्री को वर्तमान स्वरूप प्रदान किया।

स्व–अधिगम पाठ्यसामग्री तैयार करने में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े सहयोगियों का हम पुनः आभार व्यक्त करते हैं। पाठ्यक्रम तैयार करने तथा पाठ्य सामग्री के संकलन व लेखन कार्य से जुड़े लेखन समूह सदस्यों को भी हम धन्यवाद देना चाहेंगे जिनके परिश्रम से पाठ्य सामग्री को यह स्वरूप दिया जा सका। पाठ्य–सामग्री के संबंध में शिक्षक–प्रशिक्षकों, प्रशिक्षार्थियों के साथ–साथ अन्य प्रबुद्धजनों, शिक्षाविदों के भी सुझावों व आलोचनाओं की हमें अधीरता से प्रतीक्षा रहेगी जिससे भविष्य में इसे और बेहतर स्वरूप दिया जा सके।

कोई भी पाठ्यक्रम सम्पूर्ण नहीं होता इसमें सुधार की असीम सम्भावनाएं होती है तथा निंरतर परिवर्तन जीवित होने का एक प्रमाण भी है। अतः आपसे अनुरोध है कि सम्पूर्ण पाठ्य–सामग्रियों को पढ़कर अपने सुझाव हमें अवश्य भेजे ताकि पाठ्यक्रम में आवश्यक सुधार कर इसे जीवित रखा जा सके।

धन्यवाद।

संचालक
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण
परिषद्, छत्तीसगढ़,रायपुर

विषय–सूची

इकाई अध्याय	पेज न.
इकाई–1, समाज में विविधता, असमानता एवं भेदभाव	**1–36**
1. विविधता की समझ	**1–10**
2. विविधता एवं भेदभाव	**11–20**
3. जनजातीय समुदाय	**21–26**
4. जाति व्यवस्था का शिक्षा व शिक्षण पर प्रभाव	**27–36**
इकाई–2, समाज में विषमताएँ, असमानता व भेदभाव	**37–98**
5. समाज में विषमताएँ एक परिचय	**37–40**
6. आर्थिक समानता और शिक्षा	**41–49**
7. काम के लिए पलायन तथा बच्चों की शिक्षा	**50–51**
8. प्राथमिक शिक्षा को मज़बूती प्रदान करने वाली पिछली और अगली कड़ियाँ	**52–64**
9. भला यह जेण्डर क्या है?	**65–75**
10. पितृसत्ता क्या है?	**76–81**
11. सामाजिक विषमता एवं बहिष्कार	**82–98**
इकाई–3, संवैधानिक उद्देश्य, मौलिक अधिकार	**99–121**
12. भारत का संविधान : उद्देशिका	**99–102**
13. भारतीय संविधान में मौलिक अधिकार.	**103–114**
14. आर्थिक विकास एवं सामाजिक अवसर	**115–121**
इकाई–4, अंग्रेजी शासन काल में शिक्षा व्यवस्था	**122–154**
15. प्राक्–ब्रिटिश काल में देशज शिक्षा	**122–134**
16. दस्तावेजों से	**135–137**
17. उपनिवेशवाद और प्रभुत्व के सिद्धान्त की तरह शिक्षा	**138–150**
18. समानता की खोज में	**151–154**
इकाई–5, वैकल्पिक सोच व प्रयोग	**155–173**
19. शिक्षा के विषय पर महात्मा गाँधी के विचार	**155–160**
20. टैगोर और गाँधी के शैक्षिक आदर्शों का तुलनात्मक अध्ययन	**161–171**
21 आर्य समाज सुधार आंदोलन का शिक्षा दर्शन/शिक्षा में योगदान	**172–173**
इकाई–6, शिक्षा में समुदाय की भूमिका	**174–181**
22. शालेय प्रबन्धन एवं विकास में सामुदायिक सहभागिता	**174–181**

परियोजना कार्य

1. किसी भी स्कूली कक्षा में उपलब्ध विविधता का दस्तावेजीकरण और उससे शिक्षण कार्य में क्या समस्यायें होंगी व क्या फायदे होंगे.....किस तरह की विविधताएं हैं – क्षमता, रुचि, जाति, धर्म, भाषा, लिंग उम्र, आवास, वर्ग शारीरिक बनावट.....। (इकाई क्र. 1 के संदर्भ में)

2. किसी शाला/कक्षा में होने वाले भेदभाव व असमानता, संवैधानिक उद्देश्यों को प्राप्त करने में कैसे बाधक हैं, चिन्हित करना एवं इस संबंध में बच्चों अभिभावाकों तथा शिक्षकों के विचारों का संकलन करना। (इकाई क्र. 2 के संदर्भ में)

3. 6 से 16 वर्ष के शाला त्यागी बच्चों की सूची बनाना और यह जानने का प्रयत्न करना कि शाला त्यागी के क्या कारण हैं? इनकी शिक्षा के लिए क्या प्रयास किए जा सकते हैं।

4. किसी आवासीय या गैर आवासीय सेतु पाठ्यक्रम के बारे में जानकारी एकत्र कर कार्यक्रम की समीक्षा करनां

5. लड़कियों की शिक्षा पर कक्षा के छात्राओं, अभिभावाकों, शिक्षकों तथा स्थानीय पंचायत प्रतिनिधियों के विचारों का संकलन तथा इस आधार पर उस गांव के लड़कियों की शिक्षा प्रोत्साहन की योजना बनाना। (इकाई क्र. 3 के संदर्भ में)

6. प्राथमिक शिक्षा पर विभिन्न विद्वानों, शिक्षाविदों, विचारकों के विचारों का संकलन तथा इस आधार पर एक नोट तैयार करना कि शिक्षा कैसी हो। (इकाई क्र. 5 के संदर्भ में)

7. कम से कम 5 पालकों से (महिला व पुरुष से अलग–अलग बातचीत करके) शिक्षा से उनकी अपेक्षा समझना, अपने बच्चों की खास बातें, व कमजोरियों को उनसे समझना। (इकाई क्र. 2 के संदर्भ में)

8. विश्व के इतिहास में औपनिवेशिक देशों की सूची बनाइये। किसी एक औपनिवेशिक देश में प्रचलित शिक्षा व्यवस्था पर एक टीप लिखना।

9. समाज में समानता स्थापित करने के लिए राज्य सरकार, केन्द्र सरकार या किसी संगठन द्वारा किये जा रहे प्रयासों के बारे में जानकारी एकत्र करना।

10. किसी ऐसे दो–तीन परिवारों की जानकारी एकत्र करना जो काम की तलाश में वर्ष के कुछ महीने बाहर चले जाते हैं तथा जिनके यहां 6 से 14 साल के बच्चे भी हैं। काम की तलाश में बाहर जाने से उनके बच्चों की शिक्षा में पड़ने वाले प्रभावों पर नोट लिखना।

11. कक्षा एक से पांच तक के किसी एक कक्षा में बच्चों का दिनभर अवलोकन कर यह जानना कि किस–किस कक्षा में बच्चे अपनी मातृभाषा का और मानक हिन्दी का कितना उपयोग करते हैं? वे किस भाषा में अपनी बातें सहजता से रख पाते हैं।

अध्याय – 1

विविधता की समझ

अध्याय की रूपरेखा

- सामान्य परिचय
- पाठ के उद्देश्य
- विषयवस्तु के शीर्षक–उप शीर्षक
  - दोस्ती करना
  - जाति व्यवस्था असमानता का एक अन्य रुप
  - विविधता हमारे जीवन कैसे समृद्ध कर सकती है?
  - भारत में विविधता
  - हम विविधता को कैसे समझें?
  - भौगोलिक स्थितियां विविधता का एक कारक
  - विविधता में एकता
- पाठ का सारांश
- अभ्यास कार्य

सामान्य परिचय

इस पाठ में विविधता को समझने के लिए समीर एक और समीर दो की कहानी दी गई है। जो विभिन्न धर्म एवं आर्थिक स्तर के होने के बावजूद दोस्त बन जाते हैं। इनके बीच की विविधता इन्हें कई मामलों में समृद्ध करती है।इस अध्याय में विविधता और असमानता के बीच अंतर को भी स्पष्ट किया गया है।

अध्याय के उद्देश्य

1. विविधता का अर्थ समझना।
2. अपने आसपास/कक्षा/समाज में विद्यमान विविधता को पहचानना।
3. उपरोक्त में विद्यमान विविधताओं को संसाधन के रूप में देखना। विशेषकर कक्षा में बच्चों के बीच विद्यमान विविधता को संसाधन के रूप में देख पाना।
4. यह समझ पाना कि विविधता हमें समृद्ध करती है।
5. धर्म, रहन–सहन, खानपान, भाषा, त्यौहार में भिन्नता के कारण उपलब्ध विविधता को देखना–समझना।
6. गैर बराबरी अर्थात असमानता और विविधता के मध्य फर्क को समझना।

विविधता से आशय

चित्र1.1

अपनी कक्षा में या अपने चारों तरफ नजर दौड़ाइए। क्या कोई है जो बिलकुल आपकी तरह दिखती हो? इस पाठ में आप पढ़ेंगी कि लोग एक दूसरों से कई मामलों में भिन्न होते हैं। वे न केवल अलग दिखते हैं, बल्कि वे अलग–अलग क्षेत्रों से भी आते हैं। उनके धर्म, रहन–सहन, खान–पान, भाषा, त्यौहार आदि भी भिन्न होते हैं। ये भिन्नताएँ हमारे जीवन को कई तरह से रोचक बनाती हैं।

इन भिन्नताओं के कारण ही भारत में विविधता है। विविधता या अनेकता हमारे जीवन को किस तरह बेहतर बनाती है? भारत इतनी विविधताओं वाला देश कैसे बना? क्या सभी तरह की भिन्नताएँ विविधता का ही भाग होती हैं? चलिए, कुछ उत्तर पाने के लिए हम इस पाठ को पढ़ते हैं।

आप जैसे तीन शिक्षक छात्रों ने ऊपर दिए गये चित्र 1.1 बनाए हैं।

खाली बक्से में आप अपना चित्र बनाइए। क्या आपका चित्र अन्य तीन चित्रों जैसा ही है? हो सकता है कि आपका चित्र इन तीनों से बहुत भिन्न हो जैसे कि ये तीनों चित्र भी आपस में एक–दूसरे से नहीं मिलते हैं। ऐसा इसीलिए कि हम सबका चित्रकारी करने का अपना–अपना एक तरीका होता है। जिस तरह हमारी चित्रकारी में भिन्नता है, उसी तरह हमारे रूप–रंग, खान–पान आदि में भी भिन्नता है।

नीचे दिए प्रश्नों के उत्तर दीजिए और अपने किसी साथी से यह पता कीजिए कि आप आपके साथी के जवाब एक जैसे हैं। शायद नहीं हों।

अपने बारे में निम्नलिखित जानकारी दीजिए :–

1. बाहर जाते समय मैं.....पहनना पसंद करती हूँ।
2. मैं घर में.....भाषा में बात करती हूँ।
3. मेरा पसंदीदा खेल.....है।
4. मुझे.....के बारे में किताबें पढ़ना पसंद है।

हालाँकि ऐसा होगा कि कुछ जवाब आपके जवाबों से मिलते–जुलते होंगे। आप जिस कक्षा का अध्यापन करते हैं वहां के विद्यार्थी कौन–कौन सी भाषाएँ/बोली बोलते हैं? नीचे लिखिए–

_____

_____

अब तक आपको यह अंदाजा हो गया होगा कि कई मामलों में आप उनसे बिलकुल अलग हैं।

दोस्ती करना

क्या ऐसे इंसान से दोस्ती करना आपके लिए आसान होगा जो आपसे बहुत भिन्न है? नीचे दी गई कहानी पढ़ें और इस बारे में सोचें।

मैंने इसे एक मजाक की तरह लिया। मजाक जो कि फटे–पुराने कपड़े पहने उस छोटे–से लड़के के लिए था जो दिल्ली के जनपथ के भीड़–भाड़ वाले चौराहे की लालबत्ती पर अखबार बेचता था। मैं जब भी वहां से साइकिल से गुजरता, वह अंग्रेजी का अखबार हाथ में लहराते हुए मेरे पीछे भागता और उस दिन की सुर्खियों को हिन्दी–अंग्रेजी के मिले–जुले शब्दों में चिल्लाकर सुनाता रहता। इस बार मैं पटरी के सहारे रुका और मैंने उससे हिन्दी का अखबार मांगा। उसका मुंह खुला का खुला रह गया। उसने पूछा, "मतलब, आपको हिन्दी आती है?"

"बिलकुल", मैंने अखबार के पैसे देते हुए कहा। "क्यों? तुमने क्या सोचा?" वह रूका। "पर आप लगते तो. ..अंग्रेज हैं," वह बोला।

"मतलब कि आप हिन्दी पढ़ भी सकते हैं?"

"हाँ, बिलकुल पढ़ सकता हूँ।" इस बार मैं थोड़ा अधीर होते हुए बोला। "मैं हिन्दी बोल सकता हूं, पढ़ सकता हूँ और लिख भी सकता हूँ। मैंने स्कूल में दूसरे ''सब्जेक्ट' (विषय) के साथ हिन्दी पढ़ी है।''

"सब्जेक्ट" उसने पूछा। अब जो कभी स्कूल नहीं गया उसको मैं क्या समझाता कि सब्जेक्ट क्या होता है? "वह कुछ होता है...." मैंने शुरू किया ही था कि बत्ती हरी हो गई और मेरे पीछे गाड़ियों के हॉर्न का शोर सौ गुना बढ़ गया। मैंने भी अपने आप को ट्रेफिक के साथ आगे बढ़ने दिया।

अगले दिन वह फिर से वहां पर था। वह मुस्करा रहा था और मेरी तरफ हिन्दी का अखबार बढ़ाते हुए उसने कहा, "भैया, आपका अखबार। अब बताइए ये सब्जेक्ट क्या चीज है?" अंग्रेजी का यह शब्द उसकी जबान पर अजीब लग रहा था। ऐसा लगा मानो अंग्रेजी में 'सब्जेक्ट' शब्द का जो दूसरा अर्थ है 'प्रजा', उस अर्थ में वह उसका प्रयोग कर रहा है।

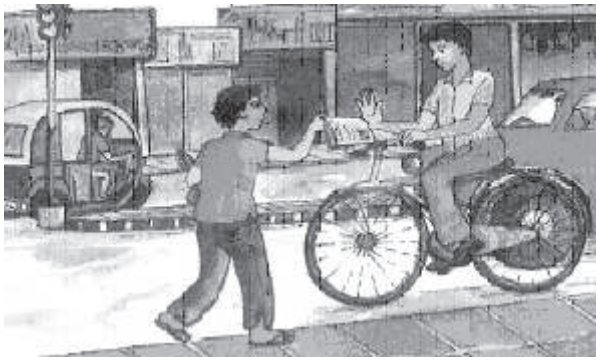

चित्र 1.2

"ओह, यह कुछ पढ़ाई–लिखाई से संबंधित है, "मैंने कहा। उसके बाद चूँकि बत्ती लाल हो गई थी सो मैंने पूछा, "तुम कभी स्कूल गये हो?" "कभी नहीं," उसने जवाब दिया। फिर बात बढ़ाते हुए उसने गर्व से कहा, "मैं जब इतना ऊंचा था तभी से मैंने काम करना शुरू कर दिया था।" उसने मेरी साइकिल की गद्दी के बराबर अपने आप को नापा। "पहले मेरी माँ मेरे साथ आती थी, लेकिन अब मैं अकेले ही कर लेता हूँ।"

"अभी तुम्हारी माँ कहाँ है?" मैंने पूछा। पर तब तक बत्ती हरी हो गई और मैं चल पड़ा। मैंने उसे अपने पीछे कहीं से चिल्लाते हुए सुना, "वह मेरठ में है और उसके साथ....''.बाकी ट्रेफिक के शोरगुल में डूब गया। "मेरा नाम समीर है," उसने अगले दिन कहा और बड़े शर्माते हुए मेरा नाम पूछा, "आपका नाम?" यह तो बड़े आश्चर्य की बात थी। मेरी साइकिल डगमगाई। "मेरा नाम भी समीर है", मैंने बताया। "क्या", उसकी आँखें एकदम से चमक उठीं। "हाँ", मैंने मुस्कराते हुए कहा। "तुम्हें पता है समीर का अर्थ है – हवा, पवन। और पवनपुत्र कौन हैं जानते हो न ?....हनुमान।"

"तो अब तो आप समीर एक और मैं समीर दो," उसने खूब खुश होते हुए कहा। "हाँ ठीक है" मैंने जवाब दिया और अपना हाथ आगे बढ़ाया। "हाथ मिलाओ समीर दो।"

उसका छोटा–सा हाथ मेरे हाथ में एक नन्ही चिड़िया की तरह समा गया। मैं साइकिल चलाकर आगे बढ़ चुका था, पर उसके हाथ की गर्माहट अब तक महसूस कर रहा था।

अगले दिन उसके चेहरे पर उसकी चिरपरिचित मुस्कान नहीं थी। "मेरठ में बड़ी गड़बड़ हो गई है," उसने कहा। "वहाँ दंगों में बहुत लोग मारे गए हैं। "मैंने मुख्य अखबार की सुर्खियों की तरफ देखा। बड़े–बड़े अक्षरों में लिखा था– सांप्रदायिक दंगे। "लेकिन समीर"...मैंने शुरू किया ही था "मैं मुस्लिम समीर हूं," वह बोल पड़ा। "और मेरे सभी लोग मेरठ में हैं। उसकी आँखें भर आई। जब मैंने उसके कंधे पर हाथ रखा, उसने नजर ऊपर नहीं उठाई।

अगले दिन वह चौराहे पर नहीं था न उसके अगले दिन वह दिखा और न आगे फिर कभी। अंग्रेजी या हिन्दी का कोई अखबार मुझे नहीं बता सकता कि मेरा समीर दो आखिर कहां गया।

(पोइली सेनगुप्ता की कहानी द लाइट्स चेंजड पर आधारित)

कुछ प्रश्न

1. समीर एक और समीर दो में कोई तीन अंतर लिखिए जिसे आप विविधता के रुप में देखते हैं–

_____

_____

2. क्या ये अंतर उन्हें दोस्त बनने से रोक पाए? नहीं तो क्यों?

_____

_____

जहाँ समीर एक को अंग्रेजी ज्यादा अच्छी आती है, वहीं समीर दो हिन्दी बोलता है। हालॉकि दोनों की भाषाएँ अलग हैं, फिर भी दोनों एक–दूसरे से बात कर पाए। उन्होंने उसके लिए प्रयास किया क्योंकि उनके लिए बात करना महत्वपूर्ण था। समीर एक और समीर दो की धार्मिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमियाँ अलग हैं। जहाँ समीर एक हिन्दू है, वहीं समीर दो मुसलमान है। दोस्ती हुई क्योंकि दोनों दोस्ती करना चाहते थे। **खान–पान, पहनावा, धर्म, भाषा की ये भिन्नताएँ विविधता के पहलू हैं।**

अपनी विविध धार्मिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों के अलावा समीर एक और समीर दो कई अन्य मामलों में भी एक–दूसरे से अलग थे। उदाहरण के लिए समीर एक ने स्कूल में पढ़ाई की थी जबकि समीर दो अखबार बेचता था। समीर दो को स्कूल जाने का मौका मिला ही नहीं। आपने संभवतः अपने इलाके में ऐसे कई लोगों को देखा होगा जो गरीब हैं और जिनकी भोजन, घर और कपड़े की जरूरतें भी पूरी नहीं हो पातीं। यह फर्क उस फर्क से अलग है। जिसके बारे में हमने पहले पढ़ा। यह विविधता का रूप नहीं है, बल्कि **गैर–बराबरी का रूप है।**

गैर–बराबरी का मतलब है कि कुछ लोगों के पास न अवसर हैं और न ही जमीन या पैसे जैसे संसाधन, जो दूसरों के पास हैं। यह लोगों के बीच मौजूद असमानता यानी गैर–बराबरी है।

जाति व्यवस्था–असमानता का एक अन्य रुप

जाति व्यवस्था असमानता का एक और उदाहरण है। इस व्यवस्था में समाज को अलग–अलग समूहों में बाँटा गया। इस बँटवारे का आधार था कि लोग किस–किस तरह का काम करते हैं। लोग जिस जाति में पैदा होते थे, उसे बदल नहीं सकते थे। उदाहरण के लिए अगर आप कुम्हार के घर में पैदा हो गईं तो आपकी जाति कुम्हार ही होती है और आप बस वही बन सकती थीं। कोई व्यक्ति जाति से जुड़ा अपना पेशा भी नहीं बदल सकता था, इसलिए उस ज्ञान के अलावा किसी अन्य को हासिल करना जरूरी नहीं समझा जाता था। इससे गैर–बराबरी पैदा हुई ।

कुछ प्रश्न

1. समीर दो स्कूल क्यों नहीं जाता था? आपकी राय में अगर वह स्कूल जाना चाहता तो क्या जा पाता?
2. क्या यह सही है कि कुछ बच्चे स्कूल जा पाते हैं और कुछ जा ही नहीं पाते? इस पर अपनी राय लिखिए।
3. सूची बनाइए कि आपने भारत के अलग–अलग प्रांतों के कौन–कौन से व्यंजन खाए हैं।
4. अपनी मातृभाषा के अलावा उन भाषाओं की सूची बनाइए जिनके आप कुछ शब्द भी जानती हैं।
5. उन त्यौहारों की सूची बनाइए जो हो सकता है कि समीर एक और समीर दो मनाते हों।

   समीर एक :.....

   समीर दो :.....

6. क्या आप ऐसी किसी परिस्थिति के बारे में सोच सकती हैं जब आपने उससे दोस्ती की जो आप से बहुत अलग हो? इसका वर्णन एक कहानी के रूप में कीजिए।

विविधता हमारे जीवन को कैसे समृद्ध करती है?

जैसे समीर एक और समीर दो दोस्त बने, ठीक वैसे ही आपकी भी सहेलियां होंगी जो आपसे बहुत अलग होंगी। आपने शायद उनके घर में अलग तरह का खाना खाया होगा, उनके साथ अलग त्यौहार मनाए होंगे, उनके कपड़े पहन कर देखे होंगे और थोड़ी बहुत उनकी भाषा भी सीखी होगी।

आपको शायद तरह–तरह के जानवरों, रानियों, साहसिक घटनाओं या भाषा की कहानियाँ पसंद होंगी। संभव है कि आपको खुद कहानी बनाना भी पसंद होगा। एक अच्छी कहानी पढ़ने से हमेशा खुशी मिलती है। उसको पढ़कर और ज्यादा कहानियाँ बनाने के लिए नए–नए विचार मिलते हैं। जो लोग कहानियाँ लिखते हैं वे विभिन्न स्रोतों–किताबों, वास्तविक जीवन और कल्पना से प्रेरणा लेते हैं।

कुछ लोग जंगल में जानवरों के नजदीक रहे और उन्होंने जानवरों की दोस्ती व लड़ाइयों की अनेक कहानियाँ लिखीं। कुछ अन्य लोगों ने राजा–रानियों के वृतांत पढ़कर प्यार और सम्मान के किस्से लिखे। कुछ ने अपने बचपन की यादों में गोते लगाए, स्कूल और दोस्तों की मधुर यादों से निकलकर कुछ साहस की कहानियाँ लिखीं।

कल्पना कीजिए कि जिनकी कहानियाँ आपने सुनी या पढ़ी हैं, उन सभी कहानीकारों या कहानी सुनाने वालों को ऐसी जगह पर रहना पड़े, जहाँ लोग केवल दो ही रंग के कपड़े पहनते हों – लाल एवं सफेद, एक तरह का खाना खाते हों। (शायद आलू!), समान रूप से केवल दो पशु–पक्षी को पालते हों, उदाहरण के लिए हिरण और कौआ, और केवल सांप–सीढ़ी खेल से अपना मनोरंजन करते हों। ऐसी–जगह रहकर वे कैसी कहानियाँ लिख पाएंगे?

मान लीजिए कि आप एक चित्रकार या कहानीकार हैं जो इस जगह पर रहतीं हैं। ऐसी जगह के जीवन पर एक कहानी लिखिए या चित्र बनाइए।

क्या आप सोचती है कि आपको ऐसी जगह में रहने में मजा आएगा? उन पाँच चीजों की सूची बनाइये जिनकी कमी ऐसी जगह में सबसे ज्यादा खलेगी।

भारत में विविधता

भारत विविधताओं का देश है। हम विभिन्न भाषाएँ बोलते हैं। विभिन्न प्रकार का खाना खाते हैं, अलग–अलग त्यौहार मनाते हैं और भिन्न–भिन्न धर्मों का पालन करते हैं। लेकिन गहराई से सोचें तो वास्तव में हम एक ही तरह की चीजें करते हैं केवल हमारे करने के तरीके अलग हैं।

भारत के लोग विविध तरीकों से नीचे लिखे काम करते हैं। यहाँ उनमें से एक तरीका बताया गया है। दो और तरीके लिखिए

प्रार्थना/इबादत करना	**ईसा मसीह के भजन गाना**		
शादी करना		**अदालत के रजिस्टर में दस्तखत करना**	
विभिन्न प्रकार के कपड़े पहनना			**मणिपुर में औरतों का फनैक पहनना**
अभिवादन करना		**झारखण्ड के आदिवासियों का एक–दूसरे को 'जोहार' कहना**	
चावल पकाना	**मीट या सब्जी डालकर बिरयानी पकाना**		

हम विविधता को कैसे समझें?

करीब दो–सवा दो सौ वर्ष पहले जब रेल, हवाई जहाज, बस और कार हमारे जीवन का हिस्सा नहीं थे, तब भी लोग संसार के एक भाग से दूसरे भाग की यात्रा करते थे। वे पानी के जहाज में, घोड़ों या ऊँट पर बैठकर जाते या फिर पैदल चलकर।

अक्सर ये यात्राएँ खेती और बसने के लिए नई जमीन की तलाश में या फिर व्यापार के लिए की जाती थी। चूँकि यात्रा में बहुत समय लगता था, इसलिए लोग नई जगह पर अक्सर काफी लंबे समय तक ठहर जाते थे। इसके अलावा सूखे और अकाल के कारण भी कई बार लोग अपना घर–बार छोड़ देते थे। उन्हें जब पेट भर खाना तक नहीं मिलता था तो वे नई जगह जा कर बस जाते थे। कुछ लोग काम की तलाश में और कुछ युद्ध के कारण घर छोड़ देते थे।

लोग जब नई जगह में बसना शुरू करते थे तो उनके रहन–सहन में थोड़ा बदलाव आ जाता था। कुछ चीजें वे नई जगह की अपना लेते थे और और कुछ चीजों में वे पुराने ढर्रे पर ही चलते रहते थे। इस तरह उनकी भाषा, भोजन, संगीत, धर्म आदि में नए और पुराने का मिश्रण होता रहता था। उनकी संस्कृति और नई जगह की संस्कृति में आदान–प्रदान होता और धीरे–धीरे एक मिश्रित यानी मिली–जुली संस्कृति उभरती।

अगर अलग–अलग क्षेत्रों का इतिहास देखें तो हमें पता चलेगा कि किस तरह विभिन्न सांस्कृतिक प्रभावों ने वहां के जीवन और संस्कृति को आकार देने में योगदान किया है। इस तरह से कई क्षेत्र अपने विशिष्ट इतिहास के कारण विविधता संपन्न हो जाते थे।

भौगोलिक स्थितियाँ–विविधता का एक कारक

लोग अलग–अलग तरह की भौगोलिक स्थितियों में किस प्रकार सामंजस्य बैठाते हैं, उससे भी विविधता उत्पन्न होती है। उदाहरण के लिए समुद्र के पास रहने में और पहाड़ी इलाकों में रहने में बड़ा फर्क है। न केवल वहां के लोगों के कपड़ों और खान–पान की आदतों में फर्क होगा, बल्कि जिस तरह का काम वे करेंगे, वे भी अलग होंगे। शहरों में अक्सर लोग यह भूल जाते हैं कि उनका जीवन उनके भौतिक वातावरण से किस तरह गहराई से जुड़ा हुआ है। ऐसा इसलिए कि शहरों में लोग विरले ही अपनी सब्जी या अनाज उगाते हैं। वे इन चीजों के लिए बाजार पर ही निर्भर रहते हैं।

आइए, भारत के दो भागों लद्दाख और केरल के उदाहरण के जरिए यह समझने की कोशिश करें कि किसी क्षेत्र की विविधता पर उसके ऐतिहासिक और भौगोलिक कारकों का क्या असर पड़ता है।

कुछ प्रश्न

एटलस में भारत का नक्शा देखिए और उसमें ढूंढ़िए कि ये दोनों क्षेत्र–लद्दाख तथा केरल कहाँ पर हैं। इन दोनों क्षेत्रों की भौगोलिक स्थितियां वहां के भोजन, कपड़े और व्यवसाय/पेशे को कैसे प्रभावित करती हैं? उनकी सूची बनाइए।

लद्दाख जम्मू और कश्मीर के पूर्वी हिस्से में पहाड़ियों में बसा एक रेगिस्तानी इलाका है। यहॉ पर बहुत ही कम खेती संभव है, क्योंकि इस क्षेत्र में बारिश बिलकुल नहीं होती और यह इलाका हर वर्ष काफी लंबे समय तक बर्फ से ढँका रहता है। इस क्षेत्र में बहुत ही कम पेड़ उग पाते हैं। पीने के पानी के लिए लोग गर्मी के महीनों में पिघलने वाली बर्फ पर निर्भर रहते हैं।

यहाँ के लोग एक खास किस्म की भेड़ पालते हैं जिससे पश्मीना ऊन मिलता है। यह ऊन कीमती है, इसीलिए पश्मीना शाल बड़ी महँगी होती है। लद्दाख के लोग बड़ी सावधानी से इस ऊन को इकट्ठा करके कश्मीर के व्यापारियों को बेच देते हैं। मुख्यतः कश्मीर में ही पश्मीना शालें बुनी जाती हैं।

यहाँ के लोग दूध से बने पदार्थ, जैसे मक्खन, चीज (खास तरह का छेना) एवं मांस, खाते हैं। हर एक परिवार के पास कुछ गाय, बकरी और याक होती है।

रेगिस्तान होने का यह मतलब नहीं कि व्यापारी यहाँ आने के लिए आकर्षित नहीं हुए। लद्दाख तो व्यापार के लिए एक अच्छा रास्ता माना गया क्योंकि यहॉ कई घाटियाँ हैं जिनसे गुज़र कर मध्य एशिया के काफ़िले उस इलाके में पहुँचते थे जिसे आज तिब्बत कहते हैं। ये काफ़िले अपने साथ मसाले, कच्चा रेशम, दरियाँ, आदि लेकर चलते थे।

लद्दाख–ऊँचे पहाड़ों वाला रेगिस्तानी इलाका

चित्र1.3

लद्दाख के रास्ते ही बौद्ध धर्म तिब्बत पहुँचा। लद्दाख को छोटा तिब्बत भी कहते हैं। करीब चार सौ साल पहले यहाँ पर लोगों का इस्लाम धर्म से परिचय हुआ और अब यहाँ अच्छी–खासी संख्या में मुसलमान रहते हैं। लद्दाख में गानो और कविताओं का बहुत ही समृद्ध मौखिक संग्रह है। तिब्बत का ग्रंथ ''केसर सागा'' लद्दाख में काफी प्रचलित है। उसके स्थानीय रुप को मुसलमान और बौद्ध दोनों ही लोग गाते हैं और उस पर नाटक खेलते हैं।

केरल भारत के दक्षिणी–पश्चिमी कोने में बसा हुआ राज्य है। यह एक तरफ समुद्र से घिरा हुआ है और दूसरी तरफ पहाड़ियों से। इन पहाड़ियों पर विविध प्रकार के मसाले जैसे कालीमिर्च, लौंग, इलायची आदि उगाए जाते हैं। इन मसालों के कारण यह क्षेत्र व्यापारियों के लिए बहुत ही आकर्षक बना।

पश्मीना शाल बुनती हुई औरतें

चित्र1.4

सबसे पहले अरबी एवं यहूदी व्यापारी केरल आए। ऐसा माना जाता हैं कि ईसा मसीह के धर्मदूत संत थॉमस लगभग दो हजार साल पहले यहाँ आए। भारत में ईसाई धर्म लाने का श्रेय उन्हीं को जाता है। अरब से कई व्यापारी यहाँ आकर बस गए। इब्नबतूता ने, जो करीब सात सौ साल पहले यहाँ आए, अपने यात्रा वृत्तांत में मुसलमानों के जीवन का विवरण देते हुए लिखा है कि मुसलमान समुदाय की यहाँ बड़ी इज्जत थी।

वास्को डि गामा पानी के जहाज से यहाँ पहुँचे तो पुर्तगालियों ने यूरोप से भारत तक का समुद्री रास्ता जाना।

इन सभी ऐतिहासिक प्रभावों के कारण केरल के लोग विभिन्न धर्मों का पालन करते हैं जिनमें इस्लाम, ईसाई, हिन्दू एवं बौद्ध धर्म शामिल हैं।

चीन के व्यापारी भी केरल आए। यहाँ पर मछली पकड़ने के लिए जो जाल इस्तेमाल किये जाते हैं वे चीनी जालों से हू–ब–हू मिलते हैं और उन्हें ''चीना–वला'' कहते हैं।

इसमें 'चीन' शब्द इस बात की ओर इशारा करता है कि उसकी उत्पत्ति कहाँ हुई होगी। केरल की उपजाऊ जमीन और जलवायु चावल की खेती के लिए बहुत उपयुक्त है और वहॉ के लोग मछली, सब्जी और चावल खाते हैं।

जहाँ केरल और लद्दाख की भौगौलिक स्थिति एक–दूसरे से बिलकुल अलग हैं, वहीं हम यह भी देखते

हैं कि दोनों क्षेत्रों के इतिहास में एक ही प्रकार के सांस्कृतिक प्रभाव है। दोनों ही क्षेत्रों को चीन और अरब से आने वाले व्यापारियों ने प्रभावित किया। जहाँ केरल की भौगोलिक स्थिति ने मसालों की खेती संभव बनाई, वही लद्दाख की विशेष भौगोलिक स्थिति और ऊन ने व्यापारियों को अपनी ओर खींचा। इस तरह पता चलता है कि किसी भी क्षेत्र के सांस्कृतिक जीवन का उसके इतिहास और भूगोल से प्रायः गहरा रिश्ता होता है।

मछली पकड़ने का चीनी जाल

चित्र 1.5

विविध संस्कृतियों का प्रभाव केवल बीते हुए कल की बात नहीं है। हमारे वर्तमान जीवन का आधार ही काम के लिए एक जगह से दूसरी जगह जाना है। हरएक कदम के साथ हमारे सांस्कृतिक रीति–रिवाज और जीने का तरीका धीरे–धीरे उस नए क्षेत्र का हिस्सा बन जाते हैं जहाँ हम पहुँचते हैं। ठीक इसी तरह अपने पड़ोस में हम अलग–अलग समुदायों के लोगों के साथ रहते हैं। अपने रोजमर्रा के जीवन में हम मिल–जुलकर काम करते हैं और एक–दूसरे के रीति–रिवाज और परंपराओं में घुलमिल जाते हैं।

कुछ प्रश्न

1. केरल और लद्दाख के लोगों में किस–किस तरह की भिन्नताएँ एवं समानताएँ हैं? और क्यों है?
2. भारत के विभिन्न क्षेत्रों में पाए जाने वाले खानपान की भिन्नताओं को चिन्हित कर भिन्नता के कोई दो भौगोलिक कारणों पर विचार कीजिए।

विविधता में एकता

भारत की विविधता या अनेकता को उसकी ताकत का स्रोत माना गया है। जब अंग्रेजों का भारत पर राज था तो विभिन्न धर्म, भाषा और क्षेत्र की महिलाओं और पुरुषों ने अंग्रेजों के खिलाफ मिलकर लड़ाई लड़ी थी। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में अलग–अलग परिवेशों के लोग शामिल थे। उन्होंने एकजुट होकर आंदोलन किया, इकट्ठे जेल गए। और अंग्रेजों ने सोचा था कि वे भारत के लोगों में फूट डाल सकते हैं क्योंकि उनमें काफी विविधताएँ हैं और इस तरह उनका राज चलता रहेगा। मगर लोगों ने दिखला दिया कि वे एक–दूसरे से चाहे कितने ही भिन्न हों, अंग्रेजों के खिलाफ लड़ी जाने वाली लड़ाई में वे सब एक थे।

दिन खून के हमारे, प्यारे न भूल जाना
खुशियों में अपनी हम पर, आंसू बहा के जाना
सैयाद ने हमारे, चुन–चुन के फूल तोड़े
वीरान इस चमन में, कोई गुल खिला के जाना
दिन खून के हमारे...
गोली खा के सोये, जलियां बाग में हम
सूनी पड़ी कब्र पर, दिया जला के जाना
दिन खून के हमारे...

हिन्दू औ' मुस्लिमों की, होती है आज होली
बहते हैं एक रंग में, दामन भीगो के जाना
दिन खून के हमारे...
कुछ जेल में पड़े हैं, कुछ कब्र में गड़े हैं
दो बूंद आंसू उनपर, प्यारे बहा के जाना
दिन खून के हमारे...

– भारतीय जन नाट्य संघ (इप्टा)

यह गीत जलियांवाला बाग हत्याकांड के बाद अमृतसर में गाया गया था। इस हत्याकांड में एक ब्रिटिश जनरल ने उन शांतिप्रिय, निहत्थे लोगों पर खुले आम गोलियां चलवा दी थीं जो बाग में इकट्ठे होकर सभा कर रहे थे। महिला–पुरुष,हिन्दू–मुसलमान एवं सिख कितने सारे लोग थे, जो अंग्रेजों की पक्षपातपूर्ण नीति का विरोध करने के लिए जमा हुए थे। उसमें से बहुत लोगों की जानें गईं और उससे भी ज्यादा घायल हुए। यह गीत उन्हीं शहीदों की याद में गाया गया था।

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान उभरे गीत और चिन्ह विविधता के प्रति हमारा विश्वास बनाए रखते हैं। क्या आप भारतीय झण्डे की कहानी जानती हैं? स्वतंत्रता संग्राम के दौरान ही भारत के झण्डे को परिकल्पना की गई थी। इस झण्डे को सारे भारत में लोगों ने अंग्रेजों के खिलाफ इस्तेमाल किया था।

जवाहरलाल नेहरू ने अपनी किताब 'भारत की खोज' में लिखा कि भारतीय एकता कोई बाहर से थोपी हुई चीज नहीं है, बल्कि ''यह बहुत ही गहरी है जिसके अंदर अलग–अलग तरह के विश्वास और प्रथाओं को स्वीकार करने की भावना है। इसमें विविधता को पहचाना और प्रोत्साहित किया जाता है।'' यह नेहरू ही थे जिन्होंने भारत की विविधता का वर्णन करते हुए 'अनेकता में एकता' का विचार हमें दिया।

रविन्द्रनाथ टैगोर द्वारा रचित हमारा राष्ट्रगान भी भारतीय एकता की ही एक अभिव्यक्ति है। राष्ट्रगान किस तरह से एकता का वर्णन करता है, इसे अपने शब्दों में लिखिए।

पाठ का सारांश

1. महिला पुरुष, लड़का–लड़की, के रुप में लैंगिक विविधता, रीति–रिवाजों में भिन्नता, शारीरिक क्षमताओं में भिन्नता आदि विविधता के अनेक रुप हैं।
2. उपरोक्त मे से अनेक विविधता हमारे आसपास में विद्यमान होना स्वाभाविक है।
3. इन विविधताओं को हमें स्वाभाविक रुप में देखना होगा।
4. इन विविधताओं का उपयोग एक दूसरे से कुछ न कुछ सीखने अर्थात संसाधन के रुप में करना चाहिए।
5. विविधता, असमानता एवं भेदभाव तीनों अलग–अलग हैं।

अभ्यास

1. अपने इलाके में मनाए जाने वाले विभिन्न त्यौहारों की सूची बनाइए। इनमें से कौन–से त्यौहार सभी समुदायों द्वारा मनाए जाते हैं?
2. आपके विचार में भारत की समृद्ध एवं विविध विरासत आपके जीवन को कैसे बेहतर बनाती है।
3. आपके अनुसार 'अनेकता में एकता' का विचार भारत के लिए कैसे उपयुक्त है? 'भारत की खोज' किताब से लिए गए इन वाक्यांश में नेहरू भारत की एकता के बारे में क्या कहना चाह रहे है?
4. जलियावाला बाग हत्याकांड के ऊपर लिखे गए गाने की उस पंक्ति को चुनिए जो आपके अनुसार भारत की एकता को निश्चित रूप से झलकाती है।
5. लद्दाख एवं केरल की तरह भारत का कोई एक क्षेत्र चुनिए और अध्ययन कीजिए कि कैसे उस क्षेत्र की विविधता का ऐतिहासिक एवं भौगोलिक कारक आपस में जुड़े हुए हैं?

संदर्भ ग्रंथ

सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन–1 कक्षा 6 सामाजिक विज्ञान की पुस्तक, एन.सी.ई.आर.टी प्रकाशन, 2007.

भारतीय समाज, श्यामाचरण दुबे, अनुवाद–अंदना मिश्र, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली।

| | | | | | | | | |

अध्याय – 2
विविधता और भेदभाव

अध्याय की रूपरेखा

- सामान्य परिचय
- अध्याय के उद्देश्य
  - पूर्वाग्रह
  - लड़के और लड़की में भेदभाव
  - रुढ़िबद्ध धारणा बनाना
  - भेदभाव
  - भेदभाव का सामना करने पर
  - समानता के लिए संघर्ष
- अभ्यास कार्य
- परियोजना कार्य

सामान्य परिचय

लोग अलग–अलग रुचि, क्षमता विचार आदि के होते हैं। ऐसी विभिन्नता के कारण कुछ लोगों को अलग–थलग किया जाता है, सामान्य सुविधा व अवसरों से वंचित रखा जाता है। यानी कि भेदभाव किया जाता है, या उनसे असमान व्यवहार किया जाता है। इस पठन सामग्री में इसी विषय पर शुरुआती चर्चा है। कई बार जो लोग दूसरों से अलग होते हैं उन्हें चिढ़ाया जाता है, उनका मज़ाक उड़ाया जाता है या फिर उन्हें कई गतिविधियों या समूहों में शामिल नहीं किया जाता। अगर हमारे दोस्त या दूसरे लोग हमारे साथ ऐसा व्यवहार करें तो हमें दुख होता है, गुस्सा आता है और असहाय महसूस करते हैं। क्या आपने कभी सोचा है कि ऐसा क्यों होता है?

इस पाठ में हम यह समझने की कोशिश करेंगे कि ऐसे अनुभव हमारे समाज और हमारे आस–पास मौजूद असमानताओं से कैसे जुड़े हुए हैं।

अध्याय के उद्देश्य

1. हमारे आसपास किस–किस प्रकार की विविधताएं हैं?
2. पूर्वाग्रह क्या हैं? लोगो के मन में किस–किस तरह के पूर्वाग्रह होते हैं?
3. रूढ़ीबद्ध धारणाएं क्या हैं? पूर्वाग्रह और रूढ़ीबद्ध धारणाओं के मध्य क्या संबंध होते हैं?
4. किसी भेदभाव के पीछे किस तरह के पूर्वाग्रह होते हैं?
5. क्या लैंगिक भेदभाव के पीछे भी किसी प्रकार के पूर्वाग्रह हैं?
6. विविधता, पूर्वाग्रह तथा भेदभाव के मध्य किस तरह के सम्बंध होते हैं?

यह पठन सामग्री राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, द्वारा प्रकाशित कक्षा 6 की पाठ्यपुस्तक सामाजिक विज्ञान, सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन – 1, अध्याय 2 पृष्ठ क्र. 15 – 28 से ली गई है।

हम क्या हैं और हम कैसे हैं, यह कई चीज़ों पर निर्भर करता है। हम कैसे रहते हैं, कौन–सी भाषाएं बोलते हैं, क्या खाते हैं, क्या पहनते हैं, कौन–से खेल खेलते हैं, कौन–से उत्सव मनाते हैं– इन सब पर हमारे रहने की जगह के भूगोल और उसके इतिहास का असर पड़ता है।

अगर आप संक्षेप में ही निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान दें तो भी यह अन्दाज़ा लग जाएगा कि भारत कितनी विविधताओं वाला देश है।

चित्र 2.1

संसार में आठ मुख्य धर्म हैं। भारत में उन आठों धर्मों के अनुयायी यानी मानने वाले रहते हैं। यहाँ सोलह सौ से ज़्यादा भाषाएँ बोली जाती हैं जो लोगों की मातृभाषाएँ हैं। यहाँ सौ से भी ज्यादा तरह के नृत्य किए जाते हैं।

यह विविधता हमेशा खुश होने का कारण नहीं बनती। हम उन लोगों के साथ सुरक्षित एवं आश्वस्त महसूस करते हैं जो हमारी तरह दिखते हैं, बात करते हैं, कपड़े पहनते हैं और हमारी तरह सोचते हैं। कभी–कभी जब हम ऐसे लोगों से मिलते हैं जो हमसे बहुत भिन्न होते हैं, तो हमें वे बहुत अजीब और अपरिचित लग सकते हैं। कई बार हम समझ ही नहीं पाते या जान ही नहीं पाते कि वे हमसे अलग क्यों हैं। लोग अपने से अलग दिखने वालों के बारे में खास तरह की राय बना लेते हैं।

पूर्वाग्रह

शहरी एवं ग्रामीण इलाकों में रहने वाले लोगों के बारे में नीचे कुछ कथन दिए गए हैं। ग्रामीण–शहरी लोगों के जिन कथनों से आप सहमत हैं, उन पर सही का निशान लगाइए :

ग्रामीण लोग

आधे से ज्यादा भारतीय गाँवों में रहते हैं।

ग्रामीण लोग अपने स्वास्थ्य को लेकर सतर्क नहीं होते। वे बहुत अंधविश्वासी होते हैं।

गांव के लोग बहुत पिछड़े हुए होते हैं और वे कृषि की आधुनिक प्रोद्योगिकी का इस्तेमाल करना पसंद नहीं करते हैं।

फसल की बुवाई और कटाई के समय परिवार के लोग खेतों में 12 से 14 घंटे तक काम करते हैं।

ग्रामीण लोग काम की तलाश में शहरों की ओर पलायन करने को बाध्य होते हैं।

शहरी लोग

शहरी जीवन बड़ा आसान होता हैं। यहाँ के लोग बिगड़े हुए और आलसी होते हैं।

शहरों में लोग अपने परिवार के सदस्यों के साथ बहुत कम समय बिताते हैं।

शहरी लोग केवल पैसे की चिन्ता करते हैं, लोगों की नहीं।

शहरी लोगों पर भरोसा नहीं किया जा सकता, वे चालाक और भ्रष्ट होते हैं।

शहरों में रहना बहुत महंगा पड़ता हैं। लोगों की कमाई का एक बहुत बड़ा हिस्सा किराए और आने–जाने में खर्च हो जाता हैं।

ऊपर लिखे कुछ कथन ग्रामीण लोगों को गन्दे, अन्धविश्वासी एवं अज्ञानी की तरह देखते हैं, जबकि शहर में रहने वाले लोगों को आलसी, चालाक एवं सिर्फ पैसे से सरोकार रखने वालों की तरह देखते हैं।

जब हम किसी के बारे में पहले से कोई राय बना लेते हैं और उसे हम अपने दिमाग में बिठा लेते हैं तो वह पूर्वाग्रह का रूप ले लेती हैं। ज़्यादातर यह राय नकारात्मक होती है। जैसा कि ऊपर के कथनों में दिया गया है – लोगों को आलसी, चालाक या कंजूस मानना भी पूर्वाग्रह है।

जब हम यह सोचने लगते हैं कि किसी काम को करने का कोई एक तरीका ही सबसे अच्छा और सही है, तो हम अक्सर दूसरों की इज्ज़त नहीं कर पाते जो उसी काम को दूसरी तरह से करना पसन्द करते हैं। उदाहरण के लिए अगर हम सोचें कि अँग्रेज़ी सबसे अच्छी भाषा है और दूसरी भाषाएँ महत्वपूर्ण नहीं हैं, तो हम अन्य भाषाओं को बहुत नकारात्मक रूप से देखेंगे। परिणामस्वरूप हम उन लोगों की शायद इज्ज़त नहीं कर पाएँगे जो अँग्रेज़ी के अलावा अन्य भाषाएँ बोलते हैं।

हम कई चीज़ों के बारे में पूर्वाग्रही हो सकते हैं – लोगों के धार्मिक विश्वास, उनकी चमड़ी का रंग, जिस क्षेत्र से वे आते हैं, जिस तरह से वे बोलते हैं, जैसे कपड़े वे पहनते हैं इत्यादि।

उन कथनों को फिर से देखिए, जो आपको ग्रामीण एवं शहरी लोगों के बारे में सही लगे। क्या आपके दिमाग में ग्रामीण या शहरी लोगों को लेकर किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह हैं? क्या दूसरे लोगों के दिमाग में भी ये पूर्वाग्रह हैं? लोगों के दिमाग में ये पूर्वाग्रह क्यों होते हैं? जिन पूर्वाग्रहों को आपने अपने आस–पास महसूस किया है उनकी एक सूची बनाइए। ये पूर्वाग्रह लोगों के व्यवहार को कैसे प्रभावित करते हैं?

पूर्वाग्रह	व्यवहार को कैसे प्रभावित करते हैं?

अक्सर दूसरों के बारे में बनाए गए हमारे पूर्वाग्रह इतने पक्के होते हैं कि हम उनसे दोस्ती नहीं करना चाहते। इस वजह से कई बार हमारा व्यवहार ऐसा होता है कि हम उन्हें दुख पहुँचा देते हैं।

लड़के और लड़की में भेदभाव

समाज में लड़के और लड़कियों में कई तरह से भेदभाव किया जाता है। हम सभी इस भेदभाव से परिचित हैं। एक लड़का या लड़की होने का अर्थ क्या होता है? आपमें से कई लोग कहेंगे ''हम लड़के या लड़की की तरह जन्म लेते हैं। यह तो ऐसे ही होता है। इसमें सोचने वाली क्या बात है?'' आइए, देखें कि क्या सच्चाई यही है?

चित्र 2.2

नीचे दिए गए कथनों की सूची में से तालिका को भरिए। अपने उत्तर के कारणों पर विचार कर लिखिए।

1. वे बहुत ही सुशील हैं।

   वे रोते नहीं।

2. उनका बात करने का तरीका बड़ा सौम्य और मधुर है।

   वे ऊधमी हैं। वे खेल में निपुण हैं।

3. वे शारीरिक रूप से बलिष्ठ हैं।

   वे शरारती हैं। वे भावुक हैं।

4. वे नृत्य करने और चित्रकारी में निपुण हैं।

   वे खाना पकाने में निपुण हैं।

तालिका

लड़का	लड़की	ऐसा सोचने के कारण

अगर हम इस कथन को लें कि 'वे रोते नहीं' तो आप देखेंगे कि यह गुण आम तौर पर लड़कों या पुरुषों के साथ जोड़ा जाता है। बचपन में जब लड़कों को गिर जाने पर चोट लग जाती है तो माता–पिता एवं परिवार के अन्य सदस्य अक्सर यह कहकर चुप कराते हैं कि 'रोओ मत। तुम तो लड़के हो। लड़के बहादुर होते हैं, रोते नहीं हैं'। जैसे–जैसे बच्चे बड़े होते जाते हैं, वे यह विश्वास करने लगते हैं कि लड़के रोते नहीं हैं।

यहाँ तक कि अगर किसी लड़के को रोना आए भी तो वह अपने आप को रोक लेता है। लड़का यह मानता है कि रोना कमज़ोरी की निशानी है। हालाँकि लड़कों और लड़कियों दोनों का कभी–कभी रोने का मन करता है, खासकर जब उन्हें गुस्सा आए या दर्द हो। लेकिन बड़े होने तक लड़के सीख जाते हैं या अपने को सिखा लेते हैं कि रोना नहीं है। अगर एक बड़ा लड़का रोए तो उसे लगता है कि दूसरे उसे चिढाएँगें या उसका मज़ाक बनाएँगे। इसलिए वह दूसरों के सामने रोने से अपने आप को रोक लेता है।

स्रोत–व्हाईआर यू अफेड टू होल्ड माई हैंड, शीला धीर।

'वे कोमल एवं मृदु स्वभाव की हैं' 'वे बहुत ही सुशील हैं ऐसे कथनों पर विचार कीजिए कि ये कैसे केवल लड़कियों पर लागू किए जाते हैं। क्या लड़कियों में ये गुण जन्म से ही होते हैं या वे ऐसा व्यवहार समाज से सीखतीं हैं? आपकी उन लड़कियों के बारे में क्या राय है जो कोमल एवं मृदु स्वभाव की नहीं होतीं और शरारती होती हैं?

हम लगातार यह सुनते रहते हैं कि ''लड़के ऐसे होते हैं'' और ''लड़कियाँ ऐसी होती हैं।'' समाज की इन मान्यताओं को हम बिना सोचे–समझे मान लेते हैं। हम विश्वास कर लेते हैं कि हमारा व्यवहार इनके अनुसार ही होना चाहिए। हम सभी लड़कों और लड़कियों को उसी छवि के अनुरूप देखना चाहते हैं।

रूढ़िबद्ध धारणाएँ बनाना

जब हम सभी लोगों को एक ही छवि में बाँध देते हैं या उनके बारे में पक्की धारणा बना लेते हैं, तो उसे रूढ़िबद्ध धारणा (Stereotype) कहते हैं। कई बार हम किसी खास देश, धर्म, लिंग के होने के कारण किसी को 'कंजूस' 'अपराधी' या 'बेवकूफ' ठहराते हैं। ऐसा दरअसल उनके बारे में मन में एक पक्की धारणा बना लेने के कारण होता है। हर देश, धर्म आदि में हमें कंजूस, अपराधी, बेवकूफ लोग मिल ही जाते हैं। सिर्फ इसीलिए कि कुछ लोग उस समूह में वैसे हैं, पूरे समूह के बारे में ऐसी राय बनाना वाज़िब नहीं हैं। इस प्रकार की धारणाएँ हमें प्रत्येक इन्सान को एक अनोखे और अलग व्यक्ति की तरह देखने से रोक देती हैं। हम नहीं देख पाते कि उस व्यक्ति के अपने कुछ खास गुण और क्षमताएँ हैं जो दूसरों से अलग हैं।

रूढ़िबद्ध धारणाएँ बड़ी संख्या में लोगों को एक ही प्रकार के खाँचे में जड़ देती हैं। जैसे माना जाता था कि हवाई जहाज उड़ाने का काम लड़कियाँ नहीं कर सकतीं। इन धारणाओं का असर हम सब पर पड़ता है। कई बार ये धारणाएँ हमें ऐसे काम करने से रोकती हैं जिनको करने की काबलियत शायद हममें हो।

> मुसलमानों के बारे में यह आम रूढ़िबद्ध धारणा है कि वे लड़कियों को पढ़ाने में रुचि नहीं लेते, इसलिए उन्हें स्कूल नहीं भेजते। जबकि अध्ययन यह दिखा रहे हैं कि मुसलमानों की गरीबी इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण है। गरीबी की वजह से ही वे लड़कियों को स्कूल नहीं भेज पाते या स्कूल से जल्दी निकाल लेते हैं। जहाँ पर भी गरीबों तक शिक्षा पहुँचाने के प्रयास किए गए हैं, वहाँ मुस्लिम समुदाय के लोगों ने अपनी लड़कियों को स्कूल भेजने में रुचि दिखाई है। उदाहरण के तौर पर केरल में स्कूल प्रायः घर के पास हैं। सरकारी बस की सुविधा बहुत अच्छी है, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षकों को स्कूल पहुँचने में मदद मिलती है। उनमें 60 प्रतिशत से ज्यादा महिला शिक्षक हैं। इन सभी कारकों ने बहुत सारे गरीब परिवार के बच्चों को स्कूल जाने में मदद की है जिनमें मुसलमान लड़कियाँ भी शामिल हैं।

दूसरे राज्यों में जहाँ ऐसे प्रयास नहीं किए गए, वहाँ गरीब परिवारों के बच्चों को स्कूल जाने में मुश्किल आती है चाहे वे मुसलमान हों, जनजाति के हों या अनुसूचित जनजाति के हों। जाहिर है कि मुसलमान लड़कियों की गैर–हाज़िरी का कारण धर्म नहीं गरीबी है।

प्रश्न

1. किसी विशेष जाति या समूह के लोगों को कंजूस या चालाक मान लेना कहां तक उचित है? अपने विचार लिखिए।

   क्रियाकलाप 1– तालिका में दिए शब्दों के अनुसार एक–एक उदाहरण दिए हैं आप भी एक–एक उदाहरण दीजिए–

पूर्वाग्रह	रूढ़िबद्ध धारणाएं	विविधता	भेदभाव
उदा. – लड़कियां केवल घर का ही काम कर सकती हैं।		मेरी कक्षा में लड़के–लड़कियां सभी साथ–साथ	
उदा.–		पढ़ते हैं।	

असमानता एवं भेदभाव

भेदभाव तब होता है जब लोग पूर्वाग्रहों या रूढ़िबद्ध धारणाओं के आधार पर व्यवहार करते हैं। अगर आप लोगों को नीचा दिखाने के लिए कुछ करते हैं, अगर आप उन्हें कुछ गतिविधियों में भाग लेने से रोकते हैं, किसी खास नौकरी को करने से रोकते हैं या किसी मोहल्ले में रहने नहीं देते, एक ही कुएँ या हैण्डपम्प से पानी नहीं लेने देते और दूसरों द्वारा इस्तेमाल किए जा रहे कप या गिलास में चाय नहीं पीने देते तो इसका मतलब है कि आप उनके साथ भेदभाव कर रहे हैं।

भेदभाव कई कारणों से हो सकता है। आप याद करें, पहले आपने पढ़ा है कि समीर एक और समीर दो एक–दूसरे से बहुत भिन्न थे। उदाहरण के लिए उनका धर्म अलग था। यह विविधता का एक पहलू है। पर यह भेदभाव का कारण भी बन सकता है। ऐसा तब होता है जब लोग अपने से भिन्न प्रथाओं और रिवाज़ों को निम्न कोटि का मानते हैं।

दोनों समीरों में एक और अन्तर उनकी आर्थिक पृष्ठभूमि का था। समीर दो गरीब था। जैसा कि आपने पहले पढ़ा है, यह अन्तर विविधता का पहलू नहीं है। यह तो असमानता है। बहुत लोगों के पास अपने खाने, कपड़े और घर की मूल ज़रूरतों को पूरा करने के लिए साधन और पैसे नहीं होते हैं। इस कारण दफ्तरों, अस्पतालों, स्कूलों, आदि में उनके साथ भेदभाव किया जाता है।

कुछ लोगों को विविधता और असमानता पर आधारित दोनों ही तरह के भेदभाव का सामना करना पड़ता है। एक तो इस कारण कि वे उस समुदाय के सदस्य हैं जिनकी संस्कृति को मूल्यवान नहीं माना जाता। ऊपर से यदि वे गरीब हैं और उनके पास अपनी ज़रूरतों को पूरा करने के साधन नहीं हैं, तो इस आधार पर भी भेदभाव का सामना कई जनजातीय लोगों, धार्मिक समूहों और खास क्षेत्र के लोगों को करना पड़ता है।

प्रश्न

आप विविधता–असमानता–भेदभाव के मध्य किस प्रकार का सम्बंध पाते हैं? लिखिए।

भेदभाव का सामना करने पर

अपनी आजीविका चलाने के लिए लोग अलग–अलग तरह के काम करते हैं – जैसे पढ़ाना, बर्तन बनाना, मछली पकड़ना, बढ़ई गिरी, खेती एवं बुनाई इत्यादि। लेकिन कुछ कामों को दूसरों के मुकाबले अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। सफाई करना, कपड़े धोना, बाल काटना, कचरा उठाना जैसे कामों को समाज में कम महत्व का माना जाता है। इसलिए जो लोग इन कामों को करते हैं उनको गन्दा और अपवित्र माना जाता है। यह जाति व्यवस्था का एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण पहलू है।

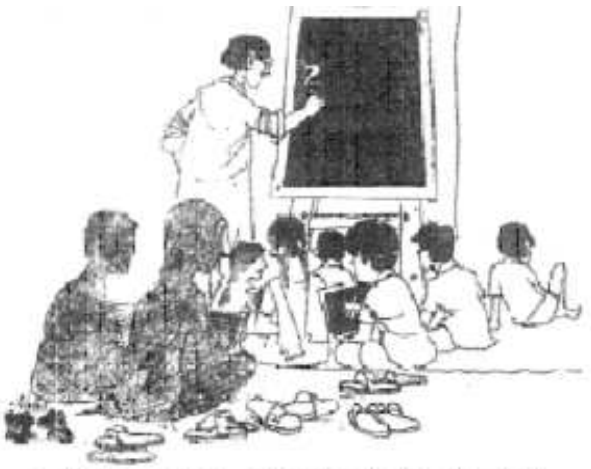

जाति के आधार पर कक्षा में किसी बच्चे को दूसरे बच्चों से अलग बैठाना भेदभाव का एक रूप है।

जाति व्यवस्था में लोगों के समूहों को एक तरह की सीढ़ी के रूप में रखा गया जिसमें एक जाति, दूसरी जाति के ऊपर या नीचे थी। जिन्होंने अपने आपको इस सीढ़ी में सबसे ऊपर रखा उन्होंने अपने को ऊँची जाति का और उत्कृष्ट कहा। जिन समूहों को इस सीढ़ी के नीचे रखा गया उनको अछूत और अयोग्य कहा गया। जाति प्रथा के नियम एकदम निश्चित थे। इन 'अछूतों' को दिए गए काम के अलावा और कोई काम करने की इजाजत नहीं थी।

इस तरह के भेदभाव के खिलाफ लगातार संघर्ष चलता रहा और पिछली शताब्दी में पेरियार व भीमराव अम्बेडकर जैसे नेताओं ने ऐसी व्यवस्थाओं के खात्मे के लिए तथा सभी लोगों को सम्मान से जीने के अधिकार के लिए महत्त्वपूर्ण आन्दोलन चलाए।

कुछ प्रश्न

1. दलित के अलावा कई अन्य समुदाय हैं, जिनके साथ भेदभाव किया जाता है। क्या आप भेदभाव के कुछ अन्य उदाहरण सोच सकते हैं? सूची बनाइये–

2. उन तरीकों पर चर्चा कीजिए जिनके द्वारा 'विशेष ज़रूरतों वाले लोगों' के साथ भेदभाव किया जा सकता है।

समानता के लिए संघर्ष

ब्रिटिश शासन से आज़ादी पाने के लिए जो संघर्ष किया गया था उसमें समानता के व्यवहार के लिए किया गया संघर्ष भी शामिल था! दलितों, औरतों, जनजातीय लोगों और किसानों ने अपने जीवन में जिस गैर–बराबरी का अनुभव किया, उसके खिलाफ उन्होंने लड़ाई लड़ी।

जैसे कि पहले भी बात हुई, बहुत सारे दलितों ने संगठित होकर मन्दिर में प्रवेश पाने के लिए संघर्ष किया। महिलाओं ने माँग की कि जैसे पुरुषों के पास शिक्षा का अधिकार है वैसे ही उन्हें भी अधिकार मिले। किसानों और दलितों ने अपने आपको साहूकारों और उनकी ऊँची ब्याज की दरों से छुटकारा दिलाने के लिए संघर्ष किया।

1947 में भारत जब आज़ाद हुआ और एक राष्ट्र बना तो हमारे नेताओं ने समाज में व्याप्त कई तरह की असमानताओं पर विचार किया। संविधान को लिखने वाले लोग भी इस बात से अवगत थे कि हमारे समाज में कैसे भेदभाव किया जाता है और लोगों ने उसके खिलाफ किस तरह संघर्ष किया है। कई नेता इन लड़ाइयों का हिस्सा थे जैसे डॉ. अम्बेडकर। इसलिए नेताओं ने संविधान में ऐसी दृष्टि और लक्ष्य रखा जिससे भारत में सभी लोगों को बराबर माना जाए। समानता को एक अहम मूल्य की तरह माना गया है जो हम सभी को एक भारतीय के रूप में जोड़ती है। प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार और समान अवसर प्राप्त हैं। अस्पृश्यता यानी छूआछूत को अपराध की तरह देखा जाता है। इसे कानूनी रूप से खत्म कर दिया गया है। लोग अपनी पसन्द का काम चुनने के लिए बिलकुल आज़ाद हैं। नौकरियाँ सभी लोगों के लिए खुली हुई हैं। इन सबके अलावा संविधान ने सरकार पर यह विशेष ज़िम्मेदारी डाली थी कि वह गरीबों और मुख्यधारा से अलग–थलग पड़ गए समुदायों को समानता के इस अधिकार के फायदे दिलवाने के लिए विशेष कदम उठाए।

संविधान के लेखकों का मानना था कि विविधता की इज्ज़त करना, उसे मूल्यवान मानना समानता सुनिश्चित करने में बहुत ही महत्वपूर्ण कारक है। उन्होंने यह महसूस किया कि लोगों को अपने धर्म का पालन करने, अपनी भाषा बोलने, अपने त्यौहार मनाने और अपने आपको खुले रूप से अभिव्यक्त करने की आज़ादी होनी चाहिए। उन्होंने कहा कि कोई एक भाषा, धर्म या त्यौहार सबके लिए अनिवार्य नहीं बनना चाहिए। उन्होंने ज़ोर दिया कि सरकार सभी धर्मों को बराबर मानेगी। इसीलिए भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है जहाँ लोग बिना भेदभाव के अपने धर्म का पालन करते हैं। इसे हमारी एकता के महत्त्वपूर्ण कारक के रूप में देखा जाता है कि हम इकट्ठे रहते हैं और एक–दूसरे की इज्ज़त करते हैं।

हालाँकि हमारे संविधान में इन विचारों पर ज़ोर दिया गया है, पर यह पाठ इसी बात को उठाता है कि असमानता आज भी मौजूद है। समानता वह मूल्य है जिसके लिए हमें निरन्तर संघर्ष करते रहना होगा। भारतीयों के लिए समानता का मूल्य वास्तविक जीवन का हिस्सा बने, सच्चाई बने, इसके लिए लोगों के संघर्ष, उनके आन्दोलन और सरकार द्वारा उठाए जाने वाले कदम बहुत ज़रूरी हैं।

अभ्यास कार्य–

1. निम्नलिखित कथनों का मेल कराइए। रूढ़िबद्ध धारणाओं को कैसे चुनौती दी जा रही है, इस पर चर्चा कीजिएः–

2. लड़कियाँ माँ–बाप के लिए बोझ हैं, यह रूढ़िबद्ध धारणा एक लड़की के जीवन को किस तरह प्रभावित करती है? उसके अलग–अलग पाँच प्रभावों का उल्लेख कीजिए।

3. भारत का संविधान समानता के बारे में क्या कहता है? क्या आपको लगता है कि सभी लोगों में समानता होना ज़रूरी है?

परियोजना कार्य

कई बार लोग हमारी उपस्थिति में ही पूर्वाग्रह से भरा आचरण करते हैं। ऐसे में अक्सर हम कोई विरोध

करने की स्थिति में नहीं रहते, क्योंकि मुँह पर तुरन्त कुछ कहना मुश्किल जान पड़ता है। जिस कक्षा में आप अध्यापन करते हैं उसे दो समूहों में बाँटिए और प्रत्येक समूह इस पर चर्चा करे कि दी गई परिस्थिति में वे क्या करेंगेः–

(क) गरीब होने के कारण एक सहपाठी को आपका दोस्त चिढ़ा रहा है।

(ख) आप अपने परिवार के साथ टी. वी. देख रहे हैं और उनमें से कोई सदस्य किसी खास धार्मिक समुदाय पर पूर्वाग्रहग्रस्त टिप्पणी करता है।

(ग) आपकी कक्षा के बच्चे एक लड़की के साथ मिलकर खाना खाने से इन्कार कर देते हैं क्योंकि वे सोचते हैं कि वह गन्दी है।

(घ) किसी समुदाय के खास उच्चारण का मज़ाक उड़ाते हुए कोई आपको चुटकुला सुनाता है।

(ड) लड़के, लड़कियों पर टिप्पणी कर रहे हैं कि लड़कियाँ उनकी तरह नहीं खेल सकतीं।

उपर्युक्त परिस्थितियों में विभिन्न समूहों ने कैसा बर्ताव करने की बात की है, इस पर विचार कर 100 शब्दों में एक लेख लिखें। साथ ही इन मुद्दों को उठाते समय कक्षा में कौन–सी समस्याएँ आ सकतीं हैं, इस पर भी विचार करें।

संदर्भ ग्रंथ

सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन–1 कक्षा 6 सामाजिक विज्ञान की पुस्तक, एन.सी.ई.आर.टी प्रकाशन, 2007.

| | | | | | | | | |

अध्याय – 3
जनजातीय समुदाय

अध्याय की रूपरेखा

- सामान्य परिचय
- अध्याय के उद्देश्य
- जनजातीय समुदायों की पहचान
- जनजाति : एक संकल्पना की जीवनी
- मुख्यधारा के समुदायों का जनजातियों के प्रति रवैया
- राष्ट्रीय विकास बनाम जनजातीय विकास
- समकालीन जनजातीय पहचाान
- अभ्यास कार्य

सामान्य परिचय

'जनजातीय' एक आधुनिक शब्द है, जो ऐसे समुदायों के लिए प्रयुक्त होता है जो बहुत पुराने हैं और उप–महाद्वीप के सबसे पुराने आदीवासी हैं। भारत में जनजातियों की परिभाषा नकारात्मक शब्दों में अर्थात वे क्या नहीं हैं यह बताकर की जाती है। जनजातियाँ ऐसे समुदाय थे जो किसी लिखित धर्मग्रन्थ के अनुसार किसी धर्म का पालन नहीं करते थे, उनका कोई सामान्य प्रकार का राज्य या राजनैतिक संगठन नहीं था, उनके समुदाय कठोर रूप में वर्गों में नहीं बँटे हुए थे, और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि उनमें जाति जैसी कोई व्यवस्था नहीं थी, न वे हिन्दू थे और न ही मुसल्मान। 'जनजाति' शब्द का प्रयोग औपनिवेशिक युग में प्रारम्भ किया गया था। समुदायों के एक अत्यन्त विषम समुच्चय के लिए एक अकेले शब्द का प्रयोग मुख्य रूप से प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से ही किया गया था।

अध्याय के उद्देश्य

1 'जनजातीय' को एक अवधारणा के रूप में समझना।

2 यह समझना कि जनाजातीय समाजों के वर्गीकरण के क्या आधार हैं।

3 जाति एवं जनजातियों के मध्य किस प्रकार के अन्तर है।

4 राष्ट्रीय विकास की अवधारणा में जनजातीय विकास की समीक्षा करना।

5. जनजातीय हित के लिए किये जा रहे अन्य प्रयासों को समझना।

यह पठन सामग्री एनसीइआरटी की पाठ्यपुस्तक भारतीय समाज कक्षा 12 के अध्याय 3 सामाजिक संस्थाएँः निरन्तरता एवं परिवर्तन (पेज 52 से 58) पर आधारित है

जनजातियों की पहचान

इतने बड़े विस्तृत क्षेत्र में फैली इन जनजातियों में भाषा संस्कृति आजीविका आदि की दृष्टि से काफी विभिन्नताएँ हैं। लेकिन कुछ विशिष्टताओं के कारण उन्हें अलग दर्जा दिया गया है।

सामान्य तौर पर जनजतियों में सामाजिक विषमाताएँ और ऊँच नीच की भावनाएं कम होती है। इन समाजों में खून के रिश्ते यानी बंधुत्व बहुत मजबूत होता है और इसके चलते असमानताएं अधिक विकसित नहीं हो पाती। जमीन का बहुत असमान वितरण या खरीद फरोख्त बहुत कम होता हैं आम तौर पर उत्पादक कार्य–चाहें जंगल से भोजन इकट्ठा करना हो या खेती करना हो, कई परिवार मिलजुलकर करते हैं। यानी श्रम भी सामूहिक रूप से किया जाता है।

इस तरह यह सामूहिक जीवन को सुदृढ़ करता है सामूहिक रीतिरिवाज जैसे कलीलाई पूर्वजों या देवी–देवताओं की आराधना या नाच–गान के संस्कार।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि जनजातीय समुदायों में जाति भेद या वर्गभेद नहीं होता है। उनमें ऊँच नीच की भावना, असमानता आदि बहुत कम होती है। इसके विपरीत जाति आधारित गांवों या समाजों में हम पायेंगे कि हैसियत और संसाधन के हिसाब से समाज में कई स्तर होते हैं। जनजातीय समुदायों में सार्वजनिक निर्णय लेने की प्रक्रियायें सभी की सहभागिता से होती है। गांव की सभा या समाज की सभाओं से सबकी सहमति बनाते हुए निर्णय लिए जाते हैं।

आमतौर पर जनजाति समुदायों में स्त्रियों व बच्चों को अधिक स्वतंत्रता प्राप्त होती है। बाहर घूमने घिरने में शादी व्याह के मामले में काम करने और निर्णय लेने में सहभागिता में ये स्वतंत्रता देखी जा सकती है। भारत की कई जनजातियों खासकर उत्तर पूर्वी राज्यों में मातृ अन्वय व्यवस्थाएं भी देखी जा सकती है। इनमें शादी होने पर पुरुष स्त्री के घर रहने जाता है। संपत्ति मां से बेटी को मिलती है।

आपके क्षेत्र में जो जनजातियों है उनकी सूची बनाईये। ऊपर बताई गई बातें उनके संदर्भ में किस हद तक सही है हर मुट्टे के संदर्भ में लिखें।

जनजातियों को हाशिए में ढकेले जाना

जनजातियों की भारत के विभिन्न भागों में उपस्थिति सदियों से बनी रही है। भारतीय संस्कृति के निर्माण में उनकी अहम भूमिका रही है। लेकिन साथ–साथ बड़े–बड़े राज्यों की स्थापना के साथ उन्हें उपजाऊ मैदानी क्षेंत्रों से खदेड़े जाता रहा और धीरे–धीरे वे पहाड़ी व वनाच्छादित प्रदेशों तक सीमित हो गए।

अंग्रेजी शासन स्थापित होने पर जंगल की लकड़ी अन्य वनोपज और इन क्षेत्रों में उपलब्ध खनिज आदि की मांग बढ़ती गई। इसको देखते हुए इन दुर्गम इलाकों पर भी शासन और बाहरी व्यापारी व जमींदारों का नियंत्रण स्थापित होने लगा।

खेतिहर जमीन पर व्यापारी साहूकार व जमींदारों का कब्जा बढ़ता गया और जनजातिय लोग मजदूरी करने पर विवश हुए।

व्यापार के लिए वनों की कटाई तेजी से हुई और यह संसाधन क्षीण होता गया। शासन ने वनों के रख–रखाव के नाम पर वनों के उपयोग पर कड़े प्रतिबंध लगा दिए जिसके कारण जनजातियों के लोग अपने अमूल्य संसाधन से अलग हो गये। यही नहीं क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर खदान बांध आदि बने जिनके कारण वे और वंचित हुए।

इन समस्याओं के विरोध में जनजातियों ने काफी संघर्ष किए और अंग्रेजों के विरुद्ध राष्ट्रीय आंदोलन में बढ़ चढ़कर भाग लिया।

स्वतंत्रता के बाद जनजातियों जिन्हें अब आदिवासी कहा जाने लगा, के हित में अनेक कानून बनाए गए और उनके हाशियाकरण को रोकने के लिए कई कदम उठाए गये। शिक्षा और विकास कार्य के माध्यम से उन्हें राष्ट्र की मुख्य धारा में लाने का प्रयास किया गया।

लेकिन इन प्रयासों के बावजूद उनका हाशियाकरण जारी रहा है।

जनजातियों विकास पर बहस क्या जनजातियों को अपने प्राचीन तरीकों से जीवन यापन करते रहने देना है और इसके लिए उन्हें व्यापारियों, साहूकारों हिन्दू या इसाई या अन्य धर्म प्रचारकों से और आधुनिक शिक्षा से दूर रखा जाये क्या उनके क्षेत्रों में बाहर के लोगों के आने जाने या बसने पर पाबंदी हो? आदिवासी अपनी अस्मिता और संसाधन खो बैठेंगे और बिखरकर जगह –जगह मजदूरी करने पर विवश हो जायेंगे।

क्या उन्हें मुख्यधारा से अलग और स्वतंत्र रखा जाना चाहिए? जो लोग मानते थे कि आदिवासी जीवन शैली को बाहरी दबावों से बचाकर सुरक्षित रखना चाहिए उन्हें पृथकतावादी कह सकते हैं। उनका मानना था कि ऐसा न करने पर दूसरी ओर एकीकरणवादी भी ये जो मानते थे कि आदिवासी सामान्य भारतीय व समाज के अंग है। उनकी समस्याओं का समाधान उसके अन्य गरीब व पिछड़े समूहों की समस्याओं के समाधान में ही खोजा जा सकता है। आदिवासियों को अलग–अलग रखने की बजाए इस आधुनिक जीवन व आधुनिक अर्थव्यवस्था के लिए तैयार करना होगा। इसके लिए आधुनिक शिक्षा, आधुनिक अर्थव्यवस्था का फैलाव तथा दूसरे क्षेत्रों व समुदायों से मेल जोल बढ़ाना होगा।

भारत की जनजातीय जनसंख्या व्यापक रूप से बिखरी हुई है, लेकिन कुछ क्षेत्रों में उनकी आबादी काफी घनी है। जनजातीय जनसंख्या का लगभग 85 प्रतिशत भाग 'मध्य भारत' में रहता है जो पश्चिम में गुजरात तथा राजस्थान से लेकर पूर्व में पश्चिम बंगाल और उड़ीसा तक फैला हुआ है और जिसके हृदय–स्थल (मध य भाग) मध्य प्रदेश, झारखण्ड, छत्तीसगढ़ और महाराष्ट्र तथा आन्ध्र प्रदेश के कुछ भाग स्थित हैं। जनजातीय जनसंख्या के शेष 15 प्रतिशत में से 11 प्रतिशत से अधिक पूर्वोत्तर राज्यों में और बाकी के 3 प्रतिशत से थोड़े–से अधिक शेष भारत में रहते हैं। यदि हम राज्य की जनसंख्या में जनजातियों के हिस्से पर दृष्टिपात करें तो पाएँगे कि पूर्वोत्तर राज्यों में इनकी आबादी सबसे घनी है, वहाँ असम को छोड़कर सभी राज्यों में उनका घनत्व 30 प्रतिशत से अधिक है और अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मिजोरम और नागालैंड जैसे कुछ राज्यों में तो जनजातीय आबादी 60 प्रतिशत से अधिक और 95 प्रतिशत तक है। किन्तु, देश के शेष भागों में जनजातीय जनसंख्या बहुत छोटी है।

भाषा की दृष्टि से, जनजातियों को चार श्रेणियों में विभाजित किया गया है। इनमें से दो श्रेणियों अर्थात भारतीय–आर्य और द्रविड़ परिवार की भाषाएँ शेष भारतीय जनसंख्या द्वारा भी बोली जाती हैं और जनजातियों

में से लगभग 1 प्रतिशत लोग ही भारतीय आर्य परिवार की भाषाएँ और लगभग 3 प्रतिशत लोग द्रविड़ परिवार की भाषाएँ बोलते हैं। दो अन्य भाषा समूह, आस्ट्रिक और तिब्बती–बर्मी, प्राथमिक रूप से जनजातीय लोगों द्वारा बोली जाती हैं, जिनमें से आस्ट्रिक परिवार की भाषाएँ पूर्ण रूप से जनजातीय लोगों द्वारा और तिब्बती–बर्मी परिवार की भाषाएँ 80 प्रतिशत से अधिक जनजातियों द्वारा ही बोली जाती हैं। जनसंख्या के आकार की दृष्टि से, जनजातियों में बहुत अधिक अन्तर पाया जाता है। सबसे बड़ी जनजाति की जनसंख्या लगभग 70 लाख है, जबकि सबसे छोटी जनजाति यानी अण्डमान द्वीपवासियों की जनसंख्या शायद 100 व्यक्तियों से भी कम है। सबसे बड़ी जनजातियाँ गोण्ड, भील, संथाल, ओराँव, मीना, बोडो और मुण्डा हैं, इनमें से सभी की जनसंख्या कम–से–कम दस लाख है। जनजातियों की कुल जनसंख्या 2001 की जनगणना के अनुसार भारत की समस्त जनसंख्या का लगभग 8.2 प्रतिशत या लगभग 8.4 करोड़ व्यक्ति है।

जनजातीय विकास की जो भी योजनाएँ बनाई गईं जैसे, पंचवर्षीय योजनाएँ, जनजातीय उप–योजनाएँ, जनजातीय कल्याण खण्ड, विशेष बहुप्रयोजनी क्षेत्र योजनाएँ, वे सभी इसी सोच पर आधारित रही हैं। लेकिन यहाँ बुनियादी मुद्दा यह है कि जनजातियों के एकीकरण ने उनकी अपनी आवश्यकताओं या इच्छाओं की उपेक्षा की है। एकीकरण मुख्यधारा के समाज की शर्तों पर और उन्हीं को लाभान्वित करने के लिए होता रहा है। जनजातीय समाजों से उनकी ज़मीनें और वन छीन लिए गए हैं और विकास के नाम पर उनके समुदायों को छिन्न–भिन्न कर दिया गया है।

प्रश्न–1940 से पहले तथा बाद में मुख्यधारा के समुदायों का जनजातियों के प्रति व्यववहार तथा सोच में क्या अन्तर थे?

1940–1960 के दौरान यह बहस काफी गहनता के साथ चली और कुछ बीच का रास्ता अपनाने का प्रयास किया गया।

आपके विचार में आदिवासी समाज के लिए कौन सी रणनीति अधिक सार्थक है–पृथकतावादी या एकीकरणवादी? अगर दोनों की एक मिश्रित योजना बनाना हो तो उसका क्या स्वरूप होना चाहिए।

राष्ट्रीय विकास बनाम जनजातीय विकास

राज्य की अपने विकास की अवधारणा के आधार पर जनजातियों की आवश्यकता को समझने और उनके लिए नीतियों को बनाने की कोशिश रही है। राष्ट्रीय विकास के नाम पर, विशेष रूप से नेहरू युग में, बड़े–बड़े बाँध बनाए गए, कारखाने स्थापित किए गए और खानों की खुदाई शुरू की गई। क्योंकि जनजातीय इलाके देश के खनिज–सम्पन्न और वनाच्छादित भागों में स्थित थे इसलिए जनजातीय लोगों को शेष भारतीय समाज के विकास के लिए अनुपात से बहुत अधिक कीमत चुकानी पड़ी। इस प्रकार के विकास से, जनजातियों की हानि की कीमत पर मुख्यधारा के लोग लाभान्वित हुए। खनिजों के दोहन और जल विद्युत संयंत्रों की स्थापना के लिए उपयुक्त स्थल जनजातीय इलाकों में स्थित थे, इस कारण जनजातीय लोगों से उनकी ज़मीनें छिनने की प्रक्रिया शुरू हो गई। अधिकांश जनजातीय समुदाय वनों पर आश्रित थे, इसलिए वन छिन जाने से उन्हें भारी धक्का लगा। वनों का दोहन; कटाई तो सुव्यवस्थित रूप से ब्रिटिश काल में ही प्रारम्भ हो गई थी और वह प्रवृत्ति स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद भी जारी रही। जमीनों पर निजी मालिकाना हक; स्वामित्व दिए जाने से भी जनजातीय लोगों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा क्योंकि उनके यहाँ समुदाय आधारित सामूहिक स्वामित्व की प्रथा थी और उसके स्थान पर नई व्यवस्था लागू किए जाने से उन्हें हानि उठानी पड़ी। इसका सबसे हाल का एक उदाहरण नर्मदा पर बनाए जा रहे बाँधों की शृंखला है। इस परियोजना से हुआ लाभ जनजातीय लोगों की तुलना में अन्य समुदाय एवं अन्य इलाकों में अधिक दिखाई देता है।

जनजातीय लोगों की घनी आबादी वाले अनेक क्षेत्रों और राज्यों को विकास के दबाव के कारण गैर–जनजातीय लोगों के भारी संख्या में अप्रवास; आकर बसने की समस्या से भी जूझना पड़ रहा है। इससे जनजातीय समुदायों के छिन्न–भिन्न होने और दूसरी संस्कृतियों के हावी हो जाने का खतरा पैदा हो गया है। उदाहरण के लिए, झारखण्ड के औद्योगिक इलाकों में वहाँ की जनसंख्या में जनजातीय अनुपात कम हो गया है। लेकिन सबसे अधिक नाटकीय स्थिति सम्भवतः पूर्वोत्तर क्षेत्रों में उत्पन्न हुई है। वहाँ त्रिपुरा जैसे राज्य की जनसंख्या में जनजातीय लोगों का अनुपात एक ही दशक में घटकर आधा रह गया, जिसके परिणामस्वरूप वे अल्पसंख्यक बन गए। अरुणाचल प्रदेश द्वारा भी ऐसा ही दबाव महसूस किया जा रहा है।

प्रश्न

राष्ट्रीय विकास की अवधारणा से जनजातियों को क्या–क्या फायदे तथा नुकसान हुए?

समकालीन जनजातीय पहचान

मुख्यधारा की प्रक्रियाओं में जनजातीय समुदायों के बलात् समावेश का प्रभाव जनजातीय संस्कृति तथा समाज पर ही नहीं बल्कि उनकी अर्थव्यवस्था पर भी समान रूप से पड़ा है। आज के समय में जनजातियों की पहचान उनके अपने मूल भाव या प्राचीन जैसे आशयों पर आधारित नहीं है पर मुख्यधारा समुदाय से उनके सम्बन्ध से है। यह सम्बन्ध ज़्यादातर जनजातियों के लिए शोषणिक रहा। इस कारण से जनजातियाँ मुख्यधारा समाज के प्रभाव का प्रतिरोध करने पर मज़बूर हुईं।

एक लम्बे संघर्ष के बाद झारखण्ड और छत्तीसगढ़ को अलग–अलग राज्य का दर्जा मिल गया है लेकिन ऐसी सफलताओं का सकारात्मक प्रभाव पहले से चली आ रही समस्याओं के कारण अभी भी दिखाई नहीं दे रहा है। उदाहरण के लिए, पूर्वोत्तर क्षेत्रों के अनेक राज्य कई दशकों से ऐसे विशेष कानूनों के अन्तर्गत, जिनसे वहाँ के निवासियों की नागरिक स्वतंत्रताएँ सीमित हो रही हैं, अपना जीवनयापन कर रहे हैं। इस प्रकार, मणिपुर या नागालैंड जैसे राज्यों के नागरिकों को वे अधिकार प्राप्त नहीं हैं जो भारत के अन्य नागरिकों को प्राप्त हैं, क्योंकि उनके राज्यों को 'उपद्रवग्रस्त क्षेत्र' घोषित किया जा चुका है। पहले सशस्त्र विद्रोह फिर उनके दमन के लिए सरकार द्वारा उठाए गए कठोर कदम और फिर उनसे भड़के विद्रोहों के दुश्चक्र ने पूर्वोत्तर राज्यों की अर्थव्यवस्था, संस्कृति और समाज को भारी हानि पहुँचाई है। देश के एक अन्य भाग में, झारखण्ड और छत्तीसगढ़ को अपने नवार्जित राज्यत्व का अभी पूरा–पूरा उपयोग करना है।

एक अन्य महत्वपूर्ण विकास जनजातीय समुदायों में शनैः–शनैः एक शिक्षित मध्यम वर्ग का उद्भव है। पूर्वोत्तर राज्यों में तो यह वर्ग सर्वाधिक दृष्टिगोचर हो रहा है, लेकिन अब यह देश के अन्य भागों में भी, विशेषकर बड़े जनजातीय समुदायों के सदस्यों में साफ दिखाई देने लगा है। आरक्षण की नीतियों के साथ मिलकर, शिक्षा एक नगरीकृत व्यावसायिक वर्ग का निर्माण कर रही है। ज्यों–ज्यों जनजातीय समाजों में अधिकाधिक अन्तर बढ़ता जाएगा अर्थात् उनके भीतर वर्गों एवं विभाजनों का विकास होता जाएगा, त्यों–त्यों जनजातीय पहचान का दावा किए जाने के लिए भिन्न–भिन्न आधार विकसित होते चले जाएँगे।

दो प्रकार के मुद्दों ने जनजातीय आन्दोलनों को बढ़ावा देने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पहले प्रकार के मुद्दे वे हैं जो भूमि तथा विशेष रूप से वनों जैसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आर्थिक संसाधनों पर नियंत्रण से सम्बन्धित हैं और दूसरे प्रकार के मुद्दों का सम्बन्ध नृजातीय–सांस्कृतिक पहचान के मामलों से है। ये दो मुद्दे अक्सर साथ–साथ चल सकते हैं, परन्तु जनजातीय समाज में विभिन्नताएँ होने से ये अलग–अलग भी हो सकते हैं। जनजातीय समाजों में मध्यवर्गीय लोगों द्वारा अपनी जनजातीय पहचान का दावा किए जाने के कारण उन कारणों से भिन्न हो सकते हैं जिनके लिए गरीब और अशिक्षित जनजातीय लोग जनजातीय आन्दोलनों में हिस्सा लेते हैं। जैसा कि किसी भी अन्य समुदाय के साथ होता है, इस प्रकार की आन्तरिक गतिशीलताओं और बाह्य शक्तियों के बीच के सम्बन्ध ही इनके भविष्य को रूप प्रदान करेंगे।

जनजातीय पहचान को सुरक्षित रखने का आग्रह दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। इसका कारण यह हो सकता है कि जनजातीय समाज के भीतर भी एक मध्य वर्ग का उदय हो चला है। नई माँगों व आग्रहों की शृंखला भी आरम्भ होते हुए भी दिखाई देती है। जैसे उनकी संस्कृति, परम्परा, पहचान आदि को सुरक्षित रखने की माँग, अपने संसाधनों पर अधिकार रखने की माँग, आधुनिकता की परियोजनाओं से लाभ मिलने की माँग आदि। इसलिए अब जनजातियों में उनके मध्य वर्गो से एक नई जागरूकता की लहर आ रही है। ये मध्य वर्ग स्वयं भी आधुनिक शिक्षा और आधुनिक व्यवसायों का परिणाम है, जिन्हें सरकार की आरक्षण नीतियों से बल मिला है.

स्रोतः वर्जीनियस खाखा, कल्चर, पॉलिटिक्स एंड आइडेंटिटीः द केस ऑफ ट्राइब्स इन इंडिया, जॉन 2006

अभ्यास कार्य

1 हिन्दु समाज में जनजातियों का आत्मसात्करण से क्या आशय है?

2 राष्ट्रीय विकास और जनजातियों के विकास के मध्य संबंधों पर एक समीक्षा कीजिए।

3 जनजातियों के विकास को आधार बनाकर उनकी पहचान पर एक निबंध लिखिए।

संदर्भ ग्रंथ

भारतीय समाज कक्षा 12, सामाजिक संस्थाएं निरन्तरता एवं परिवर्तन, एन.सी.ई.आर.टी, नई दिल्ली।

भारतीय समाज, श्यामाचरण दुबे, अनुवाद– वंदना मिश्र, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली।

| | | | | | | | | |

अध्याय – 4
जाति व्यवस्था का शिक्षा व शिक्षण पर प्रभाव

अध्याय की रूपरेखा

- सामान्य परिचय
- अध्याय के उद्देश्य
- जूठन
- स्कूल, समुदाय एवं नीतियां
- सामाजिक भेदभाव
- स्कूल की संस्कृति
- यहां भी छुआछूत
- कैसे पढ़ता मै?
- आत्मविश्वास ने बदली पहचान
- अभ्यास कार्य
- संदर्भ ग्रंथ

सामान्य परिचय

जाति व्यवस्था में यह निहित धारणा है कि हर व्यक्ति को क्या काम करना है, किस तरह का जीवन जीना है, ये बातें उसके जन्म से तय होना चाहिए। कुछ विशिष्ट जाति के लोगों की सेवा में तमाम अन्य जाति के लोगों को लगे रहना चाहिए। कोई जाति किसी दूसरी जाति की बराबरी करने की कोशिश न करे।

चूँकि शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जिसकी मदद से लोग आगे बढ़ सकते हैं और अपनी सामाजिक और आर्थिक हैसियत बदल सकते हैं, इस कारण से निम्न जाति के लोगों की शिक्षा में बहुत से व्यवधान उत्पन्न होते रहे हैं। शालाओं में उच्च वर्ण के लोगों की भाषा, संस्कृति व तौर–तरीकों का प्रभाव अधिक होता है, जहाँ निम्न तबके के बच्चों को काफी मुश्किलें उठानी पड़ती हैं। आम तौर पर शिक्षक उच्च तबकों के होते हैं और निम्न जातियों के प्रति उनमें पूर्वाग्रह होता है। कई शिक्षक तो मानते हैं कि निम्न तबके के लोग सीख ही नहीं सकते हैं। अन्य कुछ लोग सोचते हैं कि अगर निम्न जाति के लोग पढ़–लिख जाएँ तो उच्च जाति के लोगों की सेवा कौन करेगा? हालाँकि यह भी सच है कि कई उच्च वर्ण के शिक्षकों ने विशेष प्रयास किया है ताकि निम्न जाति के लोग शिक्षित हो सकें, तथापि इस बात को समझने की ज़रूरत है कि दलितों व आदिवासियों को शिक्षित होने के लिए कई तरह के पूर्वाग्रहों व बाधाओं से जूझना पड़ा है। यहाँ हम एक दलित लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा ''जूठन'' (राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली; 2003) और मध्य प्रदेश में किए गए एक अध्ययन 'दलित आदिवासी और स्कूल' (समावेश, भोपाल; 2003) से कुछ उद्धरण दे रहे हैं।

अध्याय का उद्देश्य

जाति व्यवस्था का बच्चों की शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभावों को समझना।

जूठन

घर में सभी कोई न कोई काम करते थे। फिर भी दो जून की रोटी ढंग से नहीं चल पाती थी। तगाओं (उच्च वर्ण) के घरों में साफ–सफाई से लेकर खेती–बाड़ी, मेहनत–मज़दूरी सभी काम होते थे। ऊपर रात–बेरात बेगार करनी पड़ती। बेगार के बदले में कोई पैसा या अनाज नहीं मिलता था। बेगार के लिए ना कहने की हिम्मत किसी में नहीं थी। गाली–गलोज, प्रताड़ना अलग.....''

''अस्पृश्यता एक ऐसा माहौल कि कुत्ते–बिल्ली, गाय–भैंस, को छूना बुरा नहीं था लेकिन यदि दलित का स्पर्श हो जाए तो पाप लग जाता था। सामाजिक स्तर पर इन्सानी दर्जा नहीं था। वे सिर्फ ज़रूरत की वस्तु थे। काम पूरा होते ही उपयोग खतम....''

''कई दिन तक (पिताजी) स्कूल के चक्कर काटते रहे। उनके (प्रधानाध्यापक) अनुसार, स्कूल आना मेरी अनाधिकार चेष्टा थी।''

''एक रोज़ हेडमास्टर कलीराम ने अपने कमरे में बुलाकर पूछा, 'क्या नाम है बे तेरा?'' 'ओमप्रकाश' मैंने डरते–डरते धीमे स्वर में अपना नाम बताया। हेडमास्टर को देखते ही बच्चे सहम जाते थे। पूरे स्कूल में उनकी दहशत थी।

''चूहड़े का है?'' हेडमास्टर का दूसरा सवाल उछला।

'जी।'

''ठीक है.... वह जो सामने शीशम का पेड़ खड़ा है, उस पर चढ़ जा और टहनियाँ तोड़ के झाड़ू बणा ले। पत्तों वाली झाड़ू बणाना। और पूरे स्कूल कू ऐसा चमका दे जैसा सीसा। तेरा यो खानदानी काम है। जा....फटाफट लग जा काम पे।''

हेडमास्टर के आदेश पर मैंने स्कूल के कमरे, बरामदे साफ कर दिए। तभी वे खुद चलकर आए और बोले, 'इसके बाद मैदान भी साफ कर दे।'

लम्बा–चौड़ा मैदान मेरे वजूद से कई गुना बड़ा था। जिसे साफ करने से मेरी कमर दर्द करने लगी थी। धूल से चेहरा, सिर अँट गया था। मुँह के भीतर धूल घुस गई थी। मेरी कक्षा में बाकी बच्चे पढ़ रहे थे और मैं झाड़ू लगा रहा था। हेडमास्टर अपने कमरे में बैठे थे लेकिन निगाह मुझ पर टिकी थी। पानी पीने तक की इजाज़त नहीं थी। पूरा दिन मैं झाड़ू लगाता रहा। तमाम अनुभवों के बीच कभी इतना काम नहीं किया था। वैसे भी घर में भाइयों का मैं लाड़ला था।

दूसरे दिन स्कूल पहुँचा। जाते ही हेडमास्टर ने फिर झाड़ू के काम पर लगा दिया। पूरे दिन झाड़ू देता रहा। मन में एक तसल्ली थी कि कल से कक्षा में बैठ जाऊँगा।

तीसरे दिन मैं कक्षा में जाकर चुपचाप बैठ गया। थोड़ी देर बाद उनकी दहाड़ सुनाई पड़ी, उनकी दहाड़ सुनकर मैं थर–थर काँपने लगा था। एक त्यागी लड़के ने चिल्लाकर कहा, 'मास्साब, वो बैठो है कोणे में।' हेडमास्टर ने लपककर मेरी गर्दन दबोच ली थी। उनकी उँगलियों का दबाव मेरी गर्दन पर बढ़ रहा था। जैसे कोई भेड़िया बकरी के बच्चे को दबोचकर उठा लेता है। कक्षा से बाहर खींचकर उसने मुझे बरामदे में ला पटका। चीखकर बोले, 'जा लगा पूरे मैदान में झाड़ू नहीं तो....

भयभीत होकर मैंने तीन दिन वही पुरानी शीशम की झाड़ू उठा ली। मेरी तरह ही उसके पत्ते सूखकर झरने लगे थे। सिर्फ बची थीं पतली–पतली टहनियाँ। मेरी आँखों से आँसू बहने लगे थे। रोते–रोते मैदान में झाड़ू लगाने

लगा। स्कूल के कमरों की खिड़की, दरवाज़ों से मास्टरों और लड़कों की आँखें छिपकर तमाशा देख रही थीं। मेरा रोम–रोम यातना की गहरी खाई में लगातार गिर रहा था।

प्रश्न

उपरोक्त पैराग्राफ को पढ़कर बताइये कि ओमप्रकाश के साथ जो घटनाएं हुई उसमें आपको क्या–क्या अनुचित लगा?

(लालबहादुर ओझा (सं) दलित आदिवासी और स्कूल समावेश भोपाल 2003)

मध्य प्रदेश के दो जिलों की शालाओं में दलित–आदिवासियों की स्थिति के बारे में 1999–2000 में किए गए एक अध्ययन की रपट के कुछ अंश पढ़िए :–

स्कूल, समुदाय एवं नीतियाँ : अवधारणा व वस्तुस्थिति

सामाजिक भेदभाव

दलित और आदिवासी बच्चों के सरकारी स्कूल में बड़ी संख्या में आगमन को ऊँची जाति के लोग सहानुभूति से नहीं देखते। हालाँकि साक्षरता अभियान जैसे कार्यक्रमों ने दलित, आदिवासी शिक्षा को वैधता दिलाई। जिसके कारण ऊँची जाति की प्रतिक्रियाएँ कम दिखती हैं। फिर भी कोरकू गाँव के एक ऊँची जाति के पालक कहते मिले, ''आदिवासी बच्चों के स्कूल में प्रवेश से स्कूलों का स्तर काफी गिर गया है। यदि मेरे पास विकल्प होता तो अपने बच्चे को दूसरे स्कूल में डालता। पर इस इलाके में सिर्फ एक ही स्कूल है।''

हरदा के सभी स्कूलों में और उज्जैन की वाल्मीकि बस्ती की सरकारी शाला (पारगंज) में जाति आधारित भेदभाव स्पष्ट रूप से दिखा। उच्च वर्ण के शिक्षकों और बच्चों द्वारा दलित और आदिवासी बच्चों को बेवजह डाँटना और अपमानित करना आम बात है। एक खास मोहल्ले में बच्चों के स्कूल से भागने का प्रमुख कारण छुआछूत पाया गया। इन स्कूलों में मित्रता का प्रमुख आधार जाति है, एक ही जाति के बच्चे, कक्षा और उसके बाहर भी एक समूह में इकट्ठे रहते हैं।

पाठ्योत्तर गतिविधियाँ केवल दो उच्च शालाओं में दिखीं। ऐसी गतिविधियों में भी हरदा की शाला में कक्षा की भेदभाव वाली दशा ही दोहराई जाती है। स्कूल परिसर और कक्षा की सफाई, चाय के बर्तन धोने जैसे काम आदिवासी दलित छात्रों को सौंपे जाते हैं। जबकि ऊँची जाति के छात्रों का जिम्मा कक्षा में ताला लगाना, शिक्षकों के लिए चाय तैयार करना, पानी पिलाना, आदि होता है। इस घोर जातिवादी समाज में पानी पिलाने जैसे काम विशेष मायने रखता है, दलित और आदिवासी बच्चों को पानी पिलाने का हक प्राप्त नहीं है।

आम तौर पर शिक्षकों का सरोकार चन्द तेज़ छात्रों से होता है। पूरी कक्षा को साथ लेकर चलना या उसे पठन–पाठन में शामिल करना, दुर्लभ दृश्य है। यह पाया गया कि दलित और आदिवासी छात्र कक्षा में सबसे पीछे चुपचाप बैठे रहते हैं। संयोग से किसी शिक्षक का ध्यान उधर जाता भी है तो केवल उनकी अयोग्यताओं को याद दिलाने के लिए।

वाल्मीकि और आदिवासी समुदाय से आए बच्चों की शैक्षिक क्षमता (एडुकैबिलिटी) पर ऊँची जाति के शिक्षक अक्सर सवाल उठाते पाए गए। शिक्षक मानकर चलते हैं कि वाल्मीकि व आदिवासी छात्र अयोग्य हैं, इनका मानसिक स्तर कम होता है। इस तर्क को वे न पढ़ाने के बहाने के तौर पर भी इस्तेमाल करते हैं। चिन्ता की बात यह है कि मूल्यांकन के परम्परागत तरीकों के अनुरूप कुछ छात्रों के अच्छे प्रदर्शन के बावजूद शिक्षक अपने रवैए पर कायम रहे हैं। इसका कारण शिक्षकों की सामाजिक पृष्ठभूमि है। स्कूल में भी वह इसलिए कायम रहता है क्योंकि वहाँ कोई समान्तर प्रतिरोधी मूल्य नहीं है।

प्रश्न

उपरोक्त पैराग्राफ में किस प्रकार के सामाजिक भेदभाव का पता चलता है? क्या इस भेदभाव में किसी प्रकार के पूर्वाग्रह हैं?

उज्जैन के स्कूलों में हरदा की अपेक्षा जातीय भेदभाव कम हैं, हालाँकि वाल्मीकि बस्ती का सरकारी स्कूल इसका अपवाद है। उज्जैन के माध्यमिक विद्यालय के बच्चों में अपनी जाति के बाहर दलित और गैर–दलितों से भी मित्रता है। बच्चे अपनी कथित जातीय विशेषताओं से अनजान हैं, शायद यह भी उनकी दोस्ती का कारण हो। इस अलग माहौल के कई दूसरे कारक भी हो सकते हैं। इस स्कूल की स्थापना दलित और आदिवासी बच्चों के लिए की गई थी, जिनके अभिभावक उज्जैन की कपड़ा मिलों में काम कर रहे थे। स्कूल की देखरेख मिल मालिक निजी तौर पर करते थे। सत्तर के दशक में यह स्कूल सरकार को इस शर्त पर सौंपा गया कि स्कूल के किसी भी शिक्षक या कर्मी को हटाया नहीं जाए। उनमें कुछ पुराने शिक्षक अभी भी काम कर रहे हैं। मिल में संगठित कार्यशैली और श्रमिक संगठन की उपस्थिति एक ऐसा सामाजिक माहौल रचती है जहाँ जाति और धर्म के भेदों की प्रासंगिकता कम हो जाती है। इस तरह स्कूल का विकास मिल के सामाजिक वातावरण में होना एक महत्वपूर्ण कारक है।

माध्यमिक विद्यालय में पढ़ने वाले बच्चों की उम्र भी एक पक्ष है। इस उम्र के बच्चों पर प्रत्यक्ष भेदभाव स्वाभाविक रूप से कम हो जाता है। हालाँकि अभी भी कक्षा में इन समुदायों के बच्चों को कुछ मौकों पर 'हरिजन' कहकर सम्बोधित किया जाना चलन में है।

स्कूल की संस्कृति

आरक्षण के बावजूद, गिनती में ऊँची जाति की तुलना में दलित–आदिवासी शिक्षक कम हैं। शिक्षकों और सरकारी स्कूल में पढ़ने वाले छात्रों के सामाजिक परिवेश की बुनियादी विसंगति यही से शुरू होती है। शिक्षक दलित–आदिवासी समुदाय के बच्चों को पढ़ाने के प्रति असन्तोष जाहिर करते हैं। एक वाक्य जो अक्सर सुनने को मिलता है, इन बच्चों में कोई संस्कार नहीं है। इन बच्चों को नहीं नहाने, कंघी नहीं करने, साफ गणवेश नहीं पहनने आदि के लिए अक्सर दण्डित होना पड़ता है।

शिक्षकों की यह टिप्पणी छात्रों में 'सांस्कृतिक पूँजी' के अभाव से जुड़ती है। सांस्कृतिक पूँजी की अवधारणा को फ्राँसीसी समाजशास्त्री बूर्दो ने विकसित किया। जिसका मतलब ऊँची संस्कृति में संस्कारिक होना है। सामाजिक चतुराई, शालीन भाषा, शिष्टाचार और फैशन आदि इस पूँजी के अंग हैं। यही वह सांस्कृतिक पूँजी है जो प्रभुत्वशाली वर्ग के बच्चों को शैक्षणिक संस्थानों में विशेष दर्जा दिलाती है। भाषा का ही उदाहरण लें – चूंचड़ा की प्राथमिक और माध्यमिक शाला में भाषा को लेकर काफी परेशानी है। ऐसी दिक्कतें ज़्यादातर कोरकू बच्चों को होती हैं। क्योंकि कोरकू और हिन्दी में काफी अन्तर है। बच्चे इस स्कूली भाषा का उपयोग अपने घर में नहीं करते। इसके चलते वे कक्षा में बोलने से घबराते है। उनकी सम्प्रेषण क्षमता का विकास नहीं होता है, शैक्षणिक विकास रुक जाता है। कक्षा की भाषा को न समझ और बोल पाने से वे कक्षा से कटाव महसूस करते हैं। ऐसे बच्चों का अलग ही समूह बन जाता है।

इस तरह स्कूल की अपेक्षाओं के मापदण्ड और बच्चों के घर की स्थिति में गहरा फर्क है। स्कूल लगने का समय सभी स्कूलों में निर्धारित है। इसको बदलने का अधिकार स्कूलों को नहीं है (ई. जी. एस. शालाओं को छोड़कर)। यह समय, उन बच्चों व समुदाय की दिनचर्या से मेल खाता है या नहीं, जो स्कूल आ रहे है, इस पर ध्यान नहीं जाता। ग्रामीण इलाकों में बच्चों को मवेशी चराने या खेत में मदद करनी पड़ती हैं। लड़कियों के ज़िम्मे घर के काम होते हैं। एक तरह से बच्चों के लिए घर के काम अनिवार्य हैं। स्कूल का शैक्षिक कैलेण्डर अगर समुदाय के अनुरूप हो तो स्कूल में बच्चों की भागीदारी बढ़ेगी इसमें कोई शंका नहीं। फसल कटाई के

महीनों कक्षाएँ खाली रहती है। आदिवासी गाँवों में प्रवास करते हैं। यही समय स्कूलों में वार्षिक परीक्षा का भी होता है। चूंचड़ा के स्कूल न जाने वाले कुछ ऐसे बच्चे मिले जो प्रवास के कारण परीक्षा नहीं दे सके और स्कूल से बाहर हो गए।

प्रश्न

सांस्कृतिक पूंजी क्या है? इसके छात्रों के पास होने से उन्हें कौन से विशेष लाभ मिल जाते हैं?

इन समुदायों की सहूलियत के लिए स्कूली तंत्र ने अपने आपको किसी तरह से बदला है, यह नहीं दिखा। बच्चों को स्कूल आने के लिए प्रेरित करने वाले प्रयासों पर, ये जड़ता सवालिया निशान लगाती है। मामला बच्चों तक स्कूल की पहुँच का नहीं है, बल्कि उनके शैक्षिक, मानसिक और सर्वांगीण विकास से जुड़ा है। यह तभी सम्भव होगा जब स्कूली तंत्र बच्चों की आकांक्षाओं और उनकी यथार्थ स्थितियों के प्रति संवेदनशील होगा।

यहाँ भी छुआछूत!

संविधान का अनुच्छेद 17: ''अस्पृश्यता का अन्त किया जाता है और उसका किसी भी रूप से आचरण निषिद्ध किया जाता है।....''

भारतीय संविधान न केवल सभी तरह की छुआछूत की प्रवृत्ति को पूरी तरह से खत्म करने की बात करता है बल्कि सामाजिक रूप से दलित और वंचित लोगों के उत्थान के लिए सकारात्मक उपाय करने की सलाह भी देता है। साथ ही वह संस्थाओं के संवैधानिक आचरण के लिए आदर्श खाका निर्धारित करता है। परन्तु अनुभव यह है कि संस्थाएँ संविधान के आदेश का पालन करने में अक्षम रही हैं। यहाँ तक कि छुआछूत की हिंसक घटनाओं को सामान्य मानकर स्वीकार कर लिया जाता है! स्कूली परिवेश में जारी कुछ घटनाएँ गौर करने लायक हैं।

प्राथमिक शाला की नौ वर्षीय छात्रा कोयल अपना अनुभव सुनाती है, स्कूल में लड़कियाँ मुझे मेहतरानी की छोरी कहती हैं, चिढ़ाती हैं और दूर बैठने को कहती हैं। कोयल के साथ दोस्ती और टिफिन बाँटने की बात तो कल्पना से परे है, उसके हाथ से किसी बच्ची का खाना छू जाए तो वे उसे खाती नहीं, कुत्ते को डाल देती हैं। स्कूल की चपरासी उसे घड़े का पानी पीने से रोकती है। मैडम उसकी कॉपी नहीं छूतीं, फीस हाथ में नहीं लेती, टेबिल पर रखवाती हैं। इस तरह के व्यवहार से कोयल इतनी व्यथित है कि अब स्कूल ही नहीं आना चाहती। कोयल का कसूर है कि वह एक ऐसी जाति में पैदा हुई जिसका काम, साफ–सफाई करना है। और समाज में उस काम को निचले दर्जे का काम माना जाता है।

बुलबुल की कहानी भी कोयल जैसी है। वह तो स्कूल जाना छोड़ चुकी है। उसकी जाति भी वाल्मीकि है, उसने अपने साथ हुए दुर्व्यवहार का प्रतिरोध किया। परन्तु शिक्षिका ने उसकी एक न सुनी। रो–धोकर वह घर वापस आ गई। उसके पिता स्कूल में हुए दुर्व्यवहार का गुस्सा हमारे ऊपर उतारते हैं, ''ज़रा स्कूल में जाकर देखो शिक्षक हमारे बच्चों के साथ कैसा व्यवहार करते हैं। चपरासी महाराज के बच्चे को ग्लास में भरकर पानी पिलाती है, हमारे बच्चों को घड़े के पास जाने नहीं देती। हमारे बच्चों को अछूत, मेहतर, गन्दा कहकर बुलाया जाता है।''

बुलबुल के पिता यह शिकायत लेकर स्कूल के शिक्षकों से भी मिल चुके हैं। लेकिन शिक्षकों ने उनकी बात को अनसुना कर दिया। वे कहते है, ''शिक्षक बच्चों को समझा नहीं सकते। वे समझाएँगे क्या खुद भी तो हमें नीच ही समझते हैं।'' उनका अफसोस शिक्षकों के व्यवहार के प्रति भी है। उन्हें शिक्षकों से उम्मीद थी कि वे बच्चों की गैर बराबरी, और आपसी घृणा के भाव को कम करेंगे। लेकिन उनका रवैया भी भेदभाव का ही दिखता है। कितनी मुश्किल से बच्चों को स्कूल भेजते हैं। स्कूल में जब ऐसा दोहरा व्यवहार होगा तो बच्चे वहाँ कैसे टिकेंगे? हमसे वे सवाल करते हैं।''

बड़ागाँव के एक मोहल्ले में पाँच वाल्मीकि परिवार हैं। किसी भी परिवार का बच्चा स्कूल नहीं जाता। कुछ बच्चों ने स्कूल जाना शुरू तो किया था, लेकिन जल्दी ही बन्द भी कर दिया। 18 वर्षीय राकेश ने स्कूल का अपना अनुभव सुनाया। स्कूल में एक दिन किसी बच्चे ने पखाना कर दिया। शिक्षक ने उसे पकड़कर साफ करने को कहा, राकेश को यह बात अपमानजनक लगी, सर किसी और बच्चे से भी तो सफाई के लिए कह सकते थे। उसने पखाना साफ करने से मना कर दिया। फिर क्या था – शिक्षक ने जमकर पिटाई की। राकेश ने घर लौटकर पूरी घटना अपने पिता को सुनाई। उसके पिता ने स्कूल जाकर शिक्षक से कहा ''आप साफ–सफाई का काम हमसे करा लिया करो, बच्चों से न कराओ।'' परन्तु शिक्षक के रवैये में बदलाव नहीं आया। राकेश बाद में भी शिक्षकों के लिए साफ–सफाई का पुश्तैनी काम करने वाली जाति मेहतर का ही बेटा रहा। शिक्षक के इस रवैए से उबकर राकेश ने पढ़ाई छोड़ दी। निश्चित तौर पर उसके मन में स्कूल को लेकर अलग सपने रहे होंगे।

प्रश्न

समाज में छुआछूत किस–किस रूप में विद्यमान है? अपना अनुभव लिखिए।

अक्सर ऐसा होता है कि एक सीमा के बाद प्रतिरोध, हार में बदल जाता है। बच्चे या तो स्कूल जाना बन्द कर देते हैं अथवा मन मारकर अपमान सहते रहते हैं। उमा के लिए उसकी माँ ने शिक्षका के साथ स्कूल में जमकर संघर्ष किया। अन्ततः हारकर उमा ने स्कूल जाना छोड़ दिया। वह अपने स्कूल के दिनों को इस तरह याद करती है, ''मैडम ताना मारती थीं कि स्कूल में पता नहीं कहाँ से कोई भी भर्ती हो गई है। आता–जाता कुछ नहीं चले आते हैं हमारा दिमाग खाने। पढ़ाई से इन्हें मतलब नहीं है, ये तो छात्रवृत्ति लेने के लिए आती हैं।''

स्कूल में मैडम का दूर–दूर रहना ताकि बच्चों से छू न जाएँ, सवाल पूछने पर फटकारना, उमा को अभी तक याद है। मैडम हमेशा ऐसे बच्चों को कहती हैं ''पीछे बैठो।'' कुछ पूछने पर ताना मिलता – झगड़ने आते हो यहाँ, समझाते वक्त ध्यान कहाँ था? आँख फूट गई है क्या? बहरे हो गए थे?

एक दिन उमा अपनी सहेलियों के साथ मिलकर प्रधानाध्यापक से शिक्षिका की शिकायत कर आई। मैडम को डाँट तो पड़ी, लेकिन उनकी आदत नहीं सुधरी। उल्टे उन्होंने शिकायत करने वाली लड़कियों की फिर से पिटाई कर दी। बात उमा की माँ तक पहुँची, तो वे स्कूल आईं और शिक्षकों पर जमकर बरसीं। लेकिन बात ढाक के तीन पात ही रही। रोज–रोज का ताना, अपमान और पिटाई सहने की बजाय लड़कियों ने स्कूल छोड़ने का निर्णय ले लिया।

स्कूल ऐसी जगह है जहाँ लोकतांत्रिक मूल्यों को विकसित किया जा सकता है, समाज के जातीय ढाँचे को चुनौती दी जा सकती है। बच्चों में किसी तरह का भेदभाव पनप रहा हो तो शिक्षक व समुदाय का यह दायित्व बनता है कि उसे खत्म करने की पहल करें। लेकिन शिक्षकों के व्यवहार भी अक्सर सामाजिक रूढ़ियों की तरफ झुके हुए लगते हैं। अलबत्ता ये स्थितियाँ स्कूल के इन नवागंतुकों में स्कूल के प्रति विकर्षण ही पैदा करती हैं।

कैसे पढ़ता मैं?

कोई उसे रामा कहता है तो कोई पटेल, ग्राहक बारीक कहते हैं और मालिक भाडू कहकर बुलाता है पर उसका नाम है रमेश। सरनेम उसे नही मालूम। क्षण भर भी फुर्सत में नहीं दिखता वह। कभी सिर पर बर्तन रखकर पानी ढोता नज़र आता है तो कभी ग्राहकों को चाय देते, गिलास धोते या बर्तन माँजते हुए।

बहुत व्यवस्थित है उसकी दिनचर्या। सुबह साढ़े छह बजे उठना, तैयार होना, चाय पीना और साढ़े सात बजे तक दुकान पर आ जाना। दोपहर एक बजे तक ग्राहकों की सेवा के बाद खाना खाने दौडकर गाँव जाना। खाने के बाद, पड़ोसी के यहाँ टीवी देखने जाना या न जाना।

यह कहानी है कुम्हार जाति के दस वर्षीय रमेश की। जब उसके बच्चे अच्छे कपड़े पहने कँधे पर बस्ता टाँगे स्कूल जा रहे होते हैं या अपनी माताओं के साथ स्कूल बस का इन्तजार कर रहे होते हैं, तब वह आँख मलते–मलते दौड़ते हुए बस स्टैण्ड स्थित दुकान की ओर चल पड़ता है। तेज़–तेज़ कदम उठाते हुए। अगर ग्राहकी शुरू हो गई तो भैया (मालिक) चिल्लाएँगें।

जिस दुकान में वह काम करता है वह वस्तुतः शासकीय भूमि पर अतिक्रमण कर बनाई गई एक झुग्गीनुमा संरचना है। लोहे की एक गुमठी के चारों ओर प्लास्टिक की चादर तानकर इसे तैयार किया गया है। गुमठी में खाने–पीने की सामग्री तैयार होती है तथा बाहर की बैंचों पर ग्राहक बैठते हैं और वहीं पर चाय का स्टोव है। गुमठी के बगल में पानी की एक टंकी है और तीन–चार मटके रखे हैं। रामा दिन भर पानी भरता रहता है या ग्राहकों को चाय–नाश्ता देता रहता है। पानी भरने और दुकान पर फैली रेतीली बजरी पर चलते रहने के कारण रामा के पाँव फट गए हैं।

पढ़ाई की बात शुरू करने पर वह कहता हैं, ''मैं भी स्कूल जाता! पर क्या करूँ, मेरे बाप ने मेरे को होटल पर लगा दिया। अब यहाँ दिन भर काम करूँ कि स्कूल जाऊँ। स्कूल जाता तो पढ़–लिख सकता। हिसाब जोड़ लेता। पढ़ तो अब भी लेता हूँ पर मन–मन में, लिख नहीं सकता। सौ रुपए तक जोड़ भी लेता हूँ जैसे 10–10 रुपए के दस नोट 100 रुपए हो जाते हैं। लेकिन पाँच–छह हजार रुपए नहीं गिन सकता।''

उमर का अन्दाज़ लगाने का ज़िम्मा हमारे ऊपर छोड़कर वह अपनी कहानी सुनाता है, ''पहले हम बावी में रहते थे, सोनकच्छ के पास। मेरे पिता तीन भाई हैं। दो काका हैं मोहन और गुड़ला। एक बार मेरे काका मोहन ने एक आदमी को तेरह गुप्ती मार दी, पुलिस ने नब्बे हज़ार रुपए माँगे उसे छोड़ने के! हम क्या करते, अपना घर बेचकर पैसे दिए। फिर मेरे पिता, तपा चले गए, प्रकाशपुरा के पास। वहाँ गारा गूंधने (ईट बनाना) का काम किया। फिर नागदा गए और अब यहाँ आ गए, दौंड। विकास पटेल ने बुला लिया मेरे पिता को गारा गूंधने के लिए। छह हज़ार रुपए साल देते थे। मेरे पिता ने सब्जी बेचने का काम भी किया। मैं भी जाता था उनके साथ। बावी छोड़ते ही स्कूल छूट गया था। उसके बाद तो चार–पाँच गाँव में रहे हम, मैं कहाँ–कहाँ पढ़ता। एक गाँव में रहता तो पढ़ भी लेता। फिर सब्जी में घाटा हो गया तो रद्दी खरीदने लगे।''

थोड़ा रुककर वह अपने जीवन के दूसरे राज़ खोलता है, ''मैं पहले स्कूल नहीं जाता था न, तो मेरे पिता ने मुझे होटल पर लगा दिया। मुझे यहाँ तीस रुपए मिलते हैं। शुरू–शुरू में पन्द्रह रुपए मिलते थे फिर बीस, फिर पच्चीस और अब तीस रुपये। थकान नहीं होती भैया। मैं घर पर भी क्या करूँ। मेरी यहाँ कोई पहचान भी नहीं है, किसके साथ खेलने जाऊँ। ये मेरी चौथी होटल है। फूल्या, बन्स्या, डमरू, संजू, परकास, सब मेरे बाद के हैं। जब मैं आया था तब यहाँ इतनी होटलें थोड़ी थीं।''

फूलसिंह, बंशी, डमरू, संजू, प्रकाश आदि बच्चे भी रमेश की तरह मज़बूरी के मारे हैं और आसपास की होटलों पर काम करते हैं।

''नरेन्द्र भैया बहुत अच्छे हैं, कभी–कभी गलती हो जाए तभी डाँटते हैं, काम तो करना ही पड़ता है, मालिक मुफ्त में तो मज़दूरी देगा नहीं। फूल्या (उसका साथी) बदमाश है, मेरे को पटेल वो ही कहता है। न जाने क्या समझता है अपने आप को। उसको न जाने कितने पैसे मिलते होंगे? मेरे को तो तीस रुपए रोज़ बता रहा था।''

हमने कहा, 'हमें तो पैंतीस बता रहा था!''

'अच्छा!' वह अन्दाज़ लगाता है, ''फूल्या खर्चे के पाँच रुपए भी बचा लेता होगा। मालिक अपने को सही तनख्वाह नहीं बताएगा उसकी।''

तनख्वाह जोड़ने–बताने में उसे मज़ा आ रहा था। ''बीस रुपए के हिसाब से महीने के छह रुपए, पच्चीस रुपए से ..... अन्दाज़ लगाता है..... सात सौ पचास रुपए। 15 रुपए से पाँच सौ में 50 कम, और 30 से।'' हँस देता है ''नहीं आता यार भैया। स्कूल जाता तो भले ही हज़ार रुपए का हिसाब जोड़ देता, मुझे तो लिखना भी नहीं आता। क्या करें यार।'' निस्पृह भाव आता है चेहरे पर।

तभी उसे स्कूल की बात याद आती है, ''जब मैं स्कूल जाता था ना, तब भी मुझे लिखना नहीं आता था। मैं दूसरे से लिखवा लेता था। मेरे घर वाले पूछते, मास्साब पूछते तो वही बता देता। एक बार अँगूठा लगाना था तो मैंने दूसरे से लगवा लिया और फिर उस पर अपना अँगूठा लगा दिया। मास्साब ने टिकाई मेरे को डण्डी। खूब सूता (पीटा)'' इस घटना को बताकर हँसने लगा। ''स्कूल में अच्छा तो लगता था पर लिखना नहीं आता था मेरे को। बाद में तो हम तपा चले गए। पिताजी यहाँ–वहाँ घूमते रहे तो मैं कैसे पढ़ता।'' दौंड़ के अनौपचारिक स्कूल में क्यों नहीं जाते?

''होटल से फुर्सत मिले तो जाऊँ, इच्छा तो होती है स्कूल जाने की, पर काम पर लग गया हूँ, अब कैसे जाऊँ।'' बेबसी ज़ाहिर करता है।

अपने स्कूली दिनों के साथ–साथ उसे घर की कठिनाइयाँ भी याद आने लगीं, ''हमारे घर में कभी–कभी तो आटा भी नहीं रहता था, इसलिए काम करना पड़ा। हम घर में आठ सदस्य हैं। छह भाई–बहनों में मैं सबसे बड़ा हूँ। मैंने तो स्कूल छोड़ दिया। मेरी बहनें भी स्कूल नहीं जातीं। उन्हें स्कूल लेने–छोड़ने कौन जाए? अकेली कैसे जाएँ इतनी दूर?''

रमेश बहुत मासूम है। बात–बात पर मुस्कुराता है। जब सोचकर बोलता है तो लगता है जैसे स्मृति को खंगाल रहा हो, होटल की नौकरी ने जहाँ उसे बेबाक बात करना सिखाया है वहीं व्यावहारिकता की घुट्टी भी पिलाई है। अनपढ़ और पढ़े लिखे के अन्तर को वह इस तरह आँकता है, ''पढ़ा लिखा आदमी लिख–पढ़ सकता है हज़ारों रुपए का हिसाब–किताब जोड़ लेता है। करोड़पति भी बन सकता है। कम पढ़ा लिखा तो क्या करेगा। ऐसे ही रहेगा और क्या।'' वह मानता है कि पढ़ना ज़रूरी है पर उसका सवाल है कि भूखे पेट कोई पढ़े तो कैसे? वह समझता है कि बच्चों को जहाँ तक हो सके पढ़ना चाहिए।

प्रश्न

'कैसे पढ़ता मैं?' शीर्षक के पैराग्राफ पढ़कर बताइये रमेश क्यों नहीं पढ़ पाया?

आत्मविश्वास ने बदली पहचान

जाति एक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में अलग–अलग बसाहटों की रचना करती है। एक जाति के लोग अक्सर समान भौगोलिक इलाकों में रहते हैं। इससे एक साँझा भौगोलिक इकाई और पहचान की रचना भी होती है। इन भौगोलिक इकाईयों में कोई भी व्यक्ति सफल होता है, किसी नए क्षेत्र में प्रवेश करता है, और उसकी इस गतिशीलता से उसकी भौतिक स्थिति में कोई सकारात्मक बदलाव आता है तो वह उस इकाई के बाकी लोगों के लिए अनुकरणीय हो जाता है। ऐसी सफलताओं से लोग सामूहिक आत्मविश्वास का अनुभव करते हैं, और प्रगति पथ पर चल पड़ते हैं।

मध्य प्रदेश के मालवा क्षेत्र की अनुसूचित जातियों में बैरवा जाति ऐसा ही एक उदाहरण है। बैरवा जाति मुख्यतः राजस्थान से पलायन करके मालवा में आई। यहाँ आकर उन्होंने कपड़ा मिल की मज़दूरी को आज़ीविका

के रूप में अपनाया। अन्य दलित जातियों की अपेक्षा तेज़ी से विकास करने में इस नकद मज़दूरी का बड़ा हाथ रहा है।

आज शिक्षा, व्यापार, साहित्य, राजनीति, समाज सेवा, प्रशासन, संस्कृति आदि कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं है, हर क्षेत्र में इस जाति का प्रतिनिधित्व है। उनके अपने स्कूल हैं, मन्दिर हैं, गैस एजेन्सी है, पेट्रोल पम्प हैं। कालिदास सम्मान प्राप्त कलाकार श्री प्रेम मनमौजी पूरे आत्मविश्वास के साथ कहते हैं ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जहाँ हम न हो। अन्य दलित जातियाँ जहाँ अभी आरक्षण के सहारे उठने का प्रयास कर रही हैं, वहीं बैरवा जाति ने अपना स्तर काफी हद तक ऊपर उठा लिया है। इनकी इस आश्चर्यजनक उन्नति पर इतिहासविद् श्री श्यामसुन्दर निगम कहते हैं ''इतिहास में किसी अन्य जाति ने अपने आपको इतनी कम अवधि में इस कदर बदला हो, ऐसा उदाहरण दुर्लभ है समाज व्यवस्था के निचले पायदान से ऊपर उठकर इस जाति द्वारा अपने आपको सम्मानजनक स्थिति में ले आना, हैरत की बात है। यह जाति आरक्षण या अन्य शासकीय कृपा की मोहताज़ नहीं है।''

बैरवा जाति की मौजूदा सामाजिक उपलब्धियों का प्रमुख कारण है इस जाति का आत्मविश्वास। आज़ादी के पूर्व से ही इस जाति द्वारा अपने को आर्थिक और सामाजिक रूप से सक्षम बनाने के सामूहिक प्रयास किए गए। प्रोफेसर श्यामलाल वाल्मीकि ने अपनी पुस्तक 'अनटचेबल मूवमेंट इन इंडिया' में बैरवा जाति के संघर्ष का विस्तृत वर्णन किया। इस जाति के अखिल भारतीय संगठन 'बैरवा महासभा' की स्थापना सन् 1925 में ही हो गई थी। इस संगठन के माध्यम से इस जाति ने अपने परम्परागत धन्धों को त्यागा और भेदभाव एवं छुआछूत के खिलाफ संगठित लड़ाइयाँ लड़ी।

उज्जैन के तात्कालीन महापौर मदनलाल ललावत इसी जाति के थे। शहर में बैरवा जाति के व्यक्ति द्वारा स्थापित पहला स्कूल, मेघदूत पब्लिक स्कूल के श्री मोतीलाल मरमट के अनुसार ''हमारी जाति की उन्नति का प्रमुख कारण हमारे समाज (जाति) के सफल लोग हैं, वे ही हमारे प्रेरणा स्रोत हैं। हमारी जाति का आदमी सोचता है कि जब एक भाई का बच्चा पढ़ सकता है, अच्छे पद पर पहुँच सकता है तो वह अपने बच्चों को क्यों नहीं पढ़ा सकता।''

श्री मरमट स्वयं एक मिल मज़दूर के बेटे हैं। वह अपनी संघर्ष कथा इस तरह सुनाते हैं, ''हमारा परिवार बड़ा था और पिताजी की आमदनी कम। पिताजी ने परेशानी उठाकर भी मुझे पढ़ाया। घर छोटा था, इसलिए मैं नवीन छात्रावास में जाकर पढ़ता था। आठवीं तक आते–आते मैं ट्यूशन करके अपना खर्च स्वयं चलाने लगा। फिलहाल वे शिक्षा विभाग में लेखापाल हैं। उनका बेटा निजी स्कूल चलाता है।''

इसी जाति के गजराज लौदवाल राजमिस्त्री हैं। उनकी बीबी को एनीमिया है। बीमारी में ज़्यादा खर्च होने के कारण उनके बेटे नितिन का स्कूल छूट गया। लेकिन गजराज ने आस नहीं छोड़ी, वे कहते हैं, ''मैं कहीं से भी पैसे की व्यवस्था करूँगा। पर नितिन को पढ़ाऊँगा ज़रूर। वह अभी स्कूल नहीं जा पा रहा है, यह देखकर मुझे बहुत तकलीफ होती है।'' कुछ ऐसी ही परिस्थिति में दुर्गेश भी निजी स्कूल से बाहर हो गया, परन्तु उसके पिता योगेश निर्मल (फ्रिज मैकेनिक) ने अब उसकी फीस की रकम जमा कर ली है, ताकि अगले वर्ष से दुर्गेश अपनी पढ़ाई जारी रख सकें।

इस जाति में जबरदस्त आत्मविश्वास का कारण वे लोग हैं जो शिक्षा पाकर, उनके मोहल्ले के बीच से उभरकर सफल लोगों की गिनती में आ गए हैं। उन्हें देखकर जाति के अन्य लोग भी अपनी क्षमता के बारे में

सन्देह नहीं रखते। उज्जैन में अन्य अनुसूचित जातियाँ अभी भी अपने मन से झिझक या हीनता पूरी तरह नहीं निकाल पाई हैं, वहीं बैरवा जाति के मामले में ऐसा नहीं है।

अभ्यास

1. जाति व्यवस्था के बच्चों की शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभावों का विस्तार से वर्णन कीजिए।

2. जाति व्यवस्था का शाला में बच्चों की उपस्थिति एवं उपलब्धि स्तर पर पड़ने वाले प्रभावों का आकलन कीजिए।

संदर्भ ग्रंथ

जूठन, ओमप्रकाश बाल्मीकि की आत्मकथा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003.

दलित आदिवासी और स्कूल, समावेश, भोपाल 2003.

| | | | | | | | | |

इकाई 2

क– सामाजिक स्तरीकरण

अध्याय – 5

समाज में विषमताएँ – एक परिचय

अध्याय की रूपरेखा

- सामान्य परिचय
- अध्याय के उद्देश्य
- विषयवस्तु के शीर्षक–उपशीर्षक
  - समाज में मौजूद असमानताएँ
  - क्षमता पाने की क्षमता में असमानता
  - कुछ अन्य तरह की असमानताएँ
  - असमानता का लोगों के मध्य रिश्तों में प्रभाव
- अभ्यास कार्य
- संदर्भ सूची

सामान्य परिचय

इस इकाई में हम असमानता पर विचार करेंगे। आपस में भिन्नता होते हुए भी सब मनुष्य किस मायने में समान हैं। दूसरी ओर समाज में किस–किस तरह की असमानताएं हैं– आर्थिक असमानता, अवसरों में असमानता, सत्ता में असमानता, हैसियत में असमानता.....। अगर असमानता इतनी ही व्याप्त है तो उसे खत्म करने की क्या जरूरत है– उससे क्या दुष्प्रभाव होता है। इन सब बातों पर हम इस इकाई में विचार करेंगे।

अध्याय के उद्देश्य

1. सभी मनुष्य सैद्धांतिक रुप से समान हैं, को समझना।
2. समाज में मौजूद विभिन्न प्रकार की असमानताओं को पहचान पाना।
3. समाज में ये असमानताएं क्यों हैं, को समझने का प्रयास करना।
4. असमानता के कारण लोगों के मध्य रिश्ते में पड़ने वाले प्रभावों को देख पाना।

हम मनुष्य और मनुष्य के बीच विषमताओं के इतने आदी होते हैं कि हम भूल जाते हैं कि हर इन्सान चाहे वह पुरुष हो या महिला, विकलांग हो या पूर्णांग, गोरा हो या काला, अमरीका का हो या अफ्रीका का, जंगल में फल बटोरने वाली आदिवासी हो या कोका कोला कंपनी की सी ई ओ... सभी सैद्धान्तिक रूप से समान हैं। सबसे पहले तो हमें इन्सानियत का आधार समानता में देखना होगा और हर मनुष्य की समानता को समझना होगा। तभी हम अपने समाज में मौजूद असमानताओं को पहचान सकते हैं जिन्हें हम अपने रोजमर्रा के जीवन में सहज ही स्वीकार कर चुके होते हैं।

समानता का एक मुख्य अर्थ है सबको समान अवसर उपलब्ध होना और सबको अपना मनचाहा जीवन जीने की स्वतंत्रता होना। यानि डॉक्टर बनना है या फकीर बनना है व्यक्ति अपनी मर्जी व रुचि के आधार पर तय कर पाये।

प्रश्न

1. क्या आप मानते हैं कि एक वयक्ति जो देख नहीं सकता है और जो व्यक्ति अच्छे से देख सकता है दोनों समान हैं? उन दोनों के समान होने का क्या तात्पर्य है?

2. अगर एक ऐसे व्यक्ति को शिक्षित होकर किसी कम्पनी का मैनेजर बनने का अवसर देना है तो समाज को उसके लिए क्या–क्या व्यवस्थाएं करना होगा?

समाज में मौजूद असमानताएं

क. आर्थिक असमानता

लोग एक दूसरे से कई मायनों में असमान हो सकते हैं। ज़मीन जायदाद, आय, शिक्षा, निर्णय लेने के अधिकार, अकेले घूमने फिरने की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा, शारीरिक क्षमता.... आप और भी ऐसी बातों को जोड़ सकते हैं। कोई अधिक सम्पत्ति वाला है, जिसके पास ज़मीन है, सिंचाई के साधन है या कल–कारखाने हैं व पूँजी है और उसके विपरीत किसी और के पास किसी प्रकार की सम्पत्ति नहीं है। किसी को वेतन में लाखों रुपए हर महीने मिलते हैं और किसी को कुछ ही सौ रुपए। इस तरह के अन्तर किसी को अमीर और किसी को ग़रीब बना देता है। इसे हम आर्थिक या सम्पत्ति व आय में असमानता कह सकते हैं।

ख. क्षमता पाने की क्षमता में असमानता

एक और तरह की असमानता होती है। किसी बड़े शहर का मध्यम वर्ग का उच्च जाति का पुरुष किसी अच्छे कालेज में इंजीनियरिंग पढ़कर फिर एम.बी.ए. भी पास करके नौकरी करने के लिए तैयार हो जाता है– उसके सामने जीविका के और खासकर ऊँचे वेतन वाले जीविका के अवसर बहुत अधिक हैं। इस व्यक्ति की तुलना में एक गरीब अनपढ़ व्यक्ति खासकर सुदूर गांव की दलित समाज की महिला के सामने अपेक्षाकृत कम अवसर होंगे और वे भी कम वेतन वाले अवसर होंगे। कहने के लिए उन दोनों की क्षमता में असमानता के कारण हैं – एक अनपढ़ है और दूसरा एम.बी.ए.। लेकिन वास्तव में क्षमताओं में यह असमानता उनके आर्थिक व क्षेत्रीय असमानता के कारण बना है। यानी क्षमता पाने की क्षमता में असमानता है।

ग. सत्ता की असमानता

एक और असमानता है सत्ता की असमानता। सत्ता से हमारा तात्पर्य है अपनी बात दूसरों से मनवाने की क्षमता, दूसरों से अपने बात मनवाने का अधिकार हालांकि अक्सर इसे हम राजनैतिक, प्रशासनिक या न्यायालयीन संदर्भ में ही देखते हैं, यह काफी व्यापक चीज़ है। पति का पत्नी पर वर्चस्व, घर के मुखिया के रूप में पिता का वर्चस्व, शाला में शिक्षक का वर्चस्व, किसी शहर या गाँव में सम्पत्तिवान लोगों का वर्चस्व, राष्ट्रीय मामलों में शासकीय नीतियों में दखल रखने का उद्योगपति व बैंकरों का वर्चस्व, ऐसे सत्ता के अनगिनत स्वरूपों को हम देख सकते हैं। जाहिर है कि इस तरह की सत्ता का वितरण असमान है। किसी के पास अपने खुद के निर्णय लेने या दूसरों को मनवाने का अधिकार बहुत कम होता है तो किसी और के पास बहुत अधिक।

घ. हैसियत की असमानता

हैसियत या प्रतिष्ठा की असमानता भी बहुत महत्वपूर्ण है। एक दलित महिला को समाज किस नज़र से देखता है, एक ब्राह्मण पुरुष को कैसे देखता है, इस पर भी हमें विचार करना होगा। इसी तरह महानगर के एक शिक्षित व्यक्ति जिसे कोई ऊँची तनख्वाह वाली शासकीय या निजी नौकरी प्राप्त है, उसे लोग किस नजर से देखते हैं, यह भी हम जानते हैं। एक सुदूर अंचल के आदिवासी एक कस्बे के बाबू, इनके बीच भी हैसियत की असमानता है। हैसियत कई बातों पर आधारित है, जिनमें से ज़्यादातर अन्य सामाजिक असमानताओं से जुड़ा है – सम्पत्ति, शिक्षा, क्षेत्रीयता, आदि। लेकिन प्रतिष्ठा में असमानता अक्सर पैदाईश से भी जुड़ा है। अगर आप स्त्री हैं तो आपको किसी पुरुष से कम हैसियत प्राप्त होगी। अगर आप किसी खास जाति में पैदा हुए हों तो आपका अधिक सम्मान होगा। अगर आपके चमड़ी का रंग काला या साँवला है तो आपको अलग दृष्टि से देखा जाएगा। अगर आप किसी अल्पसंख्यक समुदाय के हों तो ...।

प्रतिष्ठा अपने आपमें महत्वपूर्ण है। सभी चाहेंगे कि उन्हें वही इज्जत मिले जो किसी और को मिलती है। लेकिन किसी न किसी रूप में प्रतिष्ठा आपके अवसरों को भी प्रभावित करती है, कहीं न कहीं आपके क्षमता व धन अर्जन तथा सत्ता पर भी प्रभाव डालता है।

सम्पत्ति या उत्पादन क्षमता तक पहुँच, सत्ता तथा हैसियत कई मायनों में एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। जो धनी हैं वे प्रायः अधिक सत्तावान होंगे, व जो प्रतिष्ठित हैं वे भी अधिक धनी व सत्तावान होते हैं। इसी प्रकार जो कम प्रतिष्ठित या गरीब हैं वे प्रायः सत्ताहीन जीवन जीने पर मजबूर होते हैं।

प्रश्न

यहां असमानता के कुछ उदाहरण दिए हैं। क्या आप कारण सहित बता सकते हैं कि हरेक उदाहरण किस प्रकार के असमानता से सम्बंधित है?

क. कल्लू एक आदिवासी है जो हल्बी भाषा बोलता है। जब वह रायपुर के बाज़ारों में घूमता है तो पाता है कि दुकानदार अंग्रेजी या हिन्दी बोलने वालों से अच्छे से बात करते हैं लेकिन हल्बी बोलने वाले पर हंस देते हैं।

ख. कल्पना झोपड़ी में रहने वाली एक महिला है जिसके चार बच्चे हैं। उन सबके लिए रोज भोजन जुटाने के लिए कल्पना पास के एक बड़े मकान में काम करती है। उस मकान की मालकिन उससे दिन भर काम करवाती है और उसे हर महिने कुछ वेतन देती है। अक्सर उनके घर का बचा हुआ खाना वह कल्पना को दे देती है जिसे कल्पना अपने बच्चों के लिए ले जाती है।

ग. रमा इंजीनियर की पढ़ाई करना चाहती है। लेकिन उसके माता–पिता का सोच है कि एक लड़की को इंजीनियर की पढ़ाई करने की जरूरत नहीं है उसे तो नर्स या डॉक्टर की पढ़ाई ही करनी चाहिए।

घ. स्कूल के सब बच्चे उस दिन पिकनिक पर जाना चाहते थे। कुछ शिक्षकों ने भी उनका साथ दिया। लेकिन प्रधान पाठक ने तय किया कि उस दिन कक्षा लगेगी और सारे बच्चे अपने कोर्स की किताब पढ़ेंगे और सबको ऐसा ही करना पड़ा।

आप भी ऐसे कुछ उदाहरण सोचकर बताएँ और अपने साथियों से पूछें कि वह किस तरह की असमानता के उदाहरण हैं।

असमानता का लोगों के मध्य रिश्तों पर प्रभाव

असमानता न केवल लोगों को प्राप्त अवसरों व प्रतिष्ठा को प्रभावित करती है बल्कि लोगों के आपसी रिश्तों को भी प्रभावित करती है। जिनके पास कम साधन है, या जिनके पास कम सत्ता है वे अपनी जीविका के लिए अधिक साधन या सत्ता वाले लोगों पर निर्भर हो जाते हैं और वे किसी न किसी रूप में अपने श्रम या उसका उत्पाद, अपनी सत्ता, तथा प्रतिष्ठा उन लोगों को देने के लिए मजबूर हो जाते हैं। यह लोगों के बीच शोषणात्मक रिश्ता कायम करता है। यानी ऐसा नहीं है कि सिर्फ एक के पास अधिक खाने को है और दूसरे के पास कम। इसका मतलब यह भी है कि दूसरे को अपने भोजन प्राप्त करने के लिए पहले आदमी की सेवा करनी होगी, और उसका दिया खाना होगा। इस बात को हर घर में पति पत्नी के रिश्ते में भी देख सकते हैं। पत्नी का काम पति की सेवा है और पति जो उपलब्ध करवाएगा उसी से पत्नी को स्वीकार करना होगा।

इसी तरह एक किसान को अपने पसीने का उत्पादन किसी जमींदार या साहूकार को लगान या सूद के रूप में देना पड़ता था या फिर पूँजीपति मजदूर के श्रम से उत्पन्न मूल्य का एक हिस्सा खुद रख लेता है..। एक तरफ यह एक सच्चाई है कि सब लोग सामूहिक रूप से ही उत्पादन कर सकते हैं व अपनी जीविका का अर्जन कर सकते हैं। लेकिन असमानता के कारण लोगों के बीच का यह रिश्ता समानता व आपसी सम्मान पर आधारित न होकर शोषण, अनादर, व आपसी संघर्ष पर आधारित हो जाता है।

जाहिर है कि इस व्यवस्था से कुछ लोगों को फायदा होता है। वे अपने पास उपलब्ध धन, सत्ता व हैसियत का उपयोग करके ऐसे ढाँचे तैयार करते हैं जिससे यह व्यवस्था बनी रहे। इसके लिए वे अन्य लोगों के सामने वर्जनाओं की दीवार खड़ी करते हैं, जिसे पार करके उच्च श्रेणी में प्रवेश करना बहुत कठिन या नामुमकिन हो जाता है। ये वर्जनाएँ किसी सार्वभौमिक सिद्धान्तों का हवाले देते हुए बनती हैं– जैसे जाति प्रथा में शुद्धता का सिद्धान्त, परिवार में पारिवारिक मूल्य या स्त्री की रक्षा, उच्च आय वाली नौकरियों में योग्यता का सिद्धान्त, सम्पत्ति के संदर्भ में निजी व वैयक्तिक स्वतंत्रता का सिद्धान्त....। इन सिद्धान्तों का उपयोग करते हुए कुछ लोगों को सामान्य अवसरों से वंचित रखा जाता है। जाति, परिवार, बाज़ार, शिक्षा, यह सब वर्जनाओं की दीवार खड़े करने में मददगार होते हैं।

अभ्यास कार्य

1. जातिगत असमानताएँ लोगों की प्रतिष्ठा को कैसे प्रभावित करती हैं?
2. गुणवत्तायुक्त शिक्षा की सार्वभौमिक सुविधा सामाजिक असमानता को कम करने में मददगार हो सकती है। अपने विचार लिखिए।
3. क्या आपको यह बात सही लगती है कि असमानता के बिना शोषण भी संभव नहीं है। अपना मत उदाहरण सहित दीजिए।
4. मैं एक गांव के दलित जाति की लड़की हूँ। मैं बड़ी होकर एक बड़े उद्योगपति बनना चाहती हूं। क्या आप बता सकते हैं कि मेरे सामने वर्जनाओं की किस–किस प्रकार की दीवारें हैं जिन्हें मुझे पार करना है?

अध्याय – 6
आर्थिक समानता और शिक्षा

अध्याय की रूपरेखा

- सामान्य परिचय
- अध्याय के उद्देश्य
- विषयवस्तु के शीर्षक–उपशीर्षक
  - शैक्षिक जीवन में मौके और सामाजिक वर्ग
  - डॉमिनेटिंग और डॉमिनेटेड कोड
  - चिह्नांकन सिद्धांत (लेबलिंग थ्योरी) का योगदान
  - योग्यता के आधार पर व्यवहार
  - माता–पिता का चिह्नांकन
  - रिस्ट के अनुसार शिक्षकों का व्यवहार
  - हारग्रीव्स का मत
- सारांश
- अभ्यास कार्य
- परियोजना कार्य
- संदर्भ सूची

सामान्य परिचय

ब्रिटेन में शिक्षा और सामाजिक वर्ग के आपस के रिश्ते को समझने के लिए बहुत सारे अध्ययन किए गए हैं। हमें बहुत पहले से अर्थात 1930 में दिखाई दिया कि गरीब परिवार के बच्चे भी बुद्धिमता परीक्षण में आगे हैं, इसके बावजूद वे ग्रामर स्कूल में प्रवेश नहीं पाते थे तथा उनका स्कूली परिणाम भी अच्छा नहीं होता था। यद्यपि बुद्धिमता परीक्षण का महत्व अब नहीं रहा और ग्रामर स्कूल भी अब कम हो गए हैं। कई दशकों से विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों की संख्या में इजाफा हुआ है, किन्तु असमानता और सामाजिक वर्ग का प्रभाव अभी भी बना हुआ है। श्रमिक वर्ग के बच्चों को हर स्तर पर बराबर का मौका नहीं मिलता है।

आम तौर पर जो बच्चे उच्च आर्थिक वर्ग के होते हैं, उनके पास शिक्षा पाने के मौके निम्न सामाजिक वर्ग के बच्चों की तुलना में काफी अधिक होते हैं।

अध्याय के उद्देश्य

1. यह समझना कि आर्थिक एवं सामाजिक वर्ग शिक्षा के अवसर को प्रभावित करते हैं। अर्थात उच्च वर्ग तथा श्रमिक वर्ग के बच्चों में आर्थिक तथा सामाजिक प्रभाव के कारण पड़ने वाले शैक्षिक अन्तर को समझ पाना।
2. उच्च वर्ग तथा श्रमिक वर्ग बच्चों के प्रति शिक्षकों की धारणा को कैसे प्रभावित करते हैं? को समझना।

---

1. *Adapted from Meighan Siraj Blatchford, Educational Life Chances, Who Gets What? Pp.*
2. *ग्रामर स्कूल हमारे यहाँ के उच्चतर माध्यमिक शालाओं के समकक्ष होते हैं, जिसके बाद महाविद्यालयों में प्रवेश मिलता है*

3. कक्षा में बच्चों के प्रदर्शन को प्रभावित करने वाले कारकों पर विचार करना।
4. शैक्षिक संस्थानों के उन लक्षणों को पहचानना जो एक मध्यम वर्ग तथा श्रमिक वर्ग के बच्चों को शिक्षा के लिए हतोत्साहित या प्रोत्साहित करते हैं।
5. किसी क्षेत्र विशेष में उपलब्ध संसाधनों जैसे– शिक्षक, स्कूल भवन आदि के शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभावों को समझना।
6. शिक्षक द्वारा कक्षा में अपनाई जाने वाली विधियों में 'चिह्नांकन सिद्धांत' (लेबलिंग थ्योरी) के प्रभाव को समझना।
7. शिक्षक के 'आदर्श विद्यायार्थी' की कल्पना को समझना।

शैक्षिक जीवन में मौके और सामाजिक वर्ग

ब्रिटेन के अध्ययनों से पता चलता है कि जिन बच्चों के अभिभावक डॉक्टर, वकील, अध्यापक और प्रबंधकीय व्यावसाय में होते हैं, उनके ग्रामर स्कूल में प्रवेश लेने के अधिक अवसर होते हैं, बनिस्बत उनकी तुलना में जिन बच्चों के अभिभावक अकुशल व्यवसाय में होते हैं। इसी तरह ग्रामर स्कूलों में (सेकेण्डरी स्कूल) प्रवेश पाने वाले बच्चों के पास विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने के ज़्यादा अवसर होते हैं, उन बच्चों की तुलना में जो व्यावसायिक विद्यालयों में प्रवेश लेते हैं। आगे हम यह भी कह सकते हैं कि जो पालक उच्च शिक्षा के संस्थानों में ज़्यादा समय बिता पाए हैं, उनके बच्चे भी शिक्षण संस्थानों में ज़्यादा समय तक रहते हैं और उच्च शिक्षा प्राप्त करते हैं। उच्च वर्ग के लोग कुल जनसंख्या का केवल 35 प्रतिशत हैं– मगर विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाने वाले 80 प्रतिशत इनके बच्चे होते हैं। इसके विपरीत श्रमिक वर्ग जनसंख्या में 65 प्रतिशत है, और विश्वविद्यालयों में इस निम्न श्रेणी के बच्चे केवल 19 प्रतिशत हैं। यह भी देखा गया है कि उच्च वर्ग के लोगों के 93 प्रतिशत बच्चे कोई न कोई व्यावसायिक योग्यता ले पाते है। लेकिन श्रमिक पालकों के केवल 40 प्रतिशत बच्चे कोई भी व्यवसायिक योग्यता ले पाते हैं।

उक्त आंकड़ों को आप निम्नांकित तालिका में और भी बेहतर ढ़ंग से समझ सकते हैं–

जनसंख्या के वर्ग	कुल जनसंख्या	विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने वाले बच्चे	व्यवसायिक योग्यता प्राप्त करने वाले बच्चे
उच्च वर्ग	35 प्रतिशत	80 प्रतिशत	93 प्रतिशत
श्रमिक वर्ग	65 प्रतिशत	19 प्रतिशत	40 प्रतिशत

पता करें

जहां आप अध्यापनरत हैं वहां कक्षा 5 में अध्ययनरत बच्चों के बारे में पता कर जानकारी एकत्र करें कि कितने बच्चे किस–किस सामाजिक वर्ग से हैं जैसे– श्रमिक वर्ग, कृषक वर्ग, व्यवसायी वर्ग, नौकरीपेशा वर्ग आदि। इन आंकड़ों का विश्लेषण करें और देखें कि कक्षा में किस सामाजिक वर्ग के बच्चे ज्यादा हैं? इस पर अपना विचार लिखें कि क्या इनकी शैक्षिक उपलब्धि में सामाजिक वर्ग का प्रभाव पड़ता है?

इन असमानता के बारे में कई लोगों ने चर्चा की है कि क्यों कुछ वर्ग के बच्चे स्कूलों में अच्छा प्रदर्शन करते हैं? कुछ मनोवैज्ञानिक व्याख्याएँ कहती है कि मध्यम वर्ग के बच्चे आनुवांशिक रुप से उच्च होते हैं। और ये वह अपने अभिभावक से वंशानुगत प्राप्त करते हैं। लेकिन इस समझ में कई समस्याएँ हैं–

इस धारणा के पीछे शारीरिक रचना, और बुद्धि व व्यक्ति के व्यवहार के आपसी सम्बन्धों के बारे में कई पूर्वाग्रह हैं। 'काले' लोग व महिलाओं के संदर्भ में भी यह कहा जाता था कि वे कम बुद्धिमान होते हैं। लेकिन शोधों से यह स्थापित हो गया है कि ये धारणाएँ गलत हैं। लेकिन फिर भी गरीबों के संदर्भ में अभी भी यह तर्क दिया जा रहा है।

इच्छाशक्ति के मनोविज्ञान में यह बहस की गई है कि निम्न सामाजिक स्तर से आने वाले बच्चों का पर्याप्त इच्छा नहीं होती जिससे वे स्कूलों में सफल हो सकें। लेकिन समाजशास्त्रियों का कहना है कि शैक्षिक संस्थान कुछ इस तरह से बनाए जाते हैं कि वे निम्न सामाजिक वर्ग के बच्चों को सफलता से दूर रखते है तथा दूसरी ओर मध्यम वर्ग के बच्चों को आगे बढ़ने में मदद करते है।

कुछ प्रश्न

नीचे एक शैक्षिक संस्थान के कुछ नियम दिए हैं, इन्हें ध्यान से पढ़ें –

* साल भर का शाला विकास शुल्क सत्र के पहले माह में जमा करना अनिवार्य है।
* बच्चों को शाला यूनीफॉर्म में आना अनिवार्य है।
* बच्चों को शाला में पूरी अवधि तक उपस्थित रहना अनिवार्य है।
* अवकाश के लिए पहले से स्वीकृति लेना आवश्यक है।
* कक्षा में शोरगुल करने पर कक्षा से बाहर कर दिया जाएगा।
* शाला में आने से पहले होमवर्क करना आवश्यक है।
* शाला में आयोजित पालक–शिक्षक की बैठकों में पालकों को उपस्थित होना आवश्यक है।

अब बताइए उपरोक्त नियम किस सामाजिक वर्ग के बच्चों को हतोत्साहित या प्रोत्साहित करेंगे? और क्यों?

मैकेनिन का कहना है कि मध्यम वर्ग के बच्चों की शिक्षा में अच्छा प्रदर्शन करने की प्रवृत्ति सिर्फ एक शुरूआत है। इसे ज़्यादा गहराई में समझना आवश्यक है। यह देखा गया है कि शैक्षिक सफलता का सम्बन्ध सामाजिक वर्ग से है परन्तु ये सम्बन्ध पूरी तरह से सटीक नहीं है, यह सिर्फ कुछ हद तक ही स्थिति को समझा सकते है पूरी तरह नहीं। इसलिए इसकी समझ बनाने के लिए बुद्धिमत्ता, अभिभावकों की सोच (अभिवृत्ति) आदि तत्वों को भी ध्यान में रखना जरुरी है। आगे यह भी देखा जाएगा कि अभिभावकों की अभिवृत्ति और सामाजिक वर्ग में भी एक सम्बन्ध है। ये पाया गया है कि मध्यम वर्ग के बच्चे, जो बच्चे बुद्धिमत्ता परीक्षण में अच्छा प्रदर्शन करते है, और वो बच्चे जिनके अभिभावकों की शिक्षा के प्रति सोच सकारात्मक होती है, वे ज़्यादातर एक ही हैं। इसलिए सामाजिक वर्ग और शैक्षिक उपलब्धि के बीच का कारण–प्रभाव इंगित करना जटिल हो जाता है।

कुछ समाजशास्त्री कहते हैं कि बच्चे अपने सामाजिक वर्ग की संस्कृति को स्कूल में लेकर आते हैं। इसलिए अलग–अलग सामाजिक वर्गों के बच्चों की भाषाई, अनुभवों, व्यवहार, प्रवृत्ति, विचारों, मूल्यों और कौशलों में अन्तर होता है। स्कूलों के संदर्भ में जब ये अलग–अलग अनुभव आंके जाते हैं तो ये मध्यवर्गीय परिवारों और मोहल्लों में पले बढ़े बच्चों को जीवन के बेहतर मौके पाने के लिए लाभ पहुँचाते हैं।

प्रश्न

ग्रामर स्कूल क्या है? छत्तीसगढ़ राज्य में कौन सा स्कूल का स्तर इसके समकक्ष होगा?

बर्नस्टाइन ने मध्य वर्ग तथा श्रमिक वर्ग के बच्चों और परिवारों के अलग–अलग भाषाई कोड की पहचान की। इन को 'डॉमिनेटेड' और 'डॉमिनेटिंग' वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। बर्नस्टाइन ने पाँच साल के बच्चों को कुछ तस्वीर दी और कहा कि इनका वर्णन करो। आप उनके वर्णन में भिन्नता नीचे देख सकते हैं–

डॉमिनेटिंग कोड (मध्यम वर्ग के बच्चे)

तीन लड़के फुटबाल खेल रहे हैं और एक बच्चा फुटबाल पर लात मारता है और वह खिड़की के पार चली जाती है। गेंद खिड़की तोड़ देती है और लड़के उसे देख रहे होते हैं और एक आदमी बाहर आता है और उन पर चिल्लाता है, क्योंकि उन्होंने खिड़की तोड़ी है इसलिए वे भाग जाते हैं फिर एक महिला खिड़की से बाहर देखती है और वो लड़कों को भगा देती है।

डॉमिनेटेड कोड (श्रमिक वर्ग के बच्चे)

वे फुटबाल खेल रहे हैं और वह बॉल को लात मारता है और वह वहाँ जाती है और खिड़की तोड़ देती है और वे उसकी ओर देखते हैं और वह बाहर आता है और उन पर चिल्लाता है, और उन्होंने उसे तोड़ दिया है, वे भाग जाते हैं और फिर वो बाहर देखती है और उन्हें भगा देती है।

कुछ प्रश्न

उपरोक्त दोनों वर्णन को पढ़कर बताए कि–

1. किस वर्णन से पता चलता है कि चित्र में कितने बच्चे हैं?
2. किस वर्णन से पता चलता है कि बच्चों को डाँटने वाली वयस्क है?
3. इस लेख में डॉमिनेटिंग तथा डॉमिनेटेड शब्दों का उपयोग किस–किस वर्ग के बच्चों के लिए किया गया है? आप ऐसे बच्चों की पहचान कैसे करते हैं?

अगर हमारे पास चित्र होता तो हम दूसरे वर्णन को ठीक से समझ सकते थे; श्रमिक वर्ग के बच्चे की भाषा 'सन्दर्भ पर निर्भर' (कॉनटेक्स्ट डीपेन्डेन्ट) हैं। बर्नस्टाइन कहते है कि श्रमिक वर्ग के बच्चे ''कथन और परिस्थितियों'' (स्पीच और सिचुवेशन) के बीच के इस अलग से सम्बन्ध को मानकर चलते हैं। हमारी कक्षा की परिस्थितियों में डॉमीनेटिंग कोड का ज्यादा इस्तेमाल होता है और शिक्षक भी इसी प्रकार की भाषा की अपेक्षा करता है। इस कारण श्रमिक वर्ग के बच्चे ज्यादा नुकसान में रहते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि डॉमिनेटेड कोड मानक भाषा से किसी निचले स्तर का है। इस सम्बन्ध में लैबोब ने यह सिद्ध किया कि डॉमिनेटेड कोड अमूर्त अवधारणाओं (एब्स्ट्रेक्ट) से सम्पन्न होता है। लैबोब का सुझाव है कि जैसे हम बच्चे से अपेक्षा करते हैं कि वह अपनी भाषा को स्कूल की भाषा के अनुरूप बनाए उसी तरह हम यह भी आसानी से अपेक्षा कर सकते हैं कि स्कूल अपनी भाषा को बच्चे की भाषा के अनुरूप बनाए।

कुछ और समाजशास्त्रीय अध्ययनों में यह देखा गया कि अलग–अलग विकास खण्डों या क्षेत्रों में उपलब्ध संसाधनों में क्या अन्तर है। जिन इलाकों में शिक्षक, भवन व अन्य सुविधाओं पर व्यय ज्यादा हुआ है, उससे उस इलाके के बच्चों की शैक्षणिक सफलता पर प्रभाव पड़ा है। यह लगता है कि किसी क्षेत्र विशेष में उपलब्ध विभिन्न प्रकार के संसाधनों के अनुसार जीवन अवसर बेहतर होते हैं। हालांकि कई लोग यह तर्क देते हैं कि शैक्षिक उपलब्धियों और नवाचारों का शिक्षा पर हो रहे व्यय के स्तर से सीधा सम्बन्ध इतना भी प्रमाणित नहीं है और इसके लिए वे लीड्स क्षेत्र में हुए एक अध्ययन का हवाला देते हैं।

सामाजिक शोधों ने कोई अंतिम फैसला नहीं दिया है। आनुवांशिक कारणों का सिद्धान्त सबसे ज्यादा सन्देहास्पद साबित हुआ है। जो सिद्धान्त भाषा या संस्कृति, आर्थिक वंचना एवं संसाधनों की उपलब्धि आदि पर आधारित है, उसमें कुछ बातें तार्किक लगती है। एक अकेले तर्क को निश्चित करने की बजाय ऐसी व्याख्या जिसमें अलग–अलग कारण आपस में जुड़े हुए हों शायद स्थिति को बेहतर समझा सके। कई आर्थिक कारणों के साथ–साथ ब्रिटेन के संदर्भ में कई विशेष स्थितियाँ भी महत्वपूर्ण हो जाती हैं। जैसे यह भी कहा जा रहा है कि एकल अभिभावकों के बच्चे विशेषतौर पर जोखिम में होते हैं क्योंकि उनमें से अधिकांश लोग गरीबी में जीते हैं।

चिह्नांकन सिद्धान्त (लेबलिंग थ्यौरी) का योगदान

जैसे कि हम अपने जेण्डर के अस्तित्व को लड़के और लड़की के रुप में जान लेते हैं वैसे ही हम हमारे सामाजिक वर्ग की पहचान भी सीख लेते हैं। बच्चे के सामाजिक वर्गीकरण का प्रभाव 'आदर्श विद्यार्थी' को परिभाषित करने से सम्बंधित होता है। शैक्षणिक व्यवस्था ''आदर्श विद्यार्थी'' को एक खास तरीके से परिभाषित करती है। बेकर ने शिक्षकों से बातचीत करके यह देखा कि उनकी 'आदर्श विद्यार्थी' की परिभाषा क्या–क्या है – पढ़ाई में रुचि लेना, मेहनत से स्कूल में काम करना, घर में इस प्रकार की तैयारी होना की वे स्कूल में जल्दी व तेजी से काम कर लें आदि। एक ''आदर्श विद्यार्थी'' की छवि में और भी नैतिक गुण शामिल थे जैसे साफ–सुथरा रहना, स्वस्थ रहना, अच्छे कपड़े पहनना, उनके व्यवहार में शालीनता एवं धैर्य होना आदि। शिक्षक कक्षा में जो विधियाँ अपनाते हैं वह सिर्फ ऐसे बच्चों के लिए उपयोगी रहती है। यह विधि केवल उन बच्चों के लिए कारगर है, जो ''आदर्श विद्यार्थी'' की सीमा के अन्दर हैं किन्तु यह उनके लिए कारगर नहीं है जो बच्चे इस सीमा के बाहर हैं।

कुछ प्रश्न

1. उपरोक्त पैराग्राफ के आधार पर बताइये कि 'आदर्श विद्यार्थी' किस सामाजिक वर्ग के हो सकते हैं?

2. सामाजिक वर्ग के आधार पर बच्चों को आदर्श विद्यार्थी के रुप में परिभाषित करना कहां तक उचित है?

योग्यता के आधार पर व्यवहार

बहुत सी परिस्थिति में बच्चे 'उच्च' और 'निम्न' योग्यता के आधार पर शिक्षकों द्वारा चिह्नांकित किए जाते हैं। यह दिखाया गया है कि बच्चों को जैसे चिह्नांकित किया जाता है उसी के आधार पर वे प्रदर्शन करते हैं। यदि बच्चा उच्च योग्यता वाला माना गया है, तो वह उसी के आधार पर कक्षा में प्रदर्शन करता है। वैसे ही यदि वह निम्न योग्यता वाला बच्चा माना जाता है तो उसका प्रदर्शन इसी दिशा में होता है।

कक्षा में चिह्नांकन की प्रक्रिया के अलावा सामाजिक संदर्भ में भी चिह्नांकन किया जाता है। अध्यापक बच्चे का चिह्नांकन, ''बच्चे अच्छे घर'' से आते हैं या नहीं के आधार पर करते हैं। यह माना जाता है कि जो बच्चे ''अच्छे घर'' से आते हैं वे शिक्षक के 'आदर्श विद्यार्थी' की कल्पना के ज़्यादा पास होते हैं। किन्तु गुडग्रेस का अध्ययन यह साबित करता है कि शिक्षक की इस धारणा और बच्चों के वास्तविक प्रदर्शन के बीच कोई साम्य नहीं होता। जब मानक मूल्यांकन पद्धति से बच्चों की जांच की गई तो देखा गया कि श्रमिक वर्ग के बच्चों ने शिक्षकों की उम्मीद से ज़्यादा अच्छा प्रदर्शन किया। इस तरह यह सामान्य निष्कर्ष निकाला जा सकता है की शिक्षक के त्रुटिपूर्ण निदान का बच्चे के भविष्य पर नकारात्मक असर पड़ता है।

कुछ प्रश्न

1. बच्चों के प्रति शिक्षकों की वे कौन–कौन सी धारणाएं हैं जिनसे कक्षा में बच्चों का प्रदर्शन प्रभावित होता है? इसे आप कितना उचित मानते हैं?

2. आपके अनुसार कक्षा में बच्चों के प्रदर्शन को उसका सामाजिक संदर्भ कितना प्रभावित कर सकता है?

3. आप कैसे पता करेंगे कि कौन सा बच्चा किस सामाजिक वर्ग से है?

इस संदर्भ में बर्नस्टाईन का कहना है कि शिक्षा व्यवस्था द्वारा इस तरह का गलत निदान (डाइग्नोसिस) उपयोग में लाया जाता है ताकि गरीब बच्चों के बारे में जो छवि है, उसे बनाए रखा जा सके। परीक्षा ऐसी ली जाती है कि गरीब बच्चा उसमें पास न हो सके।

माता–पिता का चिह्नांकन

चिह्नांकन कई तरीकों से हो सकता है। हमारे संदर्भ में वर्गीकरण निम्न बिन्दुओं से होता है– जैसे– स्त्री, पुरुष, जातीय पृष्ठभूमि, बोली जाने वाली भाषा, धार्मिक विश्वास, शारीरिक क्षमताएँ, संज्ञानात्मक उपलब्धि, कक्षा में व्यवहार आदि। ये चिह्नांकन शिक्षक के मन में बनी 'आदर्श विद्यार्थी' की धारणा की तुलना में रखे जाते हैं। इस तरह के वर्गीकरणों को बनाने के लिए शिक्षक को जानकारी चाहिए होती है जो कि वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तरीकों से एकत्र करता है। उदाहरण के लिए शिक्षक विद्यार्थी के नाम

से उसकी जाति/धर्म का पता लगा सकते हैं। परन्तु वर्ग जानने के लिए विद्यार्थी के माता–पिता का व्यवसाय जानने की जरुरत होती है। ऐसी जानकारी 'अच्छे' माता–पिता को परिभाषित करने के काम में ली जाती है।

ये माना जाता है कि 'अच्छे' माता–पिता अपने बच्चों को घर में मार्गदर्शन देते हैं ताकि वे साफ–सुथरा रहे, ध्यान से पढ़ें, शालीन और मृदु भाषी रहें– पर वे बच्चों को सीधे तौर पर पढ़ाते नहीं हैं जो कि शिक्षक का काम है। शार्प और ग्रीन ने यह दिखाया कि जिन माता–पिताओं के बच्चे स्कूल में सफल होते हैं व अच्छा प्रदर्शन करते हैं वे ''अच्छे'' माता पिता की छवि को साकार नहीं करते क्योंकि वे घर में बच्चों को अपनी तरह से पढ़ाते हैं। इस तरह उनके बच्चे 'आदर्श विद्यार्थी' की कुछ अपेक्षाओं को पूरा कर पाते हैं–क्योंकि वे स्कूल में तेजी से कार्य करते हैं और तैयारी के साथ अच्छा प्रदर्शन देते हैं। उनके माता–पिता ''अच्छे माता–पिता'' होने का एक हद तक कर लेते है– जिसमें यह भी जरूरी है कि वे घर में बच्चों को पढ़ा कर शिक्षक के काम में दखलअन्दाजी न जताएँ!

प्रश्न

इस लेख के अनुसार बताइये कि बच्चों के माध्यम से शिक्षक उनके माता–पिता के प्रति अपनी धारणा कैसे बनाते हैं? आप इस तरीके से कितना सहमत हैं?

निहितार्थ

साधारणतया यह कहा जाता है कि विद्यालय मध्यवर्ग की संस्था होती है। पर यह एक अतिसरलीकृत कथन है 'आदर्श विद्यार्थी' और 'अच्छे माता–पिता' इन दोनों अवधारणा के प्रयोग से इस बात की सम्भावना बढ़ जाती है कि कामकाजी परिवार के बच्चों की तुलना में मध्यमवर्गीय परिवार के बच्चे उन छवियों के लक्षणों को ज़्यादा प्रदर्शित कर सकेंगे। इससे यह सम्भावना नगण्य नहीं हो जाती कि कामकाजी परिवार के कुछ बच्चे व माता–पिता ''आदर्श छात्र'' और ''अच्छे माता–पिता'' की छवि पर खरे उतरे और न ही यह सम्भावना नगण्य होती है कि कोई मध्यमवर्गीय छात्र व माता–पिता ''बुरे छात्र'' व ''बुरे माता–पिता'' करार कर दिए जाएँ। चिह्नांकन के सिद्धान्त से हम स्कूल, छात्र, सामाजिक वर्ग व अन्य विशेषताओं के बीच के जटिल सम्बन्धों को टटोल सकते हैं।

रिस्ट के अनुसार शिक्षकों का व्यवहार

रिस्ट ने एक अश्वेत समुदाय के स्कूल का तीन साल तक अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि शिक्षक का बच्चों के प्रति एक पक्षीय समझ का प्रभाव अलग–अलग रूपों में है। किन्डरगार्टन कक्षा शुरू होने के सिर्फ 8 दिन के अन्दर शिक्षक ने बच्चों की अकादमिक योग्यता के अपने अनुमान के आधार पर स्थाई बैठक व्यवस्था बना डाली– जिसके लिए किसी प्रकार का विधिवत् मूल्यांकन नहीं किया गया था। कमरे में बच्चों की बैठक व्यवस्था उनके बीच के सामाजिक विभेद का आईना थी। गरीब परिवारों के बच्चे और वे, जिन्हें सरकारी मदद मिलती थी वे एक साथ बैठते थे, जबकि कामकाजी वर्ग के बच्चे दूसरे समूह में बैठते थे और मध्य वर्ग के बच्चे तीसरे सूमह में। बच्चों के इन अलग–अलग समूहों से शिक्षक की अपेक्षाएँ भी अलग–अलग थीं। जिन्हें वह उनके बीच अलग–अलग समय देकर, अलग–अलग सराहना देने व अनुशासित करने की क्रियाएँ करके, व कक्षा में अधिकार व स्वतंत्रता के अलग–अलग मौके देकर

कार्यरूप में उतारता था। रिस्ट दिखाते हैं कि कैसे किंडरगार्टन में स्थापित ये परिपाटियाँ साल दर साल बनाए रखी गई।

इस तरह जब बच्चों को उनके सामाजिक वर्ग के नाम से दाग दिया जाता है तो इस बात के उनको जीवन में मिल सकने वाले अवसरों पर दूरगामी परिणाम होते हैं।

हारग्रीव्स का मत

हारग्रीव्स ने दिखाया कि सेकेण्डरी स्कूल इस तथ्य पर बहुत गर्व करते हैं कि कुछ चुनिंदा श्रमिक वर्ग के बच्चे उनकी छठी कक्षा को उत्तीर्ण कर पाए। बहुसंख्य कामकाजी बच्चों की विफलता को वे नजरअदांज कर देते हैं। यह एक छुपे हुए पाठ्यक्रम (हिडन करीकुलम) के पहलु को दर्शाता है। बच्चे ऐसा मानना शुरु कर देते हैं कि श्रमिक वर्ग में पैदा होना या श्रमिक हो जाना बुरा है। यह भी मानना शुरु करते हैं कि श्रमिक वर्ग से सभी बच्चों को बचना चाहिए। ये सारा संदेश विद्यार्थी को शिक्षक के उन पर होते व्यवहार से – जैसा कि ''तुम्हें ज्यादा मेहनत से काम करना चाहिए'' जैसे कथनों से मिल जाता है। इसके बावजूद ज्यादातर श्रमिक वर्ग के बच्चे अपने वर्ग से बच नहीं पाते। हारग्रीव्स के अनुसार शिक्षक की नज़र में सफलता का मतलब है कि कामकाजी बच्चा ''मध्यम वर्ग'' का बन जाए परन्तु यह अपेक्षा कामकाजी वर्ग के बहुसंख्यी छात्रों की प्रतिष्ठा को ध्वस्त कर देती है। वे असफल होने के कलंक बटोरते रह जाते हैं।

प्रश्न

रिस्ट तथा हारग्रीव्स के द्वारा बच्चों के संदर्भ में किये गये अध्ययनों की मुख्य–मुख्य बातों को बिन्दुवार लिखिए।

सारांश

पाँच अवस्थाएँ जिसके द्वारा बच्चों का वर्गीकरण किया जाता है–

1. शिक्षक कुछ विद्यार्थियों से विशेष व्यवहार और उपलब्धियों की अपेक्षा करते हैं।

2. इन अपेक्षाओं के कारण ही शिक्षक विद्यार्थियों से अलग–अलग व्यवहार करता है।

3. शिक्षक के व्यवहार से विद्यार्थी को पता चलता है कि किस तरह के व्यवहार और उपलब्धियों की उनसे अपेक्षाएँ है। इसका प्रभाव विद्यार्थियों की आत्म अवधारणा, उपलब्धियों, और अभिप्रेरणा पर दिखाई देता है।

4. अगर शिक्षक का बच्चों के प्रति एक तरह का व्यवहार बना रहता है तथा बच्चे किसी सक्रिय तरीके से उसका प्रतिरोध करके उसे बदल नहीं देते, तो यह बच्चे के व्यवहार और उपलब्धियों को आकार प्रदान करने लगता है। ऊँची अपेक्षाएँ, ऊँचे स्तर की उपलब्धियों को प्राप्त करने की तरफ ले जाती है।

5. कुछ समय के उपरांत बच्चे की उपलब्धियाँ शिक्षक की आशाओं के अनुरुप हो जाती है।

अभ्यास कार्य

1. कक्षा में बच्चों के प्रदर्शन को कौन–कौन से आर्थिक एवं सामाजिक कारक प्रभावित करते हैं?

2. ''शिक्षक कक्षा में बच्चों से अलग–अलग व्यवहार करता है जिस कारण कक्षा में बच्चों का प्रदर्शन प्रभावित होता है।'' इस कथन की व्याख्या चिह्नांकन सिद्धांत (लेबलिंग थ्योरी) के अनुसार कीजिए।

3. असमानता और सामाजिक वर्ग किसी बच्चे की शिक्षा के अवसर को भी प्रभावित करता है। समझाइये।

4. सामाजिक वर्ग और शैक्षिक उपलब्धि के बीच के सम्बंध पर मैकेनिन के क्या विचार हैं? लिखिए।

परियोजना कार्य

अपनी कार्यरत संस्था में पढ़ने वाले बच्चों (किसी एक कक्षा के बच्चों) के सामाजिक एवं आर्थिक वर्ग का उनके शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव को देखने के लिए श्रमिक वर्ग, कृषक वर्ग तथा अन्य वर्ग के बच्चों का सूचीकरण कर उनकी शैक्षिक उपलब्धि (पिछली परीक्षा के प्राप्तांक या आपके द्वारा ली उपलब्धि परीक्षण) के साथ तुलना कीजिए। इस स्थिति का निर्माण कैसे हुआ होगा पहचान कर लिखिए।

|||||||||

अध्याय – 7

काम के लिए पलायन तथा बच्चों की शिक्षा

- सामान्य परिचय
- अध्याय के उद्देश्य
- विषयवस्तु
- अभ्यास कार्य
- संदर्भ सूची

सामान्य परिचय

सामान्यतः समाज के सभी वर्गों के लोग स्वेच्छा से जीविकापार्जन के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान खासकर अपने मूल निवास से अन्य स्थान को जाते हैं। कुछ लोग पढ–लिख कर अपने मूल निवास से अन्यत्र नौकरी करने जाते हैं और कई बार तो वे वहीं हमेशा के लिए बस भी जाते हैं। लेकिन समाज का एक ऐसा तबका भी है जिनको अपना मूल निवास स्थान कुछ दिनों के लिए सिर्फ इसलिए छोड़ना पड़ता है क्योंकि उन्हें वर्षभर अपने निवास स्थान में काम उपलब्ध नहीं हो पाता। इसे आप उनका मौसमी उत्प्रवास कह सकते हैं। इस पठन सामग्री में ऐसे ही एक सामाजिक वर्ग का जिक्र है जो वर्ष के कुछ खास दिनों में काम की तलाश में अन्यत्र जाते हैं। इनका प्रभाव बच्चों की शिक्षा पर भी पड़ता है।

अध्याय के उद्देश्य

समाजिक वर्ग–काम के लिए पलायन और बच्चों की शिक्षा पर उसके प्रभाव को समझना।

अविभाजित मध्य प्रदेश के छत्तीसगढ़ प्रदेश के 5 ज़िलों (रायपुर, बिलासपुर, राजनाँदगॉव, दुर्ग तथा रायगढ़) के 100 गाँवों में "Seasonal Rural Out-Migration from Chhattisgarh Region with Special Reference to Scheduled Castes & Scheduled Tribes Communities" सन् 2000 शीर्षक से किए अध्ययन में कहा गया है कि–

छत्तीसगढ़ के मैदानी गाँवों की जनसंख्या के लगभग 9 प्रतिशत लोग जीविका के लिए हर साल दूसरे राज्यों को पलायन करते हैं। इनमें से 40% लोग अनुसूचित जाति व 20% लोग जनजाति के हैं। इनमें छत्तीसगढ़ से बाहर दिल्ली, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पंजाब, महाराष्ट्र आदि राज्यों में जाने वालों का प्रतिशत ज्यादा है। इनमें सीमान्त कृषक तथा भूमिहीन श्रमिकों की संख्या अधिक है जो ज़्यादातर निरक्षर हैं या थोड़ा बहुत पढ़–लिख लेते हैं या पाँचवी तक पढ़े होते हैं। जनसंख्या का सबसे ज़्यादा दुखद पहलू यह है कि इनमें से एक तिहाई बच्चे हैं। अर्थात इनमें से 14 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों का प्रतिशत लगभग 13 प्रतिशत है जो माता–पिता के साथ अपनी

पढ़ाई छोड़कर उनके साथ चले जाते हैं। ईंट की भट्टियों में काम करने वाले परिवारों के बच्चे भी ईंट बनाने के काम में शामिल होते हैं क्योंकि इस काम में पूरा परिवार एक इकाई के रूप में काम करता है।

जनसंख्या के सर्वे के आधार पर यह देखा गया है कि लोग प्रतिदिन प्रति व्यक्ति 40 से 100 रु. तक कमाते हैं तथा प्रति परिवार 2000 से 10000 (Migrant period) तक मासिक बचत करते हैं। यद्यपि 80 से 100 रूपए तक कमाने वालों तथा 3000 से 10000 रुपए तक बचत करने वालों का प्रतिशत अत्यन्त कम होता है।

पलायन हर वर्ष माह नवम्बर से जनवरी के मध्य होता है। जबकि कुछ परिवार तो जून के महीने में अपने निवास में वापस आते हैं। यहाँ उल्लेखनीय है कि ये माह बच्चों की शिक्षा के लिए बहुत महत्वपूर्ण होते हैं।

इस प्रकार आप स्वयं देखें कि जीविका के लिए समाज का कौन सा वर्ग ज़्यादा पलायन करने के लिए मज़बूर है और इसका बच्चों की शिक्षा पर कैसा प्रभाव पड़ता है?

अभ्यास कार्य

1. सामाजिक वर्ग–काम के लिए मौसमी उत्प्रवास तथा बच्चों की शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभाव पर एक टीप लिखिए।

2. आपकी शाला के उन बच्चों के नामों की सूची बनाइये जो वर्ष के कुछ खास दिनों में कक्षा में अनुपस्थित रहते हैं? इनमें से किन्ही पांच बच्चों के अभिभावकों से चर्चाकर पता लगाइये कि बच्चों की अनुपस्थिति के क्या–क्या कारण हैं?

| | | | | | | | | |

अध्याय – 8

प्राथमिक शिक्षा को मज़बूती प्रदान करने वाली पिछली और अगली कड़ियाँ

संक्षिप्त सिंहावलोकन/विहंगम दृश्य (overview)

अध्याय की रूपरेखा

- सामान्य परिचय
- अध्याय के उद्देश्य
- शीर्षक–उप शीर्षक
  - पिछली और अगली कड़ियाँ
  - बच्चों को स्कूल में बनाये रखने के कारक
  - शिक्षित कामकाजी युवा आदर्श प्रदान करते हैं
  - कैम्प में सेतु पाठ्यक्रम
  - परिदृश्य एक
  - परिदृश्य दो
  - मामलों का अध्ययन
  - शिक्षा में गुणवत्ता का सवाल
  - बाल मजदूरों को स्कूल लाने वाले कायक्रमों की सीमाएं
  - मुख्यधारा की शिक्षा व्यवस्था और वैकल्पिक प्रयोग के बीच संवाद
  - जनगणना आंकड़ों से उभरती तस्वीर
- सत्रगत कार्य
- परियोजना कार्य
- संदर्भ ग्रंथ

विमला रामचंद्रन

सामान्य परिचय

अपने देश के गरीब तबकों के बच्चे स्कूल न जाकर खेतों दुकानों व कारखानों में काम करते हैं–घरेलू काम करते हैं। कई बच्चे ऐसे हैं जो किसी कारण शाला त्याग देते हैं और दुबारा वहां जाने का साहस नहीं करते हैं। ऐसे बच्चों को शाला में कैसे लाएं व शालेय शिक्षा पूरी कैसे करवाएं? इन समस्याओं के विभिन्न पहलुओं पर इस आलेख में विचार किया गया हैं।

अध्याय के उद्देश्य

1. पूर्व प्राथमिक शिक्षा, सेतु शिक्षा तथा उच्च शिक्षा के महत्व को समझना।
2. एम. वी फाउंडेशन का बाल मजदूरी उन्मूलन व शिक्षा का सार्वभौमीकरण के प्रयास को समझना/जानना।
3. सार्वभौमीकरण के दो परिदृश्य– एक जिसमें शासन, समुदाय व शाला को आधार बनाया गया दूसरा जिसमें बच्चों व युवाओं को संगठित करना महत्वपूर्ण साबित हुआ, को समझना।
4. शालेय शिक्षण में गुणवत्ता लाने में नवाचारी प्रयासों की सीमाएं व समस्याएं समझना।
5. जनगणना आंकडों से उभरती चुनौतियों को समझना।
6. बुनियादी शिक्षा के सार्वभौमीकरण में स्कूल पूर्व शिक्षा, सुधारात्मक शिक्षा तथा प्राथमिक शिक्षा के बाद की शिक्षा की भूमिका को जानना।

7. स्कूल न जाने वाले बच्चे और बाल मजदूरी के मध्य सम्बन्धों को देख पाना।

8. इस बात को समझ पाना कि समाज के गरीब बच्चों का बेहतर वर्गों के बच्चों से मुकाबला तभी सम्भव है जब उनके लिए गुणात्मक शिक्षा उपलब्ध हो।

पिछली और अगली कड़ियाँ

व्यापक रूप से यह माना जाता है कि स्कूल जाने वाले बच्चों का एक महत्वपूर्ण अनुपात उन बच्चों का होता है (विशेषकर दलित या शोषित पृष्ठभूमि के बच्चे और लड़कियाँ) जो या तो पाँचवी कक्षा में पहुँचने से पहले ही स्कूल छोड़ देते हैं, अथवा यदि वे स्कूल जाना जारी भी रखते हैं तो बहुत थोड़ा सीखते हैं। यह बात उन बच्चों में सबसे अधिक देखी जा सकती है जो हमारे समाज के सबसे कमज़ोर तबके से आते हैं, जिनमें से अधिकांश सरकारी प्राथमिक स्कूल व्यवस्था पर निर्भर करते हैं। यह तो सभी को पता है कि सरकारी स्कूलों (ग्रामीण और शहरी) और निजी/सहायता प्राप्त स्कूलों के बीच शैक्षिक उपलब्धियों में काफी बड़ा अन्तर होता है।

गैर सरकारी संगठनों की परियोजनाओं, सरकारी कार्यक्रमों, और अन्य साझा उपक्रमों के अनुभवों ने यह उजागर किया है कि अच्छी गुणवत्ता के व सबको जोड़ने वाले पाठ्यक्रम या सघन पाठ्यक्रम बच्चों को फिर से शिक्षा की मुख्य धारा में आने के लिए प्रेरित करने में प्रभावी रहे हैं। इसी प्रकार कमज़ोर बच्चों की सहायता के लिए चलाए गए पाठ्यक्रम और विशिष्ट प्रशिक्षण कैम्पों/कार्यक्रमों से ना केवल बच्चों को स्कूल छोड़ने से रोकने में अपितु स्कूल में उनके शिक्षा सम्बन्धी उपलब्धियों को बेहतर बनाने में भी जबर्दस्त परिवर्तन आया है। नीतियाँ बनाने वालों, प्रशासकों और शिक्षा कर्मचारियों से हुई चर्चाओं से यह बात सामने आई है कि बुनियादी शिक्षा का सार्वभौमीकरण तब तक सम्भव नहीं है जब तक हम इन तीन महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर ध्यान न दें– स्कूल–पूर्व शिक्षा, सुधारात्मक शिक्षा और उन बच्चों के लिए जोड़ने वाले संक्षिप्त पाठ्यक्रम जिन्होंने या तो स्कूल छोड़ दिया है या जो सिखाया जा रहा है उसे सीखने में असमर्थ हैं, और तीसरा है प्राथमिक शिक्षा के बाद की शिक्षा। जहाँ शुरुआती बचपन की देख–रेख और शिक्षा (जिसे भारत में ई.सी.सी.ई. के नाम से जाना जाता है) का महत्व निसन्दिग्ध रूप से स्वीकार किया जा चुका है, वहीं अन्य दो क्षेत्रों के लिए यही बात नहीं कही जा सकती। इसी सन्दर्भ में पूरे देश के शिक्षाविद् पिछड़ी और अगली कड़ियों के बारे में बात करते हैं जो प्राथमिक शिक्षा को मज़बूत करती हैं।

बच्चों को स्कूल में बनाए रखने में या शाला त्यागी बच्चों को वापस लाने में कौन–कौन से कारक मदद करते हैं–

प्राथमिक शिक्षा में बच्चों की सक्रिय भागीदारी ढेर सारे कारकों पर निर्भर करती है। स्कूल का भौतिक रूप से सुलभ हो जाना इसका सिर्फ एक आयाम है। बच्चे नियमित तौर पर स्कूल नहीं जाते, और अगर जाते भी हैं तो विभिन्न कारणों से वे बहुत अधिक नहीं सीख पाते हैं। हम स्कूल तक पहुँच, बेकार पड़े स्कूलों, शिक्षकों की अभिप्रेरणा और प्रतिबद्धता, तथा स्कूलों की गुणवत्ता जैसे व्यवस्थात्मक मुद्दों से शुरुआत करें। एक बार जब बच्चे स्कूल पहुँचते हैं, तो कई प्रकार के कारण यह तय करते हैं कि वे स्कूलों में बने रहेंगे या फिर उन्हें छोड़ जाएगे, वे कितना और क्या सीखते हैं, और क्या उनमें औपचारिक शिक्षा को जारी रखने के लिए अभिरुचि और कुशलता उत्पन्न होती है। और, यदि बच्चे गरीबी/पलायन, लिंग की भूमिका या किसी अन्य आर्थिक कारण के चलते जब स्कूल छोड़ते हैं, तो उन्हें औपचारिक शिक्षा व्यवस्था में वापस ले जाने के लिए बने किसी कार्यक्रम की उपस्थिति या अनुपस्थिति यह तय करती है कि वे दोबारा स्कूल जा पाएँगे या नहीं। ये सभी कारक समुदाय के सामाजिक और लैंगिग रिश्तों के व्यापक सन्दर्भों, क्षेत्र में रोजगार की स्थिति और बाल–मज़दूरी के प्रचलन की पृष्ठभूमि में काम करते हैं।

प्रश्न

1. उन कारकों पर चिन्हित/विचार कीजिए जो बच्चों को स्कूल में बने रहने तथा बाहर धकेलने के लिए जिम्मेदार होते हैं–

कारक

स्कूल में बने रहने के	स्कूल से बाहर धकेलने के

2. किसी क्षेत्र में रोजगार की स्थिति प्राथमिक शिक्षण को कैसे प्रभावित करती होगी? विचार करें–

_____

_____

शिक्षित कामकाजी युवा आदर्श प्रदान करते हैं

अनुभव यह बताता है कि ऐसे हतोत्साहित/दिग्भ्रमित युवाओं की मौजूदगी – जिन्होंने शायद प्राथमिक शिक्षा या तो पूरी की है या फिर बीच में ही छोड़ दी है, जिनके पास या तो अपर्याप्त रोजगार है या कोई भी रोजगार या उत्पादक कार्य नहीं है–उनके परिवार/समुदाय के दूसरे बच्चे की शिक्षा को बढ़ावा देने की बजाय उनका हौसला गिराने का काम करती है। युवा बच्चे और उनके परिवार उन्हें देखकर यही समझते हैं कि प्राथमिक शिक्षा गरीबों की स्थिति सुधारने का काम नहीं करती जब तक कि वे ऐसा कुछ नहीं सीखते जो उनके जीवन की मौजूदा परिस्थिति के सन्दर्भ में सार्थक दिखाई दे। यह उन परिस्थितियों में विशेष रूप से सच है जब शिक्षा की वजह से लोगों को किसी तरह का आर्थिक लाभ (रोजगार/स्वरोजगार) प्राप्त नहीं हो पाता, या फिर इतना भी नहीं होता कि दूसरों की दृष्टि में उनका मूल्य बढ़ जाता हो (जिसे आँका नहीं जा सकता, और जिसे आज कल सामाजिक पूँजी कहा जाता है)। साक्षर (या, आप अगर उन्हें कहना चाहें तो शिक्षित) नौजवानों में बढ़ रहे किशोरीय अपराध, हिंसा और सामान्य सामाजिक उथल–पुथल की वजह से युवाओं और शिक्षा (खास तौर से तब जब ऐसे युवाओं ने प्राथमिक स्कूल की शिक्षा पूरी की हो) के प्रति समाज में नकारात्मक रवैए को बल मिलता है।

यह घटना प्रायः निर्वात या चूषण (Vacuum or suction) प्रभाव कहलाती है, जिसमें पढ़े–लिखे युवाओं में किसी जाने–माने आदर्श के न होने की वजह से जनसंख्या में औपचारिक शिक्षा के प्रति आम तौर पर अरुचि पैदा हो जाती है। पर इसके विपरीत, मज़बूत आदर्शों की मौजूदगी और पढ़े–लिखे युवाओं में दिखने वाली सकारात्मक छवि उत्प्रेरक शक्ति का काम करती है, इससे समुदाय को अपने बच्चों की शिक्षा में निवेश करने के लिए प्रेरणा मिलती है। पश्चिमी देशों में स्कूल छोड़ने वालों की अधिक संख्या, शहरी हिंसा, अपराध इत्यादि का बहुत अच्छा दस्तावेजीकरण किया गया है।

युवाओं की सार्थक शिक्षा में निवेश करना, उन्हें भविष्य के लिए उम्मीद का आधार देना, और उन्हें व्यक्ति और समुदाय के तौर पर विकसित होने के लिए अवसर देना, अन्ततः इस बात को प्रभावित करता है कि विभिन्न समुदाय प्राथमिक शिक्षा को कितना मूल्य देते हैं।

Early child care education

ये मुद्दे प्राथमिक शिक्षा के लिए बेहद महत्वपूर्ण हैं। अभी तक, नीति निर्धारक और शैक्षिक प्रशासक औपचारिक स्कूल व्यवस्था और स्कूलों तक सीधी पहुँच के मुद्दों पर ध्यान देते रहे हैं। इन प्रयासों के बावजूद, स्कूली शिक्षा का प्रतिरोध करने वाले समूहों/गुटों/क्षेत्रों के उत्तरोत्तर अधिक प्रमाण मिल रहे हैं। हाशिए पर धकेल दिए गए बच्चों तक पहुँचना कठिन साबित हुआ है। इसी सन्दर्भ में, पिछली और अगली कड़ियाँ, आज के दौर में एक ऐसा वातावरण रचने के लिए महत्वपूर्ण मानी जाती हैं जहाँ हर बच्चा न सिर्फ स्कूल जाता हो बल्कि उसे स्कूली शिक्षा से लाभ भी मिलता हो। शिक्षा में अन्य स्त्रोतों के योगदान के महत्व को रेखांकित करने की दिशा में, विशेषकर बाल श्रमिकों के शिक्षा के अधिकार और शैक्षणिक अवसरों को स्थापित करने के लिए, आन्ध्र प्रदेश के एम वी प्रतिष्ठान ने पथ प्रदर्शक का काम किया है।

कुछ प्रश्न

1 शिक्षित युवाओं के लिए उपयुक्त रोजगार व आदर्श के अभाव का प्राथमिक शिक्षा पर क्या असर होगा?

3 एम. वी. फाउंडेशन ने बाल श्रमिकों व बंधुआ बच्चों को शाला में लाने के लिए क्या किया?

पथ–प्रवर्तक (The Trail Blazers)

कैम्प में सेतु पाठ्यक्रम

जब एम वी प्रतिष्ठान ने बाल श्रमिकों और बंधुआ बच्चों के साथ काम करना शुरू किया तब उसका उद्देश्य ऐसे बच्चों को इस रोजगार और बन्धन से बाहर निकालना और उन्हें वापस स्कूल भेजना था। लेकिन तब एक बड़ी समस्या सामने आई। ज़्यादा उम्र के बच्चे पहली कक्षा में शामिल होने के ख्याल से खुश नहीं थे। और उनकी पृष्ठभूमि को देखते हुए उनकी शैक्षणिक तथा मार्गदर्शन सम्बन्धी ज़रूरतें औपचारिक स्कूल व्यवस्था से पूरी नहीं हो पा रहीं थीं। इसका नतीजा यह हुआ कि, प्रतिष्ठान ने इन बच्चों के लिए ऐसे कैम्प लगाना शुरू किए जहाँ इन बच्चों को तेज़ी से ऐसी शिक्षा पाने की सुविधा जुटाई गई जिससे वे औपचारिक स्कूलों में पढ़ रहे अपने हम उम्र बच्चों का साथ पकड़ सकें। इन कैम्पों ने बच्चों को काम करने से स्कूल जाने का संक्रमण करने में मदद की, और उनके अभिभावकों को यह समझने के लिए प्रेरित किया कि बुनियादी शिक्षा हर बच्चे का अधिकार है। ऐसा पहला कैम्प 1991 में लगाया गया था। बच्चों के अति उत्साह और सीखने की गति से यह प्रतिष्ठान अभिभूत हो गया। इनमें से अधिकांश बच्चे 9 से 15 वर्ष समूह के थे। इसके बाद इस संस्था ने फिर पीछे मुड़कर नहीं देखा। आज, एम. वी. प्रतिष्ठान लड़कियों और लड़कों के लिए बड़ी संख्या में सेतु पाठ्यक्रम पर आधारित कैम्प चला रहा है।

स्कूल के बाहर के बच्चों के नामांकन की प्रक्रिया गाँवों में शुरू हुई। प्रतिष्ठान ऐसे छोटे अभिप्रेरण केन्द्र चलाता है जहाँ बाल श्रमिकों और स्कूल नहीं जाने वाले दूसरे बच्चों को कुछ घण्टों के लिए बुलाया जाता है। अभिप्रेरक–शिक्षक उनके परिवार वालों से मिलकर उनके सपनों और आकांक्षाओं के बारे में बातचीत करते हैं। वे अभिभावकों और घर के बुजुर्गों से बात करते हैं। कुछ ही सप्ताहों के भीतर, इन केन्द्रों के बच्चे कैम्पों में जाने के लिए तैयार हो जाते हैं। कुछ लड़के तो इतने अधिक अधीर हो जाते हैं कि वे अपने अभिभावकों की अनुमति के बिना ही भाग खड़े होते हैं और पास के कैम्पों में शामिल हो जाते हैं। फिर भी लड़कियों के मामलों में, परिवारों को तैयार करने में थोड़ा अधिक समय लगता है। इन कैम्पों में पहुँचने के बाद बच्चे पहले साथ–साथ रहना सीखते हैं। उन्हें बुनियादी साफ–सफाई, और खुद तैयार होने के बारे में सिखाने के अलावा, यह एहसास भी दिलाया जाता है कि वे बच्चे हैं इसलिए उन्हें अपने बचपन का आनन्द उठाने का अधिकार है। बच्चों को अपनी भावनाओं को खेलों संगीत और रंगमंच के ज़रिए व्यक्त करना सिखाया जाता है। यह सब गतिविधियाँ कैम्पों के अभिन्न अंग हैं।

छह से अठारह महीनों के भीतर, ये बच्चे कक्षा सात तक की पढ़ाई पूरी कर लेते हैं। क्योंकि कुछ बच्चे दूसरों की तुलना में अधिक तेजी से सीखते हैं इसलिए उनके सीखने की गति के अनुसार उनका एक अलग समूह तैयार कर दिया जाता है। शिक्षकों का प्रशिक्षण भी एम वी प्रतिष्ठान ही करता है और इन्हें बच्चों के साथ पूरे समय मिल–जुलकर रहना होता है। एक तरफ जहाँ वे कक्षा के कार्य की कड़ी समय सीमा का पालन करते हैं, वहीं पढ़ाने और सीखने की क्रियाएँ चौबीसों घण्टे चलने वाली गतिविधियाँ होती हैं। जैसे और जब भी बच्चे सातवीं कक्षा की योग्यता प्राप्त कर लेते हैं, उन्हें स्थानीय स्कूलों की प्रवेश परीक्षाओं में हिस्सा लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, या नज़दीक के गाँवों के माध्यमिक स्कूलों में उनका नाम लिखा दिया जाता है। कैंपों के ऐसे बच्चे बड़ी संख्या में हैं जिन्होंने स्थानीय रिहाइशी स्कूलों में नामाकंन के लिए सरकार द्वारा संचालित प्रवेश परीक्षाओं को सफलतापूर्वक उत्तीर्ण किया है। बच्चों और उनके परिवारों को हर बच्चे के शिक्षा के अधिकार को, और शिक्षा के अन्तर्निहित मूल्य को स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया जाता है। आन्ध्र प्रदेश की सरकार ने डीपीईपी ज़िलों में इस पहल का विस्तार किया है, और इसे स्कूल नहीं जा रहे बच्चों तक पहुँचने के लिए अपनी रणनीति का एक अहम हिस्सा भी बना दिया है।

कुछ प्रश्न

1. सेतु पाठ्यक्रम क्या है? यह प्राथमिक शिक्षा को सुदृढ़ करने में किस प्रकार सहायक है?
2. अधिक उम्र वाले बच्चों को पहली कक्षा में क्यों नहीं डाल सकते हैं?
3. गांव में छोटे अभिप्रेरणा केन्द्रों की क्या भूमिका थी?
4. सेतु पाठ्यक्रम पर आधारित कैम्पों में क्या–होता है?
5. कितने समय में कैम्प में सातवीं तक का पाठ्यक्रम पूरा किया जाता है?
6. इन कैम्पों की सीमा क्या है? किन बातों पर वे असर नहीं कर पाते?

यह बात सही है कि एम वी प्रतिष्ठान ने पूरे देश के कई संगठनों को इस दिशा में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया है, फिर भी हमारे सामने यह प्रश्न हैः क्या स्कूलों में पढ़ने वाले सभी बच्चे ''श्रम'' से मुक्त हैं? हम लड़कियों पर स्कूल से पहले और स्कूल के बाद पड़ने वाले काम के भारी बोझ से कैसे निपटें? उन बच्चों के बारे में क्या जो खेती के सबसे व्यस्त दिनों में खेतों में काम करते हैं, या फिर वे कारीगर बच्चे जो अपने कारोबार के सबसे व्यस्त दिनों में स्कूलों में नहीं आते? साफ तौर पर ऐसी ज़टिल परिस्थितियों और समस्याओं के लिए कोई सीधे या सरल उतर नहीं है। कामकाजी बच्चों के लिए फिक्रमन्द लोगों का उचित शैक्षणिक कार्यक्रम (द ऐप्रोप्रिएट एजुकेशन प्रोग्राम ऑफ द कंसर्ड फॉर वर्किंग चिल्ड्रन) इस दिशा में एक कारगर पहल है। आइए दो परिदृश्यों पर गौर करें और ज़मीनी स्तर पर उनके प्रभाव का विश्लेषण करें।

परिदृश्य एक – शासन, शाला और समुदाय आधारित पहल

- शुरुआती बिन्दु यह है कि सभी स्कूल न जाने वाले बच्चों को स्कूलों में लाया जाए, और इस तरह बाल मज़दूरी को खत्म कर दिया जाए।
- हर बच्चे के लिए बुनियादी (सिर्फ प्राथमिक नहीं) शिक्षा के आधारभूत अधिकार के लिए सरकार की ज़िम्मेदारी पर ज़ोर दिया जाए।
- इसी प्रकार, बाल–श्रम के खिलाफ एक अभियान चलाया जाए। यह मीडिया में, नीति के स्तर पर, प्रशासन के साथ और समुदाय में होना चाहिए। उत्पादों को 'बाल–श्रम मुक्त' घोषित किया जाए खास तौर से वे उत्पाद जो निर्यात किए जाते हैं।

- उन लोगों की पहचान की जाए जो बच्चों को नौकरियाँ देते है, और उनके खिलाफ मामले दर्ज़ कराए जाएँ।
- गाँवों/वार्डों में सम्पर्क केन्द्रों से शुरुआत करते हुए, शिक्षा से वापस जोड़ने वाले सेतु पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की जाए, और बच्चों को औपचारिक शिक्षा व्यवस्था में वापस लाया जाए।
- सरकार पर इस बात के लिए दबाव डाला जाए कि सेतु पाठ्यक्रमों के बच्चों को माध्यमिक और उच्च स्तरीय स्कूलों में प्रवेश मिले। अगर सम्भव हो तो रिहाइशी स्कूलों में भी उनके दाखिले के लिए प्रयास किए जाए।
- गाँवों को 'बाल–श्रम मुक्त' घोषित किया जाए। इन गाँवों में बच्चों (खास तौर से लड़कियों और छोटे कारीगर परिवारों के बच्चों) द्वारा काम किए जाने के न तो कोई दृश्य मिले, और न ही इसे सामाजिक तौर पर स्वीकार किया जाए। सरकार और समुदाय को इस उपलब्धि पर गर्व महसूस करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए।
- अधिक ज़ोर सामाजिक जुड़ाव और शैक्षणिक पहुँच पर है, और इसके साथ ही प्राथमिक शिक्षा की ओर सरकार के कर्त्तव्यों और ज़िम्मेदारियों को प्रमुखता से उठाने की बात जोड़ी गई है। शिक्षक और सामाजिक कार्यकर्ता स्कूल नहीं जाने वाले हर बच्चे का स्कूल में नाम लिखवाने पर ध्यान देते हैं और गुणवत्ता तथा उपलब्धियों से जुड़े मुद्दों को शैक्षणिक व्यवस्था पर छोड़ देते हैं। (नीतिगत और प्रशासनिक स्तर पर) प्रयास करते हैं कि बच्चों को उच्च स्तरों पर प्रवेश मिले; लेकिन जहाँ प्राथमिक से माध्यमिक स्कूलों और आगे अधिकार कुछ नहीं कर सकते। उनकी पहली प्राथमिकता बाल श्रम को खत्म करना है, इसलिये उनमें से अधिकांश में यह संगठन क्षमता नहीं होती है जिससे 'बचाए गए' बच्चों की शैक्षणिक आवश्यकताओं को एक सीमा से अधिक पूरा किया जा सके। वे सरकार पर दबाव ज़रूर डालते हैं कि वह इन बच्चों को उच्चतर–माध्यमिक स्तर तक कि शिक्षा प्रदान करने की ज़िम्मेदारी ले।

कुछ प्रश्न

1. 'उत्पादों को बाल श्रम मुक्त' घोषित करने से क्या तात्पर्य है? यह जरूरी क्यों है?
2. क्या आप इस बात से सहमत हैं कि किसानों के खेतों में तथा कारीगरों के परिवारों में भी बच्चों से काम नहीं करवाना चाहिए?

परिदृश्य दो – बच्चों, बाल श्रमिक व युवाओं पर आधारित पहल

- बच्चों और समुदायों से बात करके उनका विश्वास हासिल किया जाए।
- स्कूल जाने, और न जाने वाले बच्चे जिस तरह का काम करते हैं उसका विवरण इकट्ठा किया जाए।
- काम करने वाले बच्चों को स्वयंसेवी संस्थाओं/संगठनों के रूप में एकत्रित और संगठित किया जाए।
- उन्हें उनके अधिकारों के बारे में शिक्षित किया जाए, उन्हें उस काम का विवरण देने काबिल बनाया जाए।
- जो वे करते हैं, और उन्हें आगे क्या करना है इसके लिए स्वयं की प्राथमिकताएँ तय करने के लिए प्रेरित किया जाए।
- साथ ही, शिक्षकों और शैक्षणिक प्रशासन के साथ मिल कर शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने के लिए काम किया जाए और स्कूलों के भीतर क्या हो रहा है, इस पर भी नज़र डाली जाए। बच्चों (खास तौर से लड़कियों, शोषित वर्ग के बच्चों और कठिन परिस्थितियों से आने वाले बच्चों) के साथ किस तरह का व्यवहार होता हैं? बच्चे क्या कर रहे हैं, वे क्या सीख रहे हैं, और उनमें से कुछ क्यों स्कूल छोड़ देते हैं?

- संक्षेप में, बच्चों के स्कूलों में जाने और वहाँ बने रहने के लिए खींचने और धकेलने वाले कारकों पर ध्यान दें।
- समुदाय को बच्चों के संघ/संस्थाओं के बारे में शिक्षित करें, और एक हैल्प लाइन (मददगार व्यवस्था) भी बनाएँ। साथ ही, स्थानीय प्रशासन और पंचायतों से बातचीत का रास्ता खोलें। बच्चों के अधिकारों के बारे में जागरूकता पैदा करें (बच्चों के अधिकारों के बारे में संयुक्त राष्ट्र की संधि के अनुसार), मुख्य रूप से शिक्षा का अधिकार, शोषण, खतरनाक और गैर खतरनाक कामों से मुक्ति, रहने की जगह, पोषण, और मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य।
- अधिक उम्र के बच्चों को उनके भविष्य–प्रशिक्षण, रोजगार और स्व–रोजगार के अवसरों – के बारे में बात करने के लिए प्रेरित करें। शिक्षा को भविष्य के अवसरों से जोड़ें।
- हैल्प लाइन को उन बच्चों तक ले जाएँ जो तनाव या मुसीबत में हैं। बच्चों के अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए सरकार, पंचायत और मालिकों से मिलकर बात करें, और उनका सामना करें (यहाँ तक कि ज़रूरत पड़ने पर मामला भी दर्ज़ करें)।
- बच्चों को शिक्षा समेत अन्य बुनियादी अधिकारों से रोकने वाली समस्याओं के बारे में पंचायत, सरकारी स्कूलों और प्रशासन से बात करें ताकि इनका समाधान निकल सके।
- मौजूदा स्कूलों में शिक्षा के स्तर को सुधारने के लिए शिक्षकों और सरकार के शिक्षण विभाग के साथ काम करें ताकि वे प्रशिक्षण और अध्यापन के नवीनीकरण के ज़रिए ऐसा कर सकें।
- कुछ समय बाद, कार्यक्रम के तहत आने वाले गाँवों को ये घोषित करने दें कि उनके बच्चे स्कूल जाते हैं और वे यह भी स्वीकार करें कि वे घर पर कुछ कार्य भी करते हैं।

ध्यान इस बात पर दिया जाना है कि बच्चों (और उनके परिवार) को ज्ञान, आत्मविश्वास और सामूहिक क्षमता की सामर्थ्य प्रदान किया जाए ताकि वे कार्यवाही करने और एक –दूसरे की मदद के लिए अपने प्राथमिकताएँ तय कर सकें। बच्चे आपस में बात करें और तय करें कि वे क्या काम कर सकते हैं, और किस तरह का काम उनके विकास और वृद्धि के लिए खतरनाक हो सकता है। इसका कुल परिणाम यह होगा कि पूर्णकालिक और खतरनाक काम से बच्चे हट जाएँगे। जबकि घरों, परिवारों, खेतों, पारिवारिक व्यवसायों में उनके काम, और खेती के महत्वपूर्ण दिनों में परिवार की सहायता के लिए किए जाने वाले काम को स्वीकार किया जाए। इस तरीके में गुणवत्ता, तत्व और शिक्षा के औचित्य को केन्द्र बिन्दु में लाया जाता है। बच्चों के संगठन के ज़रिए सामाजिक एकजुटता और समुदाय की जागरूकता को हासिल किया जाता है।

कुछ प्रश्न

1. पलायन, बाल मजदूरों को 'हेल्पलाइन या बाल संगठन किस तरह मदद कर सकते हैं?
2. क्या आप इसके पक्ष में हैं कि बच्चों से गैर खतरनाक श्रम करवाया जा सकता है?
3. उपरोक्त दोनों परिदृश्यों में क्या बातें समान हैं? क्या फर्क हैं?

दोनों प्रकार के कार्यक्रमों से, उनमें भाग लेने वाले बच्चे आत्मविश्वास से भरे नौजवान युवक और युवतियों के रूप में निकलकर आते हैं, वे स्वयं को बहुत गरिमामय ढंग से प्रस्तुत करते हैं और अपने मन की बात निडर रूप से कह सकते हैं। इन दोनों ही तरीकों के ज़रिए बच्चों में आत्म सम्मान निर्मित करने पर प्रमुख ध्यान दिया जाता है। रंगमंच, संगीत, खेलों और कई तरह की यात्राओं और भ्रमण से बच्चों को बचपन की खुशियों का अनुभव

करने का अवसर मिलता है। अन्त में, कम से कम ग्रामीण बच्चों के साथ काम कने वाले संगठनों में, बच्चे पूर्णकालिक कामों से बाहर निकल आते हैं और शिक्षा के प्रति उनकी पहुँच बढ़ जाती है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि शुरुआती बिन्दु सहित दोनों की रणनीतियों और प्राथमिकताएँ भिन्न हैं। जहाँ एक तरीका, यह सुनिश्चित करने के लिए कि हर बच्चा स्कूल जाए, सरकार के दायित्व को प्राथमिकता देता है, तो दूसरे में बच्चों के अधिकारों के ढाँचे के अन्तर्गत उन्हें संगठित करके, और उनके सामर्थ्य को बढ़ावा दे कर स्कूल जाने के अनुभव की गुणवत्ता में सुधार की दिशा में काम करता है। एम वी प्रतिष्ठान और द कंसर्न्ड फॉर वर्किंग चिल्ड्रन – ये दोनों ही संगठन अपने ढंग से पथ–प्रर्वतक हैं और पूरे शिक्षण समुदाय को उनसे बहुत कुछ सीखने की आवश्यकता है।

कुछ प्रश्न

1. किसी गांव को 'बाल–श्रम मुक्त गांव' घोषित करने के लिए कौन–कौन से उपाय कारगर होंगे? अपने विचार लिखिए।
2. प्राथमिक शिक्षा और बाल मजदूरी के मध्य सम्बंधों पर एक टीप लिखिए।

मामलों का अध्ययन

इन मामलों के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य उनका दस्तावेजीकरण करके व्यापक तौर पर लोगों को ऐसे शैक्षणिक कार्यक्रम उपलब्ध कराना है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से बुनियादी शिक्षा को प्रभावित करते हैं/सहारा देते हैं/मज़बूत बनाते हैं। हम मानते हैं कि, यद्यपि हमारा निरूपण सम्पूर्ण तस्वीर नहीं दिखाता, हमारा प्रयास निम्न प्रकार के शैक्षणिक कार्यक्रमों का विवरण देने का रहा है :

- स्कूल से पहले की शिक्षा
- स्कूलों की तैयारी कराने वाले कैम्प और सेतु पाठ्यक्रम।
- जीवन से जुड़ी और अच्छी गुणवत्ता की शिक्षा के लिए सार्थक पहुँच (न केवल भौतिक पहुँच) प्रदान करने वाले कार्यक्रम।
- कमज़ोर वर्गों/क्षेत्रों के बच्चों और युवाओं में आत्म–सम्मान और आत्म–विश्वास निर्मित करने वाले कार्यक्रम।
- स्कूलों को खुशनुमा अनुभव बनाने और शैक्षणिक प्रक्रियाओं को अर्थपूर्ण बनाने वाले कार्यक्रम; स्कूलों में सुधारात्मक पाठ्यक्रम जो सीखने की क्षमता को बढ़ाते हों और स्कूल छोड़ने की दर को कम करते हों।
- विशेषकर कामकाजी बच्चों को लक्ष्य करके, सामाजिक रूप से संगठित करने के कार्यक्रम।
- स्कूल से बाहर के बच्चों और युवाओं के लिए त्वरित शैक्षणिक कार्यक्रम जिससे बड़े बच्चों को प्राथमिक शिक्षा को पूरा करने का अवसर मिलता है, और जिनका उद्देश्य, जहाँ तक सम्भव हो, या तो उन्हें औपचारिक व्यवस्था में वापस आने के योग्य बनाना, या फिर उन्हें ज्ञान/कलाएँ; जीवनयापन करा सकने वाला हुनर (विकास के लिए कलाएँ), जीवन के कौशल, और समग्र शैक्षणिक कार्यक्रम का लाभ प्राप्त करने में मदद करना होता है।

शिक्षा में गुणवत्ता का सवाल

पिछले 20 वर्षों में मूल्यों की शिक्षा पर होने वाली बहसों ने स्पष्ट रूप से पक्षपाती रंग ले लिया है। बुनियादी

मूल्य, जैसे कि अधिकार, समानता और नागरिकता – जो न केवल हमारे संविधान में प्रतिष्ठित हैं, बल्कि जो प्रजातंत्र का सारतत्व भी हैं – धार्मिक और सामुदायिक विमर्शों के शोर–गुल में खो गए हैं। कठोर ऊँच–नीच के दर्ज़ों पर आधारित, और निदेशात्मक प्रणाली से, अधिक साझा और विकेन्द्रित प्रणाली की ओर जाना है। शायद विकसित हो रहे प्रजातांत्रिक मूल्यों के लिए वर्तमान में यह जरूरी है। यहाँ पर यह बताना बहुत ज़रूरी है कि ऐसा नहीं है कि (शासकीय प्रणाली में) केवल बच्चे ही प्रभावित होते हैं, शिक्षकों को भी सामने आने वाली ज़रूरतों का समाधान करने की लगभग कोई स्वतंत्रता नहीं होती, शिक्षकों के साथ काम करने वाले प्रशिक्षकों को वास्तविक शिक्षण–प्रकिया से दूर रखा जाता है, निरीक्षक बच्चों और आपूर्ति की जानेवाली वस्तुओं को गिनने में व्यस्त रहते हैं, ज़िला प्रशासन केवल आदेशों का पालन भर करता है, और यहाँ तक कि राज्य सरकारों को भी शैक्षणिक कार्यक्रमों को चलाने की स्वतंत्रता नाममात्र की होती है। आखिर किसका हुक्म चलता है? किसी भी प्रकार का सुधार लाना इतना कठिन क्यों है? व्यवस्था इतनी सख्त और कठोर क्यों हो गई है? निःसन्देह विशेष शिक्षा परियोजनाओं, जिसमें डीपीईपी भी शामिल है, के अन्तर्गत कुछ प्रयास किए गए, ताकि अलग–अलग स्तरों पर लोगों को यह महसूस हो कि वे कार्यक्रमों के प्रभारी अधिकारी थे। शायद इसीलिए कर्नाटक की नल्ली कली (नली कल्ली–कर्नाटका राज्य में प्राथमिक स्तर पर गतिविधि आधारित पाठ्यक्रम कार्यक्रम) सम्भव हो पाया। वास्तव में (प्रयासों की) विविधता न केवल गुणवत्ता का सारतत्व है; बल्कि दोयम दर्ज़े के भीड़तंत्र के सामने यह हमारा एकमात्र सुरक्षा कवच भी है। हो सकता है कि अवसरों और स्वतंत्रता को बढ़ने के साथ बुनियादी प्रजातांत्रिक मूल्य स्कूली व्यवस्था में भी प्रवेश कर जाए, और यह भी हो सकता है कि हम मक्काला पंचायतों (बाल पंचायत) और बच्चों की संसदों के अनेक और उदाहरण देखें।

बाल मजदूरों को स्कूल लाने वाले कार्यक्रमों की सीमाएं– (गुणवत्ता को कैसे बनाए रखें?)

बाल श्रम और भूतपूर्व बाल श्रमिकों की औपचारिक स्कूलों तक पहुँच आसान बनाने के लिए चलाए गए अभियान अपने बताए गए लक्ष्य को हासिल करने में काफी सफल रहे हैं। यद्यपि यह देखा गया है कि इस प्रकार के कार्यक्रमों में गुणवत्ता वाले मुद्दों – जैसे बच्चे क्या सीख रहे हैं, वे कितना सीख रहे हैं, शिक्षा का तत्व क्या है, इत्यादि – को बिरले ही छुआ गया है। इस मार्ग के समर्थकों का यह तर्क है कि अच्छी गुणकारी प्राथमिक शिक्षा के लिए कार्यावली को निर्धारित करने की ज़िम्मेदारी सरकार की है। दूसरी तरफ, शिक्षा की गुणवत्ता और सार्थक पहुँच के वाद–विवाद में व्यस्त लोग यह तर्क देते हैं कि शिक्षा की गुणवत्ता और प्रासंगिकता में सुधार लाने की दिशा में काम करे बिना बच्चों को स्कूल में धकेल देना ही काफी नहीं होता। दुर्भाग्यवश, बड़े पैमाने पर अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम और सहायक शिक्षकों वाले वैकल्पिक स्कूल सीधी या भौतिक पहुँच को लेकर अधिक चिन्तित रहते हैं। अब शिक्षकों की क्षमता/योग्यता में निवेश करने को, तथा शैक्षणिक संसाधनों से मिलने वाले लगातार सहयोग की व्यवस्था करना, और अध्यापन के नवीनीकरण को प्राथमिकता नहीं दी जाती है। यहाँ हमें मात्रा और गुणवत्ता के बीच एक सन्तुलन को बनाए रखने के लिए एक पुरानी सूक्ति पर लाकर खड़ा कर देता है – क्या यह अति आवश्यक नहीं है कि हम जब पैमाने को बड़ा करें तो बुनियादी गुणवत्ता के मानदण्डों को भी सुनिश्चित करें?

लेखक के अनुसार बाल मजदूरों को स्कूल लाने वाले कार्यक्रम किन पहलुओं को छू नहीं पाये? सोचें।

विशेष कार्यक्रमों में भाग ले रहे गरीब बच्चों के साथ हुई बातचीत ने यह उजागर किया कि जब तक हम गुणवत्ता में निवेश करने के लिए राजी नहीं होते, तब तक समाज के बेहतर वर्गों के बच्चों से उनकी मुकाबला कर पाने की सम्भावना नहीं होगी। बच्चों के लिए प्राथमिक से माध्यमिक, और फिर व्यावसायिक शिक्षा की ओर बढ़ने के लिए आवश्यक ठोस शैक्षिक आधार, समय और वातावरण अब भी गरीब बच्चों की पहुँच से दूर है। गरीबों के लिए अधिकांश कार्यक्रम ज़्यादा से ज़्यादा माध्यमिक स्तर तक जाते हैं। यहाँ तक कि व्यावसायिक शिक्षा और जीवनयापन की कलाओं में प्रशिक्षण भी उनकी पहुँच से बाहर है। प्राथमिक शिक्षा को निश्चिंतता से जीवनयापन

करने का एक जरिया बनाने के लिए आवश्यक अगली कड़ियाँ अभी निर्मित होनी है। अलग–अलग अवस्थाओं पर निकास बिन्दुओं को स्थापित करना – विशेषकर कक्षा आठ और बारहवीं के बीच – बच्चों को जीविका और जीवन कलाओं पर आधारित कार्यक्रमों की ओर जाने में मदद करेगा। अधिकांश बुनियादी शैक्षिक कार्यक्रम दीर्घकालीन दृष्टिकोण और आगे की योजना लेकर नहीं चलते। गुणवत्ता और प्रासंगिकता के मुद्दों से जूझना शायद किसी भी दीर्घकालीन शैक्षिक योजना की ओर पहला कदम होगा। हम अब भी शुरुआती अवस्थाओं से ही जूझ रहे हैं।

मुख्यधारा की शिक्षा व्यवस्था और वैकल्पिक प्रयोग के बीच संवाद

नए–नए परिवर्तनों और प्रयोगों का एक आन्तरिक मूल्य होता है– वे हमारे ज्ञान के भण्डार को, तथा व्यवस्थाओं और प्रक्रियाओं की हमारी समझ को बढ़ाने में योगदान देते हैं। हालाँकि अधिकांश लोगों का यह भी मानना है कि जिस प्रकार से भारत में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति है, तथा उसे जैसे संचालित किया जाता है उसमें आधारभूत परिवर्तनों का होना ज़रूरी है। इसी दृष्टि से कर्णधारों और नए परिवर्तनों का मुख्य धारा की शिक्षा सम्बन्धी सोच तथा सिद्धान्तों पर पड़ने वाला प्रभाव महत्वपूर्ण होता है। दुर्भाग्यवश जिस तरह वर्तमान व्यवस्था कार्य करती है उसमें बदलाव की गुंजाइश बहुत कम होती है। वे लोग जो शिक्षण, योजना, शोध और सरकार की प्रशिक्षण संस्थाओं के प्रभारी होते हैं – विकल्पों पर हो रही किसी चर्चा या बहस में नहीं भाग लेते हैं और वे जो भाग लेते हैं, उनका मुख्य धारा की संस्थाओं और व्यवस्थाओं पर न के बराबर प्रभाव होता है। डीपीईपी में सन्निहित दोनों ही कार्यक्रम – नल्ली कली और आदर्श समूह–विकास पद्धति – इसके दुर्लभ अपवाद हैं। यद्यपि इसके बारे में शंकाएँ बनी हुई हैं कि क्या ऐसे पथ–प्रदर्शक कार्यक्रम उनके निर्धारित कार्यकाल के बाद भी चलते रहेंगे।

परिवर्तनकारी प्रयोग निरन्तर नहीं चल पाते

विकास प्रक्रिया के परिदृश्य का अवलोकन करने पर, विशेषकर प्राथमिक शिक्षा में, यह जानकर चिन्ता होती है कि अधिकांश नवपरिवर्तन क्षणभंगुर होते हैं – उनका लम्बे समय तक बने रहना और विस्तार – ये दो बड़ी समस्याएँ बनी हुई हैं। सरकारी और स्वैच्छिक क्षेत्रों में अधिकांश नए कार्यक्रमों का सामान्य कार्यकारी माहौल लगातार अनिश्चित बना हुआ है। बदली राजनीतिक प्राथमिकताएँ, नेतृत्व में बदलाव और दाताओं की बदलती प्राथमिकताएँ– इन सबका प्रभाव निरन्तरता पर पड़ता है। व्यापक स्तर पर चलाए जा रहे एक सरकारी कार्यक्रम, ''राजस्थान लोक जुंबिश'' से मिले अनुभव इसका उदाहरण हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है जहाँ बहुलता और नवप्रवर्तन महत्वपूर्ण हैं, वहीं हमें गुणवत्ता का चक्र बनाए रखने और बढ़ाने के लिए आवेग बनाए रखने की आवश्यकता होती है। प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रहे अधिकांश संगठन किसी ऐसे राष्ट्रीय तंत्र का हिस्सा नहीं होते हैं जो उनके हितों को लेकर ऊँचे स्तर पर उनके लिए वकालत कर सके।

अधिकांश विशेष कार्यक्रमों को सबसे अधिक तंग करने वाला प्रश्न अपनापन का है। यह जानना शिक्षाप्रद है कि मुम्बई नगर निगम, ''प्रथम'' संस्था द्वारा बच्चों को पढ़ना लिखना सिखाने का विशेष प्रयोगात्मक कार्यक्रम शुरू किए गए कार्यक्रमों को स्वयं के कार्यक्रम की तरह देखता है– इसमें हम और वे का भेद कम है। कार्यक्रम के बारे में सूचना, वित्तीय सहायता और मानव संसाधन निवेश आसानी से उपलब्ध है और पारदर्शी है। इसी प्रकार, द एप्रोप्रिएट एजुकेशन प्रोग्राम ऑफ द कंसर्ड फॉर वर्किंग चिल्ड्रन भी औपचारिक शिक्षा व्यवस्था के साथ मिलकर काम करता है। यह किसी और का कार्यक्रम नहीं है, बल्कि उनका अपना है, और हम यहाँ स्वामित्व की भावना देखते हैं, जो अभिभावकों और सामुदायिक नेताओं में स्पष्ट दिखाई देती है। भीम संघ, मक्काला पंचायत और औपचारिक स्कूलों में शैक्षणिक निवेश को एक ही जुड़े हुए विस्तार के हिस्से के रूप में देखा जाता है। इसमें 'हम और वे'' का भेद दिखाई नहीं देता।

फिर भी, स्वामित्व का प्रश्न सरकार के सम्बन्ध में एक अलग रंग ले लेता है। जहाँ केन्द्र तथा राज्य सरकार के कई अधिकारी नवप्रवर्तन और प्रयोगों को सराहते हैं, वहीं व्यवस्था' उन्हें अभी भी अपवाद मान कर चलती है, जिन्हें असाधारण लोगों द्वारा शुरू किया गया है, और इसलिए उन्हें दोहराया नहीं जा सकता। सार्थक रणनीतियों के तौर पर स्वीकार किया जाना तो बेहद दूर की बात है, इन नवप्रवर्तनों से सीखे गए पाठ, ना तो अध्यापन के नवीनीकरण के मुद्दे पर और ना ही शिक्षण और प्रशिक्षण के लिए प्रेरणा के स्त्रोत की तरह, मुख्य धारा में बहस का विषय तक नहीं बन पाते हैं। डीपीईपी में हाल ही में मुख्य धारा के लिंग मुद्दों पर प्रकाशित लेख एक ऐसा ही मामला है। जहाँ इसमें कई प्रकार की रोमांचक और प्रभावकारी रणनीतियों की सूची और विवरण देकर उनकी प्रशंसा की गई है, इनकी ''सफलता'' कुछ ही गाँवों और स्कूलों तक सीमित छोटे–छोटे प्रयास बन कर रह गए हैं। इन्हें बहुत गर्व से दिखाया जाता है, और इसमें लिंग संबंधी चिन्ताओं को 'मुख्य धारा' में शामिल करने का भाव भी होता है। लेकिन मुख्य व्यवस्था और अधिकांश स्कूल उसी तरह काम कर रहे हैं जिस तरह वे करते रहे हैं।

जनगणना आंकड़ों से उभरती तस्वीर

सन् 2001 में की गई भारत की जनगणना के प्रारम्भिक नतीजों के मुताबिक 65.4 प्रतिशत भारतीय (75.85 प्रतिशत पुरुष और 54.16 प्रतिशत महिलाएँ) अब साक्षर हैं। जनसंख्या वृद्धि दर अब 1.95 प्रतिशत (1980 के दशक के 2.16 प्रतिशत से) वार्षिक औसत तक कम हो गई है; लिंग अनुपात में थोड़ा सुधार हुआ है और यह 1991 की जनगणना के 927 की तुलना में अब 933 (प्रत्येक 1000 पुरुषों पर महिलाएँ) है। फिर भी, चिन्ताजनक पहलू यह है कि 0–6 वर्ष के आयु समूह में लिंग अनुपात बहुत तेज़ी से गिरा है, 1991 में यह 945 था जो 2001 में 927 हो गया। यद्यपि साक्षरता की दर में राजस्थान, उड़ीसा और मध्य प्रदेश में बहुत तेज़ी से सुधार हुआ है। लेकिन पूरे भारत में उम्मीद की यह तस्वीर, उत्तर प्रदेश और बिहार में ठीक नहीं दिखाई देती, जहाँ साक्षरता की दर साधारण रही है। जनसंख्या में वृद्धि की दर बिहार और हरियाणा में बढ़ी है। इसी प्रकार, जहाँ अधिकांश इलाकों में सभी उम्र के राष्ट्रीय लिंग अनुपात में वृद्धि हुई है, वहीं हिमाचल प्रदेश, गुजरात, हरियाणा, पंजाब और दिल्ली में स्थिति बद्तर हो गई है। चेतावनी की बात यह है कि हिमाचल प्रदेश में, जहाँ साक्षरता का स्तर बढ़ा है और स्कूल जाने की उम्र वाले 98 प्रतिशत बच्चे नामांकित हैं और स्कूल जा रहे हैं, लिंग अनुपात 1991 में 976 की तुलना में 2001 में 970 हो गया।

लिंग अनुपात

सामान्य प्राकृतिक नियम के अनुसार मानव समाज में महिला व पुरुषों की संख्या बराबर होना चाहिए थी। यानी अगर 1000 पुरुष हैं तो 1000 महिला भी हो। लेकिन कई कारणों से 1000 पुरुषों पर 1000 महिला न होकर 950 या 920 ही होती हैं। इसका एक प्रमुख कारण है महिलाओं और खासकर बालिकाओं के पोषण और स्वास्थ्य की उपेक्षा। दूसरा कारण है कि कई समूहों में लड़की के पैदा होते ही उसकी हत्या कर दी जाती है या फिर आधुनिक तकनीकों की मदद से भ्रूणावस्था में ही उन्हें नष्ट कर दिया जाता है।

साक्षरता के आँकड़े पूरी तस्वीर नहीं बताते। इस जनगणना ने महिलाओं की स्थिति, शिक्षा, साक्षरता और आर्थिक विकास के आपसी सम्बन्धों पर बहस शुरू कर दी है। इनके कोई सरल उत्तर नहीं हैं और न ही एक जैसे आपसी सम्बन्ध हैं।

समृद्ध क्षेत्रों में, जहाँ अधिकांश बच्चे प्राथमिक स्कूलों में जाते हैं, लिंग अनुपात तेज़ी से कम हो रहा है। तमिलनाडु और आध्र प्रदेश में अधिकांश लड़कियों को छठी या सातवीं कक्षा के बाद स्कूल छुड़वाया जा रहा है ताकि वे खेतों में (कपास या सब्जी चुनने का काम) और परिवार के उपक्रमों में मजदूरी कर सकें। आर्थिक समृद्धि से शिक्षा की पहुँच में – विशेष रूप से कम गरीब और मध्यम आमदनी वाले परिवारों की लड़कियों की शिक्षा तक पहुँच में सुधार हुआ है। लेकिन ''गरीबी की रेखा से नीचे'' के परिवारों की लड़कियों की स्थिति चिन्ता का कारण है। इन अनुभवों का दस्तावेजीकरण और प्रसार अधिक लोगों में होना चाहिए, एक ऐसी भाषा में जो बहुत विद्वतापूर्ण या औपचारिक न हो। इससे देश के साधारण नागरिकों और मीडिया में कुछ बहस शुरू हो सकती है। बच्चों की शिक्षा संवेदनशील और महत्वपूर्ण मुद्दा है – और अब समय आ गया है कि लोग हमारी शिक्षा व्यवस्था की विषय–वस्तु, प्रक्रिया और उसके समय मूल्य आधार की गहराई से पड़ताल करें। इसी उम्मीद के साथ यह विनम्र प्रयास शुरू किया गया है।

अभ्यास कार्य

1. एक ऐसा क्षेत्र जहां तीन से छः वर्ष के बच्चों और प्राथमिक स्तर तथा माध्यमिक स्तर के बच्चों के लिए शिक्षा की सुविधा उपलब्ध है जबकि एक अन्य क्षेत्र जहां सिर्फ प्राथमिक स्तर की सुविधा उपलब्ध है।

   इन दोनों क्षेत्रों के बारे में निम्नांकित बिन्दुओं पर तुलना करते हुए अपने विचार लिखिए–

   I. प्राथमिक स्तर में बच्चों के शाला में नामांकन की स्थिति।

   II. बच्चों का शाला में ठहराव या शाला त्याग की दर।

   III. श्रमिक या कामकाजी बच्चों की स्थिति।

2. एम.वी. फाउंडेशन या किसी संगठन द्वारा किये गये उन प्रयासों का उल्लेख करते हुए व्याख्या कीजिए तथा बताइये कि ये प्रयास प्राथमिक शिक्षा को प्रोत्साहित करने में कैसे सहायक हैं?

3. सेतु पाठ्यक्रम क्या है? ये शाला त्यागी बच्चों को वापस शाला लाने में कैसे सहायक है?

परियोजना कार्य

1. 6 से 14 वर्ष के बच्चे जिन्होंने पढ़ाई बीच में ही अधूरी छोड़ दी है या कभी शाला ही नहीं आए हैं, की सूची बनाइये तथा शाला नहीं आने के कारणों का विश्लेषण किजिए।

2. यदि आपके क्षेत्र में कोई शासकीय या अशासकीय संगठन जो आपके क्षेत्र में बालश्रम उन्मूलन के लिए काम करते हैं उनके बारे में जानकारी एकत्र कर का संक्षिप्त नोट तैयार करें।

3. आपके क्षेत्र में संचालित 'सेतु पाठ्यक्रम' का एक समीक्षात्मक अध्ययन कीजिए/समीक्षा कीजिए/ पता लगाइए कि ये कार्यक्रम बच्चों को वापस शाला लाने में कितना सफल हो पाए हैं?

नोट और सन्दर्भ

1. एन. बी. टी. से प्रकाशित एम. व्ही. फाउंडेशन से सम्बंधित पुस्तकें।

2. रामचन्द्रन, विमला, 1999, 'द विजिबिल बट अनरीच्ड' सेमिनार, फरवरी, 474:22–25.

3. एम वी प्रतिष्ठान के डॉक्टर शान्ता सिन्हा का तर्क है कि स्कूल न जाने वाले सभी बच्चे पारिभाषिक रूप से बाल श्रमिक हैं, और बाल श्रम समाप्त करने की रणनीतियाँ जटिल रूप से इस बात से जुड़ी हैं कि हर बच्चा स्कूल जाएँ।

4. 1991–2001 के दशक में, सबसे कम विकास दर केरल में 9.42 प्रतिशत दर्ज़ की गई थी, इसके बाद तमिलनाडु जहाँ 11.19 प्रतिशत और आंध्र प्रदेश जहाँ यह दर 11.36 प्रतिशत थी।

5. समग्र नामांकन अनुपात 115 (लड़के 115 और लड़कियाँ 114) है, यह अनुसूचित जाति के बच्चों के लिए 116 (अनुसूचित जाति के लडकों का 116 और अनुसूचित जाति की लड़कियों के लिए 115) है और अनुसूचित जनजाति के बच्चों में 112 (अनुसूचित जनजाति के लड़कों का 112 और अनुसूचित जन जाति की लड़कियों का 111) है। लड़कों और लड़कियों का एनईआर (1999–2000) 97 प्रतिशत है। हिमाचल प्रदेश सरकार। 12 वें संयुक्त समीक्षा मिशन की डी.पी.ई.पी. परियोजना प्रगति रिपोर्ट, नवम्बर 1999।

6. रेड्डी. सी. राममनोहर. 2001 ''पजलिंग पैटर्नस इन सेंसस 2001'' द हिन्दू (चेन्नई), 28 मार्च।

अध्याय – 9

भला यह जेण्डर क्या है?

अध्याय की रूपरेखा

- सामान्य परिचय
- अध्याय के उद्देश्य
- विषयवस्तु के शीर्षक–उपशीर्षक
  - जेण्डर का अर्थ
  - जेण्डरीकरण
  - सेक्स और जेण्डर में अन्तर
  - सामाजिक लिंग–प्राकृतिक लिंग
  - सामाजिक लिंग–प्राकृतिक लिंग
  - पहनावा, गुण व विशेषताएं
  - भूमिकाएं एवं जिम्मेदारियां
  - लैंगिक अन्तर एवं जैविकीय सत्य
  - औरतों के बारे में फैलाई गई अफवाहें
  - सामाजीकरण एवं सालैंगीकरण
  - सामाजीकरण की प्रक्रिया
- अभ्यास कार्य
- संदर्भ सूची

सामान्य परिचय

इस पठन सामग्री में कुछ सवाल उठाए गए हैं जैसे जेण्डर शब्द के क्या मायने है? इसका हम किस अर्थ में उपयोग करते हैं? मर्द और औरत की सामाजिक परिभाषा क्या है अर्थात समाज इन्हें किस नजर से देखता है? इनकी जमीनी सच्चाई क्या है? समाज में स्त्री और पुरुषों में जो असमानता है वह कितनी सामाजिक है और कितनी प्राकृतिक है? इन सबका उत्तर जानने का प्रयास इसमें किया गया है। एक तरह से यह पठन सामग्री 'जेण्डर' की अवधारणा को स्पष्ट करती है।

अध्याय के उद्देश्य

यह समझना कि–

1. लैंगिक असमानता क्या है। लैंगिक भेदभाव के पीछे क्या कारण है?
2. समाज में लड़के–लड़कियों (औरत–मर्द) की भूमिकाएँ क्या है?
3. जेण्डरीकरण (सामाजीकरण) क्या है तथा ये कैसे (प्रक्रिया) होता है?
4. लिंग और जेण्डर अर्थात प्राकृतिक लिंग–सामाजिक लिंग क्या है? तथा दोनों का आपस में क्या सम्बन्ध है तथा अन्तर क्या है?
5. सामाजिक लिंग का प्राकृतिक लिंग से कितना सम्बंध है?
6. मर्द और औरतों का जैविकीय सत्य क्या है?

हालाँकि अँग्रेज़ी भाषा के व्याकरण में हम जेण्डर शब्द से परिचित रहे हैं लेकिन अब इस शब्द का इस्तेमाल ज़ाहिर है कि एक दूसरे ही अर्थ में किया जा रहा है। क्या आप यह नया अर्थ समझा सकती हैं?

यह सरलीकृत पाठ कमला भसीन द्वारा लिखित 'भला ये जेण्डर क्या है?' अनुवाद वीणा शिवपुरी; जागोरी प्रकाशन; पृ. 1–16 से लिया गया है

जेण्डर का अर्थ

जेण्डर शब्द का इस्तेमाल अब सामाजिक अर्थ में या अधारणात्मक शब्द के रूप में हो रहा है। इसे अब एक बहुत ही खास अर्थ दे दिया गया है। अपने इस नए रूप में जेण्डर शब्द का अर्थ है औरत तथा मर्द दोनों की सामाजिक व सांस्कृतिक परिभाषा यानि समाज औरत व मर्द को किस तरह से देखता है, उन्हें कैसी भूमिकाएँ, अधिकार, संसाधन देता है, उन्हें किस तरह का व्यवहार व मानसिकता सिखाता है।

आजकल जेण्डर शब्द का इस्तेमाल औरतों व मर्दों की ज़मीनी सामाजिक सच्चाईयों को समझने के लिए, विश्लेषण के एक औज़ार के रूप में किया जाता है।

औरतों की अधीनता की स्थिति की ज़िम्मेदार उनके शरीर को मानने की आम सोच से निपटने के लिए जेण्डर की अवधारणा लाई गई। सदियों से यह माना जाता रहा है कि औरतों तथा मर्दों की चारित्रिक विशेषताएँ, उनकी भूमिकाएँ और समाज से मिलने वाला अलग दर्जा आदि सब उनकी जैविकीयता या उनके शरीर (यानी उनके सेक्स या लिंग) द्वारा निर्धारित होता है। अगर मान लें कि अपने शरीर की वजह से स्त्री–पुरुष में अन्तर और ऊँच–नीच है तो स्त्री–पुरुष असमानता समाज और प्राकृतिक बन जाती है। उसे दूर करने के लिए कुछ करने की ज़रूरत भी नहीं समझी जाती। जेण्डर की धारणा के तहत सेक्स या शारीरिक लिंग एक बात है लेकिन जेण्डर बिलकुल अलग।

जेण्डरीकरण

हर कोई नर या मादा के रूप में पैदा होता है। हमारी सेक्स की पहचान जननांगों को देखकर ही की जा सकती है। परन्तु हर संस्कृति में लड़के और लड़कियों की अहमियत निर्धारित करने और उन्हें अलग भूमिकाएँ, जवाबदारी और विषेषताएँ प्रदान करने के अपने तरीके होते हैं। जन्म के समय से ही लड़के और लड़कियों को उनके अलग–अलग रूप में ढालने की जो सामाजिक और सांस्कृतिक प्रक्रिया शुरू होती है उसे जेण्डरीकरण कहा जा सकता है। हर समाज में एक नर या मादा बच्चे को धीरे–धीरे मर्द या औरत के रूप में, उसकी पुरुषोचित या स्त्रियोचित विशेषताओं के साथ विकसित किया जाता है। उनके गुण, व्यवहार के तरीके, भूमिकाएँ, ज़िम्मेदारियाँ, अधिकार और उम्मीदें भी अलग–अलग होती हैं।

सेक्स की पहचान जन्म से जैविकीय रूप में मिलती है परन्तु औरतों तथा मर्दों की जेण्डर पहचान सामाजिक और मनोवैज्ञानिक रूप से मिलती है अर्थात ऐतिहासिक व सांस्कृतिक रूप से तय की जाती है।

प्रश्न

जेण्डरीकरण या सामाजीकरण की प्रक्रिया के कोई दो उदाहरण दीजिए।

इस धारणा का इस्तेमाल करने वाली कुछ नारीवादी विद्वानों में से एक ऐन ओकली का कहना है कि – जेण्डर का सम्बन्ध संस्कृति से है। इसका तात्पर्य उन सामाजिक श्रेणियों से है जिनमें मर्द व औरतें, ''पुरूषोचित'' और ''स्त्रियोचित'' रूप ले लेते हैं। लोग नर हैं या मादा इसका पता शारीरिक प्रमाण से किया जा सकता है, लेकिन पुरुषोचित व स्त्रियोचित को इस तरीके से नहीं जाँचा जा सकता, उसके मानदण्ड सांस्कृतिक होते हैं जो समय और स्थान के साथ बदलते हैं। सेक्स की स्थिर सच्चाई को स्वीकारना पड़ेगा परन्तु साथ ही जेण्डर की परिवर्तनशील सच्चाई को भी स्वीकारा जाना चाहिए।

अन्त में वे कहती हैं – जेण्डर का मूल जैविकता या शरीर में नहीं है तथा सेक्स और जेण्डर के बीच रिश्ता कतई ''प्राकृतिक'' नहीं है। चलिए, हम इन दो अलग–अलग सच्चाईयों के बीच मुख्य अन्तर देखें–

सेक्स और जेण्डर में अन्तर

सेक्स	जेण्डर
सेक्स जैविकीय या शारीरिक है। यानी ऐसा फर्क जो औरत व मर्द के जननांगों में और उससे जुड़े प्रजनन कार्यों में साथ दिखाई देता है।	जेण्डर सामाजिक, सांस्कृतिक है। इसका सम्बन्ध पुरुषोचित–स्त्रियोचित गुणों, व्यवहार के तरीकों, भूमिकाओं आदि से है।
सेक्स प्रकृति की देन है।	जेण्डर सामाजिक, सांस्कृतिक है तथा मनुष्य ने बनाया है।
सेक्स स्थाई है। हर जगह व समय शारीरिक रूप से स्त्री व पुरुष के वहीं अंग होते हैं।	जेण्डर परिवर्तनशील है। यह समय के साथ, संस्कृति के साथ, यहाँ तक कि एक परिवार से दूसरे परिवार में बदल सकता है।
सेक्स को बदला नहीं जा सकता।	जेण्डर को बदला जा सकता है।

समाजिक लिंग और प्राकृतिक लिंग

जेण्डर शब्द का अनुवाद दक्षिण एशियाई भाषाओं में किस प्रकार किया जा सकता है?

यह एक समस्या है। अंग्रेज़ी भाषा में दो अलग–अलग शब्द हैं– सेक्स और जेण्डर, जबकि अधिकतर दक्षिण एशियाई भाषाओं में हमारे पास एक ही शब्द है – ''लिंग'' जिसे सेक्स और जेण्डर दोनों के लिए इस्तेमाल किया जाता है। इन दोनों में फर्क दर्शाने के लिए हमने दो शब्द ढूँढे हैं। सेक्स के लिए हम ''प्राकृतिक लिंग'' तथा जेंडर के लिए ''सामाजिक लिंग'' शब्द का इस्तेमाल कर सकते हैं। वास्तव में ये दोनों शब्द ''सेक्स'' और ''जेण्डर'' शब्दों से बेहतर है क्योंकि इन शब्दों के जरिए उनका अर्थ भी साफ हो जाता है और आगे किसी तरह के स्पष्टीकरण की जरूरत नहीं होती। सामाजिक लिंग या जेण्डर को हम छोटे रूप में सालिंग कह सकते हैं और प्राकृतिक लिंग (सेक्स) को प्रालिंग।

परन्तु क्या सामाजिक लिंग का सम्बन्ध हमारे प्राकृतिक लिंग से नहीं है? क्या औरतों व मर्दों को मिलने वाली भूमिकाएँ, बर्ताव के ढंग उनके प्राकृतिक लिंग के अन्तर के आधार पर नहीं होते?

समाजिक लिंग और प्राकृतिक लिंग में सम्बंध

सिर्फ कुछ हद तक ऐसा होता है। उनकी शारीरिक रचना के कारण औरतों को माहवारी होती है, वे बच्चे पैदा करती हैं, उन्हें दूध पिलाती हैं। और वैसे भी प्रजनन के अलावा ऐसा कुछ नहीं है जो औरतें कर सकती हैं पर मर्द नहीं कर सकते या मर्द कर सकते हैं और औरतें नहीं कर सकतीं। और बच्चे पैदा करने का यह मतलब नहीं है कि सिर्फ औरतें ही उन्हें पाल सकती हैं या उन्हें ही बच्चों को पालना चाहिए। पालन–पोषण मर्द भी उसी तरह कर सकते हैं। इसलिए नर या मादा शरीर के साथ पैदा होने का यह अर्थ नहीं कि हमारा स्वभाव, बर्ताव, भूमिकाएँ यहाँ तक कि भाग्य भी उन्हीं के आधार पर निश्चित कर दिया जाए।

जेण्डर सामाजिक व सांस्कृतिक विशेषताएँ हैं, प्राकृतिक नहीं, यह इसी बात से साबित हो जाता है कि वे समय के साथ–साथ, अलग–अलग जगहों पर तथा विभिन्न सामाजिक समूहों में भिन्न–भिन्न होती हैं। मिसाल के लिए एक मध्यमवर्गीय परिवार की लड़की की दुनिया घर और स्कूल तक सीमित होती है जबकि आदिवासी लड़की

आज़ादी से जंगलों में अकेली घूमती है, मवेशी चराने ले जाती है या फलों, पत्तों और टहनियों को तोड़ने के लिए ऊँचे–ऊँचे पेड़ों पर चढ़ जाती है। वे दोनों ही लड़कियाँ हैं, दोनों के शरीर भी एक जैसे हैं लेकिन उनकी योग्यताओं के विकास में, उनकी आकांक्षाओं और सपनों में बहुत फर्क होता है।

इस तरह से कई परिवारों में पारम्परिक रूप से दस–ग्यारह साल की उम्र के बाद लड़कियों को स्कूल नहीं भेजा जाता था या घर के बाहर निकलने पर पाबन्दी होती थी। प्रायः किशोरी होते ही उनकी शादी कर दी जाती थी। हालांकि अब हालात बदल रहे हैं। इसी तरह मर्दों की शिक्षा, भूमिकाएँ और ज़िम्मेदारियाँ भी बदल रही हैं पर शायद उतनी ज़्यादा नहीं। जब हम कहते हैं कि जेण्डर परिवर्तनशील है, यह बदलता रहता है तो हमारा मतलब ऐसे ही बदलावों से होता है। यह अलग–अलग समय पर, अलग–अलग परिवारों व समाज में अलग हो सकता है। इस सबका अर्थ है कि सालिंग (जेण्डर) प्रकृति का रचा नहीं है, समाज का रचा है।

कुछ प्रश्न

1. ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र के लड़के–लड़कियों या औरतों व मर्दों के कामकाज में किस–किस तरह से परिवर्तन आ रहे है?
3. किसी समाज में औरतों द्वारा सिर्फ घर का काम करना एवं पुरुषों का घर से बाहर काम करना प्राकृतिक लिंग का उदाहरण है या सामाजिक लिंग का?

सच तो यह है कि हम स्वयं या समाज या संस्कृति हमारे शरीर तक को बदल सकते हैं। हम प्रशिक्षण के द्वारा शरीर के नाप, आकार और ताकत में बदलाव ला सकते हैं। उसी प्रकार उसके इस्तेमाल, गैर इस्तेमाल या अत्याचार से भी शरीर कमज़ोर या ताकतवर बन सकते हैं। हमारे सामने स्त्री–पुरुष पहलवानों, धावकों, तैराकों, नर्तकों या योग साधकों के उदाहरण मौजूद हैं। उसी प्रकार से, औरतों के शरीर की बनावट ऐसी है कि वे प्रजनन कर सकती हैं परन्तु अब यह चुनाव हमारे हाथ में है कि बच्चे हों या नहीं, कितने हों तथा कितने अन्तर पर हों। बच्चे पैदा करना औरतों के लिए उस तरह की अनिवार्यता या मज़बूरी नहीं है जैसी कि मादा पशुओं के लिए है।

''ऐतिहासिक रूप से, किसी सामाजिक व्यवस्था ने, लिंगों के बीच के प्राकृतिक अन्तर को इस बर्बरता और सोचे–समझे ढंग से नहीं बढ़ाया और तोड़ा–मरोड़ा है जैसा कि हमारी ने। इस व्यवस्था ने पहले प्राकृतिक लिंग को बनावटी व सामाजिक लिंग में बदला, मर्दों को 'मर्द' बनाया तथा औरतों को ''औरत''। सच तो यह है कि ''मर्द'' मानव जाति ही बन गए तथा औरतें सिर्फ एक लिंग रह गई। और अन्त में इन फर्कों को पैदा करने के बाद उन्हें प्राकृतिक घोषित कर दिया ताकि उनका आर्थिक शोषण भी किया जा सके।''
– कलॉडिया वॉन वर्लहॉफ

प्रत्येक समाज लड़के और लड़कियों, औरतों और मर्दों के लिए भिन्न नियम बनाता है जो उनके जीवन के हर पक्ष को ही नहीं भविष्य को भी नियंत्रित करते हैं। चलिए कुछ बहुत प्रत्यक्ष नियमों को देखते हैं–

पहनावा

अधिकांश समाजों में लड़के–लड़कियाँ तथा औरतें व मर्द अलग–अलग ढंग की पोशाकें पहनते हैं। कुछ जगहों पर यह फर्क नाम मात्र के लिए होता है तथा कुछ अन्य जगहों पर बहुत ज्यादा। कुछ समुदायों में औरतों को अपने चेहरे सहित पूरा शरीर, एड़ी से चोटी तक ढककर रखना पड़ता है। पहनावे के ढँग का असर व्यक्तियों की गतिशीलता, उनकी आज़ादी की भावना और सम्मान पर पड़ता है।

गुण व विशेषताएँ

अधिकांश समाजों में औरतों से आशा की जाती है कि वे कोमलता, साज–संभाल, सेवा और आज्ञाकारिता, आत्मविश्वासी, तार्किक और होड़ में आगे बढ़ने वाले हों। एक भारतीय नारीवादी वसन्था कन्नबिरान ने एक जेण्डर प्रशिक्षण के दौरान कहा था – ''यह समझा जाता है कि बच्चों को पालना औरतों के लिए उतना ही स्वाभाविक और प्राकृतिक है जितना बच्चों को जन्म देना... और यह सिर्फ अपने बच्चों के सन्दर्भ में नहीं समझा जाता बल्कि यह मान लिया जाता है कि प्यार और ममता का भण्डार मेरे भीतर इस इन्तजार में है कि जैसे ही किसी को उसकी ज़रूरत होगी वह झरने की तरह फूट पड़ेगा। हम शाश्वत माताएँ बन जाती हैं। इस तरह मैं न सिर्फ अपने बच्चों को ममता देती हूँ बल्कि दूसरों के बच्चों को, पति को, अपने भाईयों को, अपनी बहनों को, अपने पिता को (जो सच में मुझे 'मेरी छोटी–सी माँ'! कहकर पुकारते हैं) भी देती हूँ। इस तरह मैं हर एक के लिए माँ बन जाती हूँ। आपसे यह आशा की जाती है कि आप सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के प्रति मातृत्व भाव उड़ेलती रहें तथा यह सब प्राकृतिक समझा जाता है। उसके लिए कुछ करना नहीं पड़ता इसलिए वह काम नहीं है। यह तो आप उसी स्वाभाविकता से करती है जैसे साँस लेती हैं, खाती या सोती हैं।''

वसन्ता कजनबिरान का कथन – ''महिलाओं से यह आशा की जाती है कि आप सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के प्रति मातृत्व भाव उडेलती रहें तथा यह सब प्राकृतिक समझा जाता है।'' उनका वास्तविक आशय क्या है? इनमें से सही पर सही का निशान लगायें–

– महिलायें मां होने के अलावा और बहुत कुछ हो सकती हैं

– महिलायें प्राकृतिक रूप से मां बनकर लालन–पोषण करने के लिए बनी हैं। (विकल्प चुनने के लिए अपना तर्क भी दें।)

भूमिकाएँ और ज़िम्मेदारियाँ

मर्दों को परिवार का मुखिया, रोजी–रोटी कमाने वाला, सम्पत्ति का मालिक और प्रबन्धक, राजनीति, धर्म, व्यवसाय और पेशे में सक्रिय व्यक्ति के रूप में देखा जाता है। दूसरी ओर औरतों से आशा की जाती है तथा उन्हें सिखाया जाता है कि वे बच्चे पैदा करें, पालें, बीमारों व बूढ़ों की सेवा करें, सारा घरेलू काम करें आदि–आदि। उनके इसी रूप पर अन्य बातें भी निर्भर करती हैं जैसे उनकी शिक्षा या वास्तव में शिक्षा की कमी, रोज़गार के लिए तैयारी, रोज़गार की प्रकृति आदि। फिर भी औरतों तथा मर्दों की भूमिकाओं के बीच फर्क के स्तर में बहुत विभिन्नता पाई जाती है। कभी–कभी नियम सिर्फ पसन्द को दर्शाते हैं और थोड़े समय के लिए भूमिकाओं की अदला–बदली होने पर किसी को परेशानी नहीं होती।

> ''एलोर से कारा डयूबोइस की रिपोर्ट है कि यहाँ हालाँकि दोनों लिंगों की अलग–अलग आर्थिक भूमिकाएँ हैं लेकिन फिर भी यदि कोई दूसरे लिंग की भूमिका निभाता है तो उसे बुरा नहीं समझा जाता, बल्कि उन्हें आर्थिक हुनरमन्दी के लिए पसन्द किया जाता है। औरतें जीवन निर्वाह से जुड़ी आर्थिक गतिविधियों का नियंत्रण करती हैं और मर्द वित्तीय सौदों का काम सम्हालते हैं लेकिन फिर भी बहुत से मर्दों को घरेलू खेती–बाड़ी का बेइन्तिहा शौक होता है और कई औरतों में वित्तीय मामलों की गहरी समझ होती है। दूसरी ओर, कुछ संस्कृतियों में जहाँ घरेलू खेती–बाड़ी को औरतों का काम समझा जाता है, अगर मर्द उसमें दिलचस्पी दिखाएँ तो उसे उनकी मर्दानगी में गड़बड़ी का सबूत समझा जाता है। जबकि कुछ अन्य में, दोनों लिंगों की भूमिकाओं को योग्यता से निबाहने वाली औरतों की प्रशंसा की जाती है।''
>
> –ऐन ओकली

कुछ प्रश्न

नीचे कुछ कामों या परिस्थितियों की सूची दी गई है। इन्हें सामाजीकरण या सामाजिक लिंग के आधार पर पुरुषोचित तथा स्त्रीयोचित गुणों में अलग कीजिए–

बाजार जाना, खाना बनाना, कपड़े धोना, घर का मुखिया होना,बंदूक–कार जैसे खिलौनों से खेलना, गुड़ियों से खेलना, सजना–संवरना, घर के बाहर का कामकाज सम्हालना।

पुरुषोचित गुण	स्त्रीयोचित गुण

लैंगिक अन्तर एवं जैविकीय सत्य

वास्तव में जैविकीय नज़रिये से पुरुष कमज़ोर लिंग है तथा वाई क्रोमोजोम (जो नर लिंग में ही होता है) अनेक अक्षमताओं के लिए ज़िम्मेदार होता है।

एशले मौन्टेग्यू ने अपनी किताब 'द नैचुरल सुपीरियोरिटी ऑफ विमॅन' में ऐसी 62 गड़बड़ियों की सूची दी है जिनका सम्बन्ध मुख्य रूप से या पूर्णतया लिंग निर्धारण करने वाले जीन्स से होता है व प्रायः वे कमियाँ पुरुषों में पाई जाती हैं। ''इन बीमारियों में हीमोफीलिया (खून का थक्का जमने की प्रक्रिया में गड़बड़ी) मिस्ट्रल स्टैनोसिस (दिल की बनावट में खराबी) तथा कुछ मानसिक कमज़ोरियों सहित आधी से ज़्यादा बीमारियाँ गम्भीर किस्म की होती हैं। गर्भधारण की स्थिति से लेकर जीवन के हर चरण में आनुवांशिक कारणों से मादा की तुलना में अधिक नर मरते हैं। इसीलिए शायद प्रकृति मादा की तुलना में अधिक नर उत्पन्न करती। अधिक मृत्यु और अधिक उत्पत्ति – ये दो तथ्य साथ–साथ चलते हैं।''

हालाँकि एक्स तथा वाई शुक्राणु बराबर संख्या में उत्पन्न होते प्रतीत होते हैं परन्तु प्रति 100 मादा भ्रूणों की तुलना में 120 से 150 तक नर भ्रूण गर्भ में ठहरते हैं। यू.एस.ए. के श्वेतों में गर्भावस्था पार करते समय तक पहुँचते–पहुँचते यह अनुपात गिरकर 100 पर 106 रह जाता है तथा ब्रिटेन में तो 100.98 ही होता है। मादा की तुलना में अधिक संख्या में नर भ्रूण का गर्भपात हो जाता है या वे मृत जन्म लेते हैं। प्रसव के धक्के में भी मादा की तुलना में अधिक नर जन्म के दौरान मर जाते हैं। प्रसव के दौरान लगी चोटों से 54 प्रतिशत तथा जन्मजात खराबियों के कारण 18 प्रतिशत नर अधिक मरते हैं।

वास्तव में जन्म के समय मादा की जीवन अवधि की सम्भावना लगभग सभी जगह नर से अधिक होती है। ब्रिटेन में जन्म के समय स्त्रियों की जीवन सम्भावना 74.8 जबकि पुरुषों के लिए यह 68.1 है, चीन में क्रमशः 65. 6 तथा 61.3 है, ब्राजील में 45.5 तथा 41.8 है।

ऐन ओकली ने शोध से मिले आँकड़ों के द्वारा इस बात के पर्याप्त सबूत दिए हैं कि पुरुषों को संक्रामक बीमारियाँ होने व उससे मृत्यु होने की सम्भावना अधिक है। उनके अनुसार पुरुषों की ''इस कमज़ोरी का सीधा सम्बन्ध स्त्री–पुरुष के भिन्न संघटन से है। संक्रमणों से लड़ने की शरीर की व्यवस्था का नियंत्रण करने वाली

जीन्स ऐक्स क्रोमोजोम के ज़रिए मिलती हैं। पुरुषों की इस जन्मजात कमज़ोरी के पीछे निश्चित रूप से जीव रासायनिक कारण हैं।''

दक्षिण एशिया में औरतों की यह जैविकीय श्रेष्ठता उन पर थोपी गई सामाजिक सांस्कृतिक हीनता के आगे कमज़ोर पड़ गई है। यहाँ पर पुरुषों की तुलना में औरतें कम हैं, औरतों की जीवन अवधि पुरुषों से कम है और आज लगभग हर क्षेत्र में औरतें मर्दों से पिछड़ गई हैं।

कुछ प्रश्न

उपरोक्त पैराग्राफ (लैगिंक अन्तर व जैविकीय सत्य) के आधार पर बताइये कि क्या सामाजिक–लैंगिक अन्तर इसलिए पैदा होते हैं क्योंकि लड़कियाँ व औरतें जैविकीय रूप से कमज़ोर हैं?

सदियों से कुछ बड़े विचारक ऐसे भी हुए हैं जो औरतों के बारे में नकारात्मक विचार रखते आए हैं, जो कि निम्नलिखित पैराग्राफ में देखने को मिलता है –

औरतों के बारे में फैलाई गई अफवाहें

अरस्तू ने नर सिद्धान्त को सक्रिय तथा मादा को निष्क्रिय कहा था। उनके अनुसार मादा एक ''खण्डित नर'' है, जिसके पास आत्मा नहीं है। औरत की शारीरिक कमज़ोरियों के कारण ही वह योग्यताओं में भी हीन रहती है। उसकी तार्किक योग्यता और निर्णय शक्ति भी कम होती है। चूँकि नर श्रेष्ठ है और मादा हीन, पुरुषों का जन्म शासन करने के लिए और स्त्रियों का जन्म शासित होने के लिए हुआ है। अरस्तु ने कहा है ''पुरुष का साहस उसकी प्रभुता में है और स्त्री का उसकी आज्ञाकारिता में।''

सिगमंड फ्रॉयड ने कहा कि औरत के लिए उसका ''शरीर ही भाग्य है।'' फ्रॉयड के लिए सामान्य मनुष्य एक नर तथा स्त्री उसका बिगड़ा हुआ रूप है, जिसके पास 'लिंग' नहीं है और जिसकी पूरी मानसिकता अपनी इस कमज़ोरी को पूरा करने के संघर्ष के इर्द–गिर्द घूमती है।

और यह है औरत के बारे में **डार्विन** साहब का मत – ''औरत अपनी मानसिकता में पुरुष से भिन्न मालूम होती है। खास तौर पर उसमें अधिक कोमलता है और स्वार्थी भाव कम है। आमतौर पर यह माना जाता है कि औरतों में अन्तर्दृष्टि, तत्काल समझ तथा नकल की योग्यता पुरुषों से अधिक है परन्तु इनमें से कुछ बातें ''निम्न प्रजातियों की चारित्रिक विशेषताएँ हैं और इस प्रकार वे सभ्यता के अतीत व निचले दर्जे से जुड़ी हैं।''

कुछ प्रश्न

अरस्तु, सिगमंड फ्रायड तथा डार्विन ने औरतों के बारे में मुख्य रुप से क्या कहा है? एक–एक वाक्य लिखिए। साथ ही सहमत हैं या असहमत हैं, लिखिए–

अरस्तु		सहमत / असहमत
सिगमंड फ्रायड		सहमत / असहमत
डार्विन		सहमत / असहमत

क्या आप यह कह रही हैं कि स्त्री तथा पुरुष के बीच के जैविकीय अन्तर का कोई महत्व नहीं है?

औरतें बच्चे पैदा करती हैं। इस सच्चाई का समाज द्वारा दी गई उनकी भूमिका से कोई वास्ता नहीं है?

हम इससे इन्कार नहीं करते कि स्त्री व पुरुष, नर व मादा के बीच कुछ जैविकीय अन्तर हैं लेकिन यह भी सच है कि अलग–अलग संस्कृतियों की सालैंगिक (जेण्डर) भूमिकाओं के बीच इतना फर्क मिलता है कि उन्हें किसी प्रकार से प्रालिंग आधारित नहीं माना जा सकता। यदि हमारी भूमिकाएँ सिर्फ जैविकीयता से तय होती

हैं तो संसार की हर औरत सिर्फ खाना पका रही, कपड़े धो रही या सिलाई कर रही होनी चाहिए लेकिन ज़ाहिर है स्थिति ऐसी नहीं है क्योंकि अधिकांश पेशेवर रसोइए, धोबी और दर्जी मर्द हैं।

कुछ प्रश्न

लोगो की दिनचर्या का अवलोकन के आधार पर स्त्री और पुरुषों के कार्यों की सूची बनाइये। सोचिए इनमें से कौन से काम प्राकृतिक लिंग का हिस्सा है और कौन से सामाजिक लिंग का?

हमारा कहना है कि औरतों और मर्दों के बीच जो अन्यायपूर्ण असमानताएँ मौजूद हैं उनके लिए न तो प्रालिंग और न ही प्रकृति ज़िम्मेदार है। जातियों, वर्गों और नस्लों के बीच की ऊँच–नीच की तरह ये ऊँच–नीच भी मनुष्य द्वारा बनाई गई है। इन्हें इतिहास के किसी मोड़ पर बनाया गया था इसलिए इन पर सवाल भी उठाए जा सकते हैं, चुनौती दी जा सकती है और उन्हें बदला भी जा सकता है। एक औरत, बच्चे ज़रूर पैदा करती है लेकिन यह ऐसा कोई कारण तो नहीं जिससे वह हीन या आधीन हो जाए और न ही इस बात को उसकी शिक्षा, प्रशिक्षण व रोज़गार के अवसरों का नियंत्रक होना चाहिए। भिन्न शरीर और उसकी क्रियाओं के कारण ऊँच–नीच क्यों पैदा होनी चाहिए? प्रकृति में हर ओर विविधता है लेकिन फिर भी हर जीव का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। समानता, बराबर अधिकारों और अवसरों के लिए एक जैसा होना तो ज़रूरी नहीं। भिन्नता का मतलब ऊँच–नीच या गैर बराबरी तो नहीं है। गुलाब और कमल भिन्न हैं पर इनमें कौन ऊँचा, कौन नीचा? पाँचों उँगलियाँ एक जैसी नहीं हैं, इनके अलग–अलग काम हैं, पर शरीर के लिए पाँचों की अहमियत है, पाँचों ज़रूरी हैं।

यदि ऐसा है तो क्या आप हमें बता सकती हैं कि समाज किस तरह से स्त्रियों व पुरूषों को स्त्रियोचित और पुरुषोचित (जनाना और मर्दाना) प्राणियों में बदलता है?

यह सामाजीकरण या सालैंगीकरण की प्रक्रिया के द्वारा होता है। यह प्रक्रिया परिवारों और समाज में लगातार चलती रहती है।

समाजीकरण एवं सालैंगीकरण

हम सब जानते हैं कि शिशु के जन्म के साथ ही लिंग के आधार पर वह एक खास श्रेणी का हो जाता है यानी लड़का या लड़की। साथ ही सालिंग (जेण्डर) से जुड़ी पूरी सोच भी उसके अस्तित्व का हिस्सा बन जाता है। हमने पहले भी देखा है कि किस प्रकार कुछ संस्कृतियों में नवजात लड़का–लड़की का स्वागत भी अलग ढंग से होता है। इसके बाद जिस तरह से उस बच्चे को पुकारा जाएगा, खिलाया, पिलाया या दुलारा जाएगा उसमें फर्क होगा। उसके कपड़े–लत्तों में, आगे चलकर उसके लिए नियम, कायदों में, उसे दी गई व्यवहार करने की सीख में अन्तर होगा। इस प्रक्रिया को सामाजीकरण कहा जाता है। सामाजीकरण की प्रक्रिया के दौरान जब बच्चों को उनकी जेण्डर भूमिकाओं की शिक्षा मिलती है और उनकी कच्ची मन–बुद्धि को एक खास दिशा दी जाती है तो उसे सालैंगीकरण (genderisation) की प्रक्रिया या सालैंगिक (जेण्डर) शिक्षा (gender indoctrination) कहते हैं। उनके सामाजिक क्रिया–कलाप के जरिए बच्चों के व्यक्तित्व में पुरुषत्व और नारीत्व पैदा किया जाता है और वे उससे जुड़े बर्ताव के तरीकों, रवैयों और भूमिकाओं को अपने भीतर समाहित (internalise) कर लेते हैं।

सामाजीकरण की प्रकिया

रूथ हार्टले के अनुसार सामाजीकरण चार प्रक्रियाओं के द्वारा होता है – छल योजन (manipulation) धारा बद्धता (canalisation), मौखिक सन्देश (verbal appellation) तथा कार्यों से पहचान (aaaaActivity exposure)। अधिकतर इन चारों प्रक्रियाओं में लिंग के आधार पर भेद किया जाता है तथा ये जन्म से ही शिशु के सामाजीकरण का भाग होती हैं।

छल योजन (manipulation) या साँचें में ढालने की प्रक्रिया का तात्पर्य है कि आप किस तरह बच्चे को सम्हालते हैं। देखा गया है कि लड़कों को शुरू से सशक्त और स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में देखा जाता है। कुछ

संस्कृतियों में माताएँ छोटी–सी लड़की के भी कपड़ों, बालों के ढंग और साज–शृंगार की तरफ काफी ध्यान देती हैं और उसे कहती हैं कि वह कितनी सुन्दर है। छुटपन के इन शारीरिक अनुभवों का काफी गहरा असर, बच्चे के मन में उसकी अपनी छवि पर पड़ता है। वे अपने आपको एक खास रूप में देखने लगते हैं – सशक्त या कोमल।

दूसरी प्रक्रिया धाराबद्धता (canalisation) के अन्तर्गत लड़के और लड़कियों का ध्यान विशेष चीज़ों या उनके खास पक्षों की ओर निर्देशित किया जाता है। इसके उदाहरण हैं लड़कियों को खेलने के लिए गुड़िया, रसोई के बर्तन आदि देना और लड़कों को बन्दूक, कार और हवाई जहाजों से खेलने के लिए प्रोत्साहन करना। दक्षिण एशिया के कामगार घरों में लड़कियाँ बर्तनों से नहीं खेलती हैं। उन्हें बचपन से ही असली बर्तन और घर साफ करने और असली मुन्ने–मुन्नी खिलाने के काम पर लगा दिया जाता है जबकि वे खुद बच्ची होती हैं। दूसरी ओर लड़के या तो स्कूल जाते हैं या घर के बाहर काम करते हैं। इस तरह से अलग–अलग बर्ताव से लड़के और लड़कियों की रुचियाँ एक खास दिशा में धाराबद्ध होने लगती हैं। आगे चल कर उनकी योग्यताओं, रवैयों, आकांक्षाओं और सपनों का विकास भी अलग–अलग दिशाओं में होता है। कुछ खास चीज़ों से बचपन में बनी पहचान उनके चुनावों पर भी असर डालती है।

मौखिक सन्देश (verbal appellation) भी लड़के और लड़कियों के लिए अलग–अलग होते हैं। मिसाल के लिए हम प्रायः लड़कियों से कहते हैं कि ''ओह! बिटिया कितनी प्यारी लग रही हो।'' शोध अध्ययन बताते हैं कि ऐसी टिप्पणियों से लड़के और लड़कियों की स्वपहचान बनती हैं। घर के सदस्य बहुत छोटे बच्चों से बात करते हुए भी सीधे तौर पर उनकी जेण्डर भूमिकाओं से जुड़े संदेश देते रहते हैं। इन सन्देशों से यह भी पता लगता है कि किस बच्चे को कितना महत्व दिया जा रहा है।

अन्तिम प्रक्रिया है – कार्यों से पहचान (activity exposure) लड़के और लड़कियाँ बचपन से ही अपने चारों ओर पारम्परिक पुरुषोचित और स्त्रियोचित गतिविधियाँ होते देखते हैं। लड़कियों से कहा जाता है कि वे घर के कामकाज में माँ का हाथ बँटाएँ जबकि लड़के बाप के साथ बाज़ार जाते हैं। जिन समुदायों में दोनों लिंगों के बीच अलगाव रखा जाता है वहाँ लड़के–लड़कियाँ दो अलग वातावरण में रहते हैं और दो भिन्न प्रकार की गतिविधियाँ देखते हैं। इन्हीं प्रक्रियाओं के जरिए बच्चे पुरूषत्व और नारीत्व का अर्थ समझते हैं और धीरे–धीरे जाने–अनजाने में उसे अपने व्यक्तित्व का हिस्सा बनाते चलते हैं।

कुछ प्रश्न

रूथ हार्टले के अनुसार सामाजीकरण निम्नांकित चार प्रक्रियाओं के द्वारा होता है। सभी प्रक्रिया के एक–एक उदाहरण दीजिए–

छल योजन	
धाराबद्धता	
मौखिक पहचान	
कार्यों से पहचान	

सामाजीकरण की यह प्रक्रिया लगातार चलती रहती है तो फिर ''प्रकृति'' (nature) और ''पालन–पोषण'' की यह बहस अब तक क्यों जारी है? क्या यह साफ नहीं कि लड़कों और लड़कियों के बीच फर्क के लिए उनका पालन–पोषण ही ज़िम्मेदार है?

आश्चर्यजनक बात यह है कि हममें से अनेक इस बात से आगाह भी नहीं होते कि हम अपने बच्चों के साथ क्या कर रहे हैं। सच तो यह है कि हम विश्वास करते हैं कि लड़के और लड़कियाँ भिन्न होते हैं, इसलिए उन्हें वैसे ही पालना भी चाहिए। हम शायद यह न मानें कि हमारे बेटे और बेटियाँ अलग तरह से इसलिए विकसित होते हैं क्योंकि स्कूलों में, समुदाय और घरों में हम खुद उनके साथ अलग–अलग तरह से व्यवहार करते हैं।

बच्चों को भी यह जानकारी नहीं होती कि उन्हें किसी विशेष रूप में ढाला जा रहा है और वे इन भूमिकाओं को सीखते जाते हैं। यदि सभी लड़के और सभी लड़कियाँ हर जगह एक जैसा व्यवहार करते तो समझा जा सकता था कि सालैंगिक भूमिकाएँ प्राकृतिक लिंग पर आधारित हैं लेकिन हमने देखा है कि यह सच नहीं है। लड़कों–लड़कों और लड़कियों–लड़कियों के बीच भी तो इतने फर्क होते हैं। जब बच्चे या बड़े, अपनी सामाजिक लैंगिक (जेण्डर) भूमिका से हटकर कुछ करते हैं, तो उनके खिलाफ नाराज़गी या दण्ड भी एक सशक्त तरीका है जिससे उन्हें निश्चित स्त्री–पुरुष व्यवहार के दायरे में रखा जाता है। सबसे आम दण्ड विधान सामाजिक उपहास या खिल्ली उड़ाना है।

जो औरतें हटकर कुछ करने की हिम्मत करती हैं उनके खिलाफ सामाजिक उपहास का एक भयंकर उदाहरण केरल के एक गाँव में देखा गया। तीन युवा कामगार लड़कियाँ रोज़ अपने पुरुष सहयोगियों को शराबखाने में जाते देखती थीं। एक दिन मज़ाक के तौर पर उन्होंने भी वही करने की सोची। इसके बाद हर तरह के लोगों ने उनका पीछा करना शुरू कर दिया चूँकि औरतों ने ऐसी जगह जाने की हिम्मत की थी जहाँ ''शरीफ'' औरतें नहीं जातीं, उन्हें ''आवारा'' का खिताब दे दिया गया।

सामाजिक दण्ड के अलावा आर्थिक दण्ड भी होते हैं। ऐन ओकली के अनुसार एकल औरतों व बच्चों को जिन कड़ी आर्थिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है वे समाज द्वारा अपनी नापसन्दगी ज़ाहिर करने का ढंग है। इसी प्रकार जब बच्चे निश्चित नियमों और तरीकों से हटते हैं तो परिवार वाले खर्चा पानी बन्द करने की धमकी देते हैं।

अभ्यास कार्य

1. रूथ हार्टले के अनुसार सामाजीकरण की प्रक्रियाओं के अलावा क्या अन्य प्रक्रियाएं भी होती हैं? अपने अनुभव से लिखिए।
2. जेण्डर क्या है? समझाइये।
3. ''सामाजिक लिंग (जेण्डर) प्रकृति का रचा नहीं है, समाज का रचा है।'' कथन की विवेचना कीजिए।
4. परिवार में होने वाले उन व्यवहारों को चिन्हित कीजिए जिससे एक शिशु का सामाजीकरण होता है।
5. ''जेण्डर परिवर्तनशील है।'' इस कथन की पुष्टि में अपना तर्क दीजिए।
6. सामाजिक लिंग (जेण्डर) से आप क्या समझते हैं? यह प्रकृति का रचा नहीं समाज का रचा है। तर्क दीजिए।
7. सामाजीकरण से क्या आशय है? तथा परिवार में होने वाले उन व्यवहारों को चिन्हित किजिए जिससे एक शिशु का सामाजीकरण/जेण्डरीकरण होता है।
8. 'माँ बनना' और 'बच्चे पालना' इनमें से कौन प्राकृतिक लिंग का हिस्सा है तथा कौन सामाजिक लिंग का? तर्क दीजिए।
9. प्राकृतिक लिंग (सेक्स) तथा सामाजिक लिंग (जेण्डर) में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
10. महिलायें मोटर सायकिल नहीं चला सकती हैं क्योंकि वे साड़ी या बुरखा पहनती हैं। पुरुष लोगों के हाथ से अच्छी रोटी नहीं बन सकती, क्योंकि उनके हाथ सख्त होते हैं। कमला भसीन के आलेख – जेण्डर क्या है, के आधार पर इन कथनों का परीक्षण कीजिए।
11. लड़कियों को घर पर किस–किस तरह के असमान व्यवहार का सामना करना पड़ता है?
12. जैविक संरचना के आधार पर कहा गया है कि महिलाओं की तुलना में पुरुष कमजोर है। लेकिन हम समाज में देखते हैं कि महिलाओं को अधिक कमजोर मानते हैं। इसका क्या कारण हो सकता है?

13. लड़कियां कुछ खास तरह के काम जैसे, मैकेनिक बनना, फुटबाल खेलना, आदि करने के बारे में सोचते भी नहीं हैं। इसका क्या कारण हो सकता है? क्या लड़कियों को बचपन से ही इस तरह के काम व खेलों में प्रोत्साहन मिले तो वे भी ये कर सकती हैं?
14. औरतों की सामाजिक भूमिका किस हद तक उनकी शारीरिक बनावट पर आधारित है?
15. समाज में स्त्रीयोचित व पुरुषोचित व्यवहार कैसे बिठाता है?
16. लड़कियाँ माँ–बाप के लिए बोझ है, यह रूढ़िबद्ध धारणा एक लड़की के जीवन को किस तरह प्रभावित करती है?

संदर्भ ग्रंथ

1. भला ये जेण्डर क्या है, कमला भसीन, अनुवाद वीणा शिवपुरी, जागोरी प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. हमारी बेटियाँ इंसाफ की तलाश में
3. नारीवाद यह आखिर है क्या? कमला भसीन–निघत सईद खान, अनुवाद वीणा शिवपुरी, कमला भसीन और जुही जैन, जागोरी प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. काश, मुझे किसी ने बताया होता!! कमला भसीन, जागोरी प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. पितृसत्ता क्या हैं? कमला भसीन, अनुवाद वीणा शिवपुरी, जागोरी प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. पुरुषों के साथ जेण्डर कार्यशालाएं
7. लड़की क्या हैं? लड़का क्या हैं? कमला भसीन, जागोरी प्रकाशन, नई दिल्ली
8. You can also visit for more reading - www.jagori.org

अध्याय – 10
पितृसत्ता क्या है?

अध्याय की रूपरेखा

- सामान्य परिचय
- अध्याय के उद्देश्य
- विषयवस्तु के शीर्षक–उपशीर्षक
  - पितृसत्ता क्या है?
  - पितृसत्ता की पहचान
  - पितृसत्ता व्यवस्था में नियंत्रण के क्षेत्र
  - पितृसत्तात्मक व्यवस्था और विभिन्न संस्थाएं
  - पितृसत्तात्मक व्यवस्था से छुटकारा
- अभ्यास कार्य
- संदर्भ सूची

सामान्य परिचय

समाज में मौजूद असमानताएं जिस तरह से भेदभाव का कारण बनती है ठीक उसी तरह पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था भी कुछ खास तरीकों से औरतों के साथ भेदभाव को जन्म देती है। इसके परिणामस्वरुप महिलाएं चाहे वह किसी भी वर्ग की क्यों न हो, रोजमर्रा की जिन्दगी में अनेक तरीकों से अपने को गिरे हुए दर्जे का महसूस करती हैं।

इस अध्याय में पुरुष प्रधान समाज में पुरुषों का वर्चस्व औरतों पर किस–किस तरह से होता है? किन–किन चीजों पर होता है? किन–किन राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं पर पुरुष नियंत्रण होता है? आदि पर चर्चा की गई है।

अध्याय के उद्देश्य

1. समाज में औरतों पर होने वाले विभिन्न प्रकार के भेदभाव को पितृसत्तात्मक व्यवस्था के संदर्भ में समझना।
2. यह समझना कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था किन–किन राजनैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक संस्थाओं पर और कैसे नियंत्रण रखती है?

पितृसत्ता क्या है?

पितृसत्ता का शाब्दिक अर्थ है पिता या ''कुलपति'' (परिवार का बुजुर्ग पुरुष) की सत्ता या शासन। आरम्भ में इस शब्द का इस्तेमाल एक खास तरह के पुरुष प्रधान परिवार के लिए किया जाता था। यह एक बडा संयुक्त परिवार होता था, जिसका सर्वेसर्वा एक बुजुर्ग पुरुष होता था। इस परिवार में इस कुलपति के नीचे

यह सरलीकृत अध्याय कमला भसीन द्वारा लिखित 'भला ये जेण्डर क्या है?' अनुवाद वीणा शिवपुरी; जागोरी प्रकाशन, 2007,से लिया गया है।

औरतें, छोटे मर्द, बच्चे, दास, घरेलू नौकर सभी होते थे। आजकल इस शब्द का इस्तेमाल आम तौर पर पुरुष सत्ता दर्शाने या उन शक्ति सम्बन्धों को बताने के लिए, जिनमें मर्द औरतों को दबाते हैं, या उस व्यवस्था के लिए किया जाता है, जो अनेक तरीकों से औरतों को निचले दर्जे पर रखतीं हैं। किसी भी वर्ग की औरतें क्यों न हों, रोज़मर्रा की जिन्दगी में अनेक तरीकों से अपने गिरे हुए दर्जे को महसूस करती हैं। परिवार, काम की जगह और समाज में औरतों के साथ होने वाला भेदभाव, बेकद्री, अपमान, नियंत्रण, शोषण जुल्म और हिंसा उसके अनेक रूप हैं। पितृसत्ता यानी स्त्री की प्रजनन शक्ति, यौनिकता और श्रम पर पुरुष नियंत्रण।

पितृसत्ता की पहचान

पितृसत्ता किस तरह से हमारे सामने आती है? क्या हम उसे अपने जीवन में पहचान सकते हैं?

इस बात को कुछ मिसालों के ज़रिए समझा जा सकता है। हर उदाहरण एक खास किस्म के भेदभाव और पितृसत्ता का एक रूप है :

* मैंने सुना है मेरे जन्म पर परिवार वाले बहुत दुखी हुए थे। वे लड़का चाहते थे। (बेटे को महत्व)
* मेरे भाईयों को खाना माँगने का हक था। वे जो चाहते थे, हाथ उठा कर लेते थे। हमें कहा जाता था, जब तक दिया न जाए, इन्तजार करो। हम बहनें और माँ बचे–खुचे से काम चला लेती थीं। (भोजन के बँटवारे में लड़कियों के साथ भेदभाव)
* मुझे घर के कामों में माँ की मदद करती पड़ती है, भाई नहीं करते। (औरतों और बच्चियों पर घरेलू काम का बोझ)
* स्कूल जाना एक बड़ी लड़ाई थी। मेरे पिता का खयाल था कि हम लडकियों के लिए पढ़ाई की कोई ज़रूरत नहीं। (लड़कियों के लिए पढ़ाई के अवसरों का अभाव)
* मैं सहेलियों से मिलने या खेलने बाहर नहीं जा सकती।
* मेरे भाई कितने भी बजे घर आ सकते हैं, लेकिन मुझे अँधेरा ढलने से पहले लौटना पड़ता है। (लड़कियों के लिए आज़ादी और आने–जाने की छूट का अभाव)
* मेरे पिता मेरी माँ को कई बार मारते थे। (पत्नी प्रताड़ना)
* मेरे भाई तो पिता से भी गए गुज़रे थे। वो नहीं चाहते थे कि मैं किसी भी लड़के से बात करूँ। (औरतों लड़कियों पर पुरुष नियंत्रण)
* मेरे पिता की सम्पत्ति में मेरा हिस्सा नहीं है। मेरे पति की सम्पत्ति भी मेरी नहीं है। असल में, ऐसा कोई घर नहीं, जिसे मैं अपना कह सकूँ। (औरतों के लिए उत्तराधिकार या सम्पत्ति अधिकार का अभाव)

कुछ प्रश्न

उपरोक्त तरह के कुछ और उदाहरणों की सूची बनायें तथा विचार करें कि इसमें पुरुषों द्वारा औरतों पर नियंत्रण का औरतों पर क्या प्रभाव पड़ता है?

जैसे ही हम टुकड़ों में बँटे हुए इन अलग–अलग अनुभवों पर सोच–विचार करते हैं तो एक साँझी तस्वीर बनती नज़र आती है। हमें यह पता चलता है कि प्रत्येक औरत को किसी–न–किसी रूप में इस भेदभाव का

सामना करना पड़ता है। लडकों और मर्दों के मुकाबले लगातार छोटा और गिरा हुआ बताए जाने का अनुभव और एहसास, आत्म–सम्मान, आत्म–महत्व और आत्म–विश्वास को खत्म कर देता है। तथा स्त्रियों की इच्छाओं, आकांक्षाओं और सपनों के पर काट देता है। अपनी अहमीयत जताने के लिए उठाए गए हर मज़बूत कदम को नारीत्व के खिलाफ मान कर थू–थू की जाती है। ज्यों ही स्त्रियाँ पूर्व निश्चित हदों और भूमिकाओं के बाहर निकल कर कुछ नया करना चाहती हैं तो उन्हें बेशर्म और बेपर्दा कहा जाता है। ऐसे रिवाज़ और कायदे जो स्त्रियों को मर्दों से नीचा मानते हैं, वो सभी जगह मौजूद हैं। यह बात स्पष्ट है कि स्त्रियों के साथ जो कुछ हो रहा है, वह एक 'व्यवस्था' के तहत है, यह व्यवस्था पुरुष प्रधानता पुरुष उच्चता और पुरुष नियंत्रण की है, इसमें औरतों का दर्जा गिरा हुआ, कमज़ोर और अधिकारहीनता का है।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था के तहत किन–किन चीज़ों पर मर्दों का नियंत्रण होता है ?

पितृसत्तात्मक व्यवस्था का नियंत्रण जीवन के सभी क्षेत्रों में फैला हुआ है, जैसे कि –

1. औरतों की उत्पादन या श्रम शक्ति पर नियंत्रणः– मर्द, घर के भीतर औरत द्वारा की जाने वाली मेहनत और घर के बाहर कमाई के लिए की जाने वाली मज़दूरी दोनों पर नियंत्रण रखते हैं। इसे ''उत्पादन की पितृसत्तात्मक प्रणाली'' का नाम दिया जाता है। इसके तहत पति तथा परिवार के अन्य सदस्य औरतों की मेहनत का फायदा उठाते हैं। घरेलू औरतें उत्पादन करने वाला वर्ग है और पति फायदा उठाने वाला वर्ग। औरत का चौबीस घण्टे चलने वाला उबाऊ काम और कमरतोड़ मेहनत को काम समझा ही नहीं जाता, और फिर भी उसे पति पर निर्भर व्यक्ति के रूप में देखा जाता है।
2. औरतों की प्रजनन शक्ति पर नियंत्रणः– अनेक समाजों में बच्चों की संख्या, उनके जन्म का समय, गर्भ निरोधकों का इस्तेमाल जैसे औरतों से ताल्लुक रखने वाले बुनियादी मुद्दों का फैसला भी खुद उनके हाथों में नहीं होता। औरतें कब और कितने बच्चे पैदा करें, या बिलकुल ना करें, इसका फैसला खुद कर पाने की आज़ादी के लिए लगभग सारी दुनिया की औरतें लगातार संघर्ष कर रही हैं। इस बात से साबित हो जाता है कि सरकार और धर्म के माध्यम से पुरुषों का यह नियंत्रण कितना कठोर है और ये सभी लोग इस नियंत्रण को छोड़ने को ज़रा भी तैयार नहीं हैं।
3. औरतों की यौनिकता (सेक्सुअलिटी) पर नियंत्रणः– ऐसा माना जाता है कि पुरुषों की इच्छाओं और ज़रूरतों के अनुसार औरतों को यौन सुख देना ही चाहिए। स्त्रियों की यौनिकता पर किसी एक पुरुष का ही अधिकार हो इसे सुनिश्चित करने के लिए उसकी पोशाक, चाल–ढाल पर कड़ा नियंत्रण रखा जाता है। स्त्री की यौनिकता उसके अपने अधिकार में नहीं रहती, वह दूसरों द्वारा नियंत्रित वस्तु हो जाती है। परिवार के भीतर तथा बाहर बलात्कार अथवा उसकी धमकी के ज़रिए भी यौनिकता पर काबू रखा जाता है। इसे और अधिक कारगर बनाने के लिए बलात्कार के साथ शर्मिन्दगी और बेइज्जती के भाव का एक बहुत बड़ा मायाजाल तैयार कर दिया गया है।
4. औरतों की गतिशीलता पर नियंत्रणः– औरतों की यौनिकता, उसके उत्पादन और प्रजनन पर नियंत्रण, रखने के लिए ज़रूरी है कि मर्द, औरतों के आने–जाने पर नियंत्रण रखे। इसके लिए कई तरीके अपनाए गए हैं। पर्दा, घरेलू क्षेत्र तक उनके दायरे की सीमा, उस सीमा को छोड़ने पर रोक, पारिवारिक और सार्वजनिक दायरों के बीच बड़ा–सा फर्क, स्त्रियों और पुरुषों के बीच कम से कम सम्पर्क, आदि सभी बातें अपने ढंग से औरत की आज़ादी और गतिशीलता पर नियंत्रण रखती हैं। इनकी खासीयत ये है कि ये एक जेण्डर पर लागू होतीं हैं, दूसरे पर नहीं।
5. सम्पत्ति तथा अन्य आर्थिक संसाधनों पर नियंत्रणः– ज़्यादातर सम्पत्ति तथा अन्य आर्थिक संसाधनों पर मर्दों का नियंत्रण है और आमतौर पर ये एक मर्द से दूसरे मर्द, याने पिता से पुत्र के हाथों में जाती हैं। जहाँ कहीं

औरतों को उत्तराधिकार का कानूनी हक मिला है, वहाँ भी सामाजिक रिवाज़, भावनात्मक दबाव, रिश्तों की राजनीति से लेकर साफ–साफ ज़ोर–जबरदस्ती का इस्तेमाल करके उन्हें अपने हक वास्तव में पाने से रोका जाता है।

उपरोक्त बिन्दु क्रमांक 1 से 5 तक के अध्ययन के आधार पर एक सूची बनाइये कि पुरुषों द्वारा औरतों पर किस–किस प्रकार से नियंत्रण किया जाता है?

_____

_____

_____

पितृसत्तात्मक व्यवस्था किन–किन राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं पर नियंत्रण करती है?

समाज की सभी मुख्य संस्थाओं का विश्लेषण करें तो मालूम होता है कि इस व्यवस्था की कड़ियाँ आपस में बड़ी मज़बूती से जुड़ी हुईं हैं – कि इसे हिलाना भी असम्भव लगता है। कुछ हद तक तो व्यवस्था प्राकृतिक लगने लगती है, जो हमेशा से चली आई है और हमेशा चलती रहेगी। चलिए हम प्रत्येक पितृसत्तात्मक संस्था को अलग–अलग देखते हैं :–

1. **परिवार –** परिवार, जो समाज की बुनियादी इकाई है, शायद सबसे अधिक पितृसत्तात्मक संस्था है। आने वाली पीढ़ियों को पितृसत्तात्मक मूल्य देने और सिखाने का काम भी परिवार करता है। परिवार के भीतर ही हम सबसे पहले ऊँच–नीच पदानुक्रम पर आधारित भेदभाव का पाठ पढ़ते हैं। लड़कों को दबावकारी बनने और रौब जमाने की सीख मिलती है, जबकि लड़कियों को दबने और भेदभाव स्वीकारने की। हालाँकि विभिन्न समाजों और परिवारों में पुरुष नियंत्रण का रूप और सीमा अलग–अलग हो सकती है, लेकिन ये पूरी तरह से गैर–मौजूद कभी नहीं होती। परिवार अपने आईने में न सिर्फ सामाजिक व्यवस्था को प्रतिबिम्बित करता है, वरन् बच्चों को उसे मानने का पाठ भी पढ़ाता है, बल्कि परिवार लगातार उस व्यवस्था को गढ़ता है और मज़बूत करता चलता है।''

   किसी परिवार में होने वाले उन कार्यों तथा निर्देशों की सूची बनाइये जिनसे आपको लगता है कि ये पितृसत्तात्मक व्यवस्था के कारण है।

2. **धर्म –** अधिकांश आधुनिक धर्म पितृसत्तात्मक हैं, जो पुरुष प्रभुत्व को सर्वोपरि मानते हैं। वे पितृसत्ता को इस ढंग से पेश करते हैं कि जैसे वह ईश्वर की इच्छा है। उन्होंने ही नैतिकता, नीतिशास्त्र, व्यवहार और यहाँ तक कि कानून की परिभाषाएँ तय की हैं, स्त्रियों व पुरुषों के कर्तव्य और अधिकार बताए हैं। उन दोनों के बीच का रिश्ता निश्चित किया है। वे सरकारी नीतियों पर भी असर डालते हैं और अधिकांश समाज में एक बड़ी ताकत के रूप में आज भी कारगर हैं। एक लोकतांत्रिक देश होते हुए भी विवाह, तलाक और उत्तराधिकार के मामलों में किसी भी व्यक्ति की कानूनी पहुँच उसके धर्म पर निर्भर करती है।

3. **कानूनी व्यवस्था –** अधिकांश देशों में कानूनी व्यवस्था पुरुष तथा आर्थिक रूप से सशक्त वर्ग की पक्षधर है। परिवार, विवाह और उत्तराधिकार सम्बन्धी कानून पितृसत्तात्मक सम्पत्ति नियंत्रण के साथ करीब से जुड़े हुए हैं। विधि–शास्त्र, कानूनी न्याय व्यवस्थाएँ, न्यायाधीश तथा वकील, सभी अधिकतर अपने दृष्टिकोण तथा कानूनी व्यवस्था में पितृसत्तात्मक सोच रखते हैं।

4. **आर्थिक व्यवस्था तथा आर्थिक संस्थाएँ –** पितृसत्तात्मक अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत, पुरुष आर्थिक संस्थाओं, अधिकांश सम्पत्ति व आर्थिक गतिविधियों पर नियंत्रण रखते है, वे ये भी तय करते हैं कि उत्पादन की विभिन्न कार्यवाहियों को कितनी अहमियत दी जाए। औरतों द्वारा किए जाने वाले अधिकांश उत्पादन कार्य का न तो भुगतान होता है और न ही अहमियत मिलती है। औरतों के घरेलू कामों का तो मूल्यांकन ही नहीं होता। खास बात यह है कि औरत की उत्पादक व बच्चों को पालने आदि की विभिन्न भूमिकाओं को आर्थिक योगदान के रूप में देखा ही नहीं जाता।

5. **राजनैतिक व्यवस्था तथा संस्थाएँ –** ग्राम पंचायत से लेकर संसद तक सभी स्तरों पर समाज की सभी राजनैतिक संस्थाओं में पुरुषों का बोलबाला है हमारे देश का भाग्य तय करने वाले राजनैतिक दलों व संगठनों में मुट्ठीभर औरतें हैं। हालाँकि दक्षिण एशियाई देशों में इतनी अधिक औरतों ने सरकार की अगुआई की है, परन्तु जहाँ तक संसद में औरतों की मौजूदगी का सवाल है, दो–तीन देशों को छोड़कर दुनिया में कहीं भी उनकी संख्या 10 प्रतिशत से अधिक नहीं बढ़ी।

6. **जनसंचार माध्यम –** वर्ग और जेण्डर से जुड़ी विचारधारा फैलाने के लिए उच्च वर्ग व उच्च जाति के मर्दों के हाथ में जनसंचार माध्यम एक बहुत मज़बूत औज़ार है। फिल्मों से लेकर टेलीविजन तक, पत्रिकाओं, अखबारों, रेडियो, सभी जगह औरत की वही घिसी–पिटी विकृत छवि को दर्शाया जाता है। लगातार शब्दों, छवियों के ज़रिए पुरुष उच्चता और स्त्री के नीचे दर्जे को जताने वाले सन्देश मिलते रहते हैं। दूसरे क्षेत्रों की ही तरह जनसंचार माध्यमों में भी पेशेवरों के रूप में स्त्रियों की संख्या बहुत कम है। रिपोर्ट लिखने, छापने, विज्ञापन व सन्देश देने का ढंग पूरी तरह औरतों के खिलाफ है, जो उन्हें एक कमज़ोर, गिरी हुई यौन वस्तु के रूप में देखता है।

7. **शिक्षण संस्थाएँ और ज्ञान व्यवस्थाएँ –** जब से ज्ञान को औपचारिक व संस्थागत रूप मिला तब से शिक्षा पर पुरुषों ने अपना कब्ज़ा जमा लिया। दर्शन, धर्मशास्त्र, विधि, विज्ञान, गणित, साहित्य, कला ज्ञान के सभी अंगों तथा शास्त्रों पर आरम्भ से ही पुरुषों का कब्ज़ा रहा है और उन्होंने ऐसी व्यवस्थाएँ बनाई जिससे कि महिलाओं के ज्ञान प्राप्त करना और उसके निर्माण में अपना योगदान देना असम्भव हो जाए। इसी कारण से आज हम देखते हैं कि शिक्षा के क्षेत्र में पुरुष वर्चस्व कायम है। हाल के दिनों में महिला शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ती हुई दिखती हैं, तथापि वे पुरुषों की तुलना में बहुत पीछे हैं। ज्ञान के निर्माण व प्रसार के पुरुषों के इस आधिपत्य के कारण औरतों की समझ, उनके अनुभव, उनकी योग्यता और आकांक्षाएँ शिक्षा व्यवस्था के हाशिए पर धकेल दी गई हैं। ये शिक्षा पुरुषों द्वारा नियंत्रित होने तथा पितृसत्ता के पक्ष में निर्मित होने के कारण औरत और मर्द के सोचने और समझने के तरीकों में भिन्नता पैदा करती है, जिससे स्त्री व पुरुष अलग–अलग ढंग से व्यवहार करते हैं, सोचते हैं, आकांक्षाएँ रखते हैं, क्योंकि उन्हें भेदभावपूर्ण पुरुषत्व और नारीत्व का सोच सिखलाया गया है।

कुछ प्रश्न

1. पितृसत्तात्मक व्यवस्था महिलाओं को आगे बढ़ने से रोकती है। इस कथन के पक्ष में कुछ उदाहरण दीजिए।

2. पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था लड़के और लड़कियों के बीच भेदभाव करता है। कुछ उदाहरण दीजिए।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था के ढाँचे की जड़ें इतनी गहरी हैं और ज़िन्दगी के हर पहलू में फैली हुई हैं, उन्हें कहाँ से काटना शुरू करेंगे और कैसे उनसे छुटकारा पाएँगे ?

किसी भी ढाँचे या स्थिति की ठीक से जाँच कर लेने मात्र से, उसकी तरफ गौर से बिना खौफ देख लेने मात्र से, उसका हौवा कम हो जाता है। उसका विकराल रूप फिर उतना डरावना नहीं लगता। अगर पितृसत्ता एक बड़ा जाल है, उसका एक पहलू दूसरे से जुड़ा हुआ है तो उसे एक जगह से काटेंगे तो दूसरी गाँठें भी कमज़ोर पड़ेंगी। पूरे जाल में हरकत होगी, पर हाँ, यह ज़रूरत है कि पितृसत्ता का ढाँचा कोई ऐसा नहीं है कि हम कुछ छोटे–मोटे कदम उठाएँ और वो हमारे सामने ढेर हो जाए। ढेर ये तभी होगा जब हर घर में हलचल होगी। जब हर औरत इसे बोझ समझेगी और इसे अपने सर से उतार फेंकना चाहेगी।

अभ्यास कार्य

1. पितृसत्तात्मक व्यवस्था और लैंगिक भेदभाव के बीच गहरा सम्बंध है। समझाइये।
2. पुरुषों की तुलना में महिलाओं का दर्जा गिरा हुआ, कमजोर और अधिकारहीनता का है। उदाहरण देते हुए समझाइये।
3. पितृसत्तात्मक व्यवस्था में औरतों की प्रजनन शक्ति तथा यौनिकता (सेक्सुअलिटी) पर नियंत्रण का क्या आशय है? समझाइये।
4. पितृसत्तामक व्यवस्था में औरतों की श्रम शक्ति तथा गतिशीलता पर नियंत्रण को उदाहरणों से समझाइये।
5. पितृसत्तामक व्यवस्था किन–किन राजनैतिक और सामाजिक संस्थाओं पर कैसे नियंत्रण करती है? वर्णन कीजिए।
6. पितृसत्तामक व्यवस्था से होने वाले नुकसान क्या–क्या हैं सूची बनाइये।

संदर्भ ग्रंथ

1. भला ये जेण्डर क्या है, कमला भसीन, अनुवाद वीणा शिवपुरी, जागोरी प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. हमारी बेटियाँ इंसाफ की तलाश में
3. नारीवाद यह आखिर है क्या? कमला भसीन–निघत सईद खान, अनुवाद वीणा शिवपुरी, कमला भसीन और जुही जैन, जागोरी प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. काश, मुझे किसी ने बताया होता!! कमला भसीन, जागोरी प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. पितृसत्ता क्या हैं? कमला भसीन, अनुवाद वीणा शिवपुरी, जागोरी प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. पुरुषों के साथ जेंडर कार्यशालाएं
7. लड़की क्या हैं? लड़का क्या हैं?

   कमला भसीन, जागोरी प्रकाशन, नई दिल्ली
8. You can also visit for more reading - www.jagori.org

अध्याय – 11
सामाजिक विषमता एवं बहिष्कार

अध्याय की रूपरेखा

- सामान्य परिचय
- अध्याय के उद्देश्य
- विषयवस्तु के शीर्षक–उपशीर्षक
  - अवसर, वंचना, बहिष्कार व शोषण
  - सामाजिक विषमता एवं बहिष्कार के स्वरुप
  - सामाजिक विषमता एवं बहिष्कार का रोजमर्रापन
  - सामाजिक विषमता एवं बहिष्कार सामाजिक कैसे?
  - सामाजिक विषमता एवं सामाजिक संसाधन
  - सामाजिक स्तरीकरण
  - भेदभाव, बहिष्कार व पूर्वाग्रह
  - सामाजिक अपवर्जन या बहिष्कार
  - जाति एक भेदभाव पूर्ण व्यवस्था
  - अस्पृश्यता
  - जन जातियों के प्रति भेदभाव मिटाने उठाये गए कदम
  - अन्य पिछडे वर्ग
  - आदिवासी संघर्ष
- अभ्यास कार्य
- संदर्भ सूची

सामान्य परिचय

किसी भी समाज व व्यक्ति की स्वतंत्रता व समृद्धता का आकलन करने के लिए यह जानना जरुरी हो जाता है कि उस समाज में व्यक्ति को अपनी क्षमता बढ़ाने के लिए कितने विकल्प मौजूद हैं? अपनी पसंद नापसंद वह स्वयं तय कर सकता है या सामाजिक व्यवस्था के तहत तय होता है? समाज में उपलब्ध संसाधनों तक कितने लोगों तक पहुंच है? कितने लोगों को इन संसाधनों से वंचित रखा गया है? क्या समाज के कुछ लोग किसी क्षमता को हासिल करने के लिए बहिष्कृत हैं? क्योंकि वंचना एवं बहिष्कार लोगों के शोषण का कारण बनती है। इन्हीं सभी बातों को समझने के लिए आप इस पठन सामग्री में पढ़ेंगे कि सामाजिक असमानता व बहिष्कार समाज में कैसे काम करते हैं?

अध्याय के उद्देश्य

1. सामाजिक असमानता व बहिष्कार समाज में कैसे काम करते हैं? को समझना।
2. सामाजिक विषमता एवं बहिष्कार के विभिन्न स्वरुप क्या हैं?
3. यह समझना कि वंचना व बहिष्कार से व्यक्ति का शोषण कैसे होता है?
4. 'सामाजिक विषमता एवं बहिष्कार सामाजिक कैसे हैं? समझना।
5. सामाजिक पूँजी, भौतिक पूँजी एवं सांस्कृतिक पूँजी क्या हैं? तथा ये एक को दूसरे में कैसे बदलती है? को समझना।
6. यह समझना कि जाति एक भेदभाव पूर्ण व्यवस्था को कैसे जन्म देती है?
7. जातियों और जनजातियों के प्रति भेदभाव मिटाने के लिए राज्य और अन्य संगठनों के प्रयासों से अवगत होना।

यह सामग्री ''भारतीय समाज,'' कक्षा– 12 के लिए समाजशास्त्र की पाठ्यपुस्तक, अध्याय– 5 पृष्ठ क्र. 85 से 118, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली, द्वारा प्रकाशित सामग्री है।

अवसर, वंचना, बहिष्कार व शोषण

किसी भी व्यक्ति के सामने अपने जीवन के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए, अपनी क्षमताओं को बढ़ाने के लिए, अपने व्यक्तित्व को व्यक्त करने के लिए, समाज में अपनी खास भूमिका को सुनिश्चित करने के लिए कितने विकल्प मौजूद हैं, कितने अवसर उपलब्ध हैं –

इस बात से हम उस समाज व व्यक्ति की स्वतंत्रता व समृद्धि का आकलन कर सकते हैं।

इन्हें हासिल करने के लिए उसे परिश्रम तो जरूर करना होगा मगर उससे भी पहले उस व्यक्ति के सामने कितने विकल्प हैं जिनमें से उसे चुनाव करना है –

यह महत्वपूर्ण है। अगर मान लीजिए कि मैंने यह जाना ही नहीं कि चूल्हा–चौका सम्भालना, पानी भरना, बच्चे पालना व रंगोली बनाने के अलावा भी मैं बहुत कुछ कर सकती हूँ जैसे नर्तकी बनना, चित्रकार बनना, डॉक्टर बनना, नेता बनना, खगोल शास्त्री बनना, गणितज्ञ बनना, हवाई जहाज उड़ाना, आदि। तब मेरे पास चुनने के लिए इतना ही बचता है कि मै सब्जी छोंककर बच्चे को नहलाऊँ या कपड़े धोकर नहलाऊँ। यानी, पहले उस व्यक्ति के पास चुनाव करने के लिए पर्याप्त विकल्प होने चाहिए– फिर मान लो मैं एक राह चुनती हूँ तो उसके लिए क्षमताएँ हासिल करने के मौके हों। मुझे इंजीनियर बनना हो तो पहले तो इंजिनियरिंग कॉलेज उपलब्ध होना चाहिए। अगर वहाँ पढ़ने के लिए फीस लगती है तो मेरे पास संसाधन होना चाहिए। और फिर समाज इस मानसिकता का शिकार न हो कि इंजिनियरिंग लड़कियों के लिए नहीं है।

प्रश्न

ग्रामीण क्षेत्र और शहरी क्षेत्र में से कहां शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ने के अवसर ज्यादा हैं? अवसरों की सूची बनाइये।

एक व्यक्ति अपनी पसन्द से तय कर सकता है कि वह दिन में दो रोटी ही खाएगा – यह उसकी स्वतंत्र इच्छा है। लेकिन अगर यह सामाजिक व्यवस्था के आधार पर तय होना है कि इसे तो दो रोटी ही खाना चाहिये, या फिर उसे दो रोटियाँ ही मिले तो ये उसके स्वतंत्र निर्णय को बाधित करता है – तो यह वास्तव में एक वंचना है।

समाज में उपलब्ध संसाधनों व अवसरों से दूर रखा जाना ही वंचना है। किसी को वंचित रखने का एक तरीका बहिष्कार' है। बहिष्कार शब्द को हम आम बोलचाल में –

बाहर करने या मेल–जोल बन्द करने से जोड़ते हैं। मेरे भाई ने दूसरी जाति की लड़की से शादी कर ली

इस कारण जात वालों ने उसका बहिष्कार कर दिया। गांधी जी ने विदेशी कपड़ों का बहिष्कार करने को कहा था।

समाजशास्त्र में बहिष्कार शब्द का एक खास अर्थ होता है – जैसे कि जातिवादी समाजों में दलितों को मन्दिरों के बाहर रखा गया, सभी महिलाओं और गैर ब्राह्मण पुरुषों को वेद अध्ययन से दूर रखा गया.... दलितों को जमीन के मालिक बनने से रोका गया। आज भी चूँकि स्तरीय शिक्षा महंगी है और ज्यादातर गरीब लोग उसे हासिल नहीं कर सकते हैं; वे एक तरह से स्तरीय शिक्षा से बहिष्कृत होते हैं। इस कारण सामान्यतया गरीब लोग

उद्योग, व्यापार, प्रशासन आदि के उच्च पदों से बहिष्कृत होते हैं।

प्रश्न

वर्तमान समय में समाज में किस–किस प्रकार के बहिष्कार अभी भी प्रचलित हैं? सूची बनाइये।

परिवार व समाज को अगर हम गौर से देखें तो पाएँगे कि यह इस तरह के बहिष्कार व वंचनाओं से भरा पड़ा है। इसका मतलब यह है कि ये सारे अवसर कुछ ही लोगों को उपलब्ध हैं और इस कारण उनका जीवन समृद्व होता जाता है –

साधन, संसाधन, शिक्षा, पद; ये कुछ ही लोगों की बपौती बन जाते हैं। अन्य लोग उनकी सेवा में ही लगे रहते हैं। कानून जो भी कहे अन्य लोग उन चन्द लोगों की तुलना मे कम स्वतंत्र हैं।

इस तरह की वंचना व बहिष्कार से अधिकांश लोगों के शोषण का रास्ता खुल जाता है। कुछ ही लोगों के लिए अवसरों की भरमार है और ज्यादातर लोगों के पास जीवनयापन के लिए संभावनाएँ बहुत सीमित हैं और उन्हें अपने श्रम या उसकी उपज को उन खास लोगों के लिए जबरदस्ती त्यागना पड़ता है। अक्सर यह देखा जाता है कि जो लोग अधिक अवसर प्राप्त हैं वे उन सभी संसाधनों को अपने नियंत्रण में रखते हैं जो जीविका हासिल करने के लिए जरूरी हैं।

जैसे जंगल, पानी, ज़मीन, पूंजी, मशीन, कारखाने, यातायात के साधन आदि। इस कारण बाकी लोगों को अपनी जीविका चलाने के लिए इन संसाधनयुक्त लोगों के लिए काम करना पड़ता है। दूसरी ओर उन्हें अपने उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा उन लोगों को दे देना पड़ता है जिनके अधीन वे संसाधन हैं। यानी उनका श्रम अपने लिए नहीं दूसरों की खुशहाली के लिए होता है।

इस पूरे जंजाल को तोड़कर सभी को अवसर की समानता व स्वतंत्रता देना है तो कई तरह के प्रयासों की ज़रूरत है। इनके बारे में हम आगे पढ़ेंगें। यहाँ हम सामाजिक असमानता व बहिष्कार कैसे काम करते हैं, इसे समझने का प्रयास करेंगे।

सामाजिक विषमता एवं बहिष्कार के स्वरूप

भारत में जन्में और यहीं पले–बड़े लोग जानते हैं कि सामाजिक विषमता एवं बहिष्कार जीवन की एक वास्तविकता है। हम गलियों में और रेलवे प्लेटफॉर्म पर भिखारियों को देखते हैं। हम छोटे–छोटे बच्चों को घरेलू नौकर, भवन निर्माण का कार्य करते हुए, सड़क के किनारे बने ढाबों, चाय की दुकानों में सफाई करने वालों और काम करने वालों के रूप में देखते हैं। हम इन छोटे बच्चों को, जो कि नगरीय मध्य वर्ग के घरों में घरेलू नौकर के रूप में काम करते हैं, अपने से बड़े बच्चों का बस्ता ढोते हुए देखकर आश्चर्यचकित नहीं होते हैं। यह हमें एक अन्याय के रूप में महसूस ही नहीं होता कि कुछ बच्चों को शिक्षा से वंचित किया जा रहा है। हममें से कुछ विद्यालयों में बच्चों के साथ जातिगत भेदभाव के बारे में पढ़ते हैं और कुछ इसका सामना करते हैं। इसी प्रकार महिलाओं के खिलाफ हिंसा एवं अल्पसंख्यक समूहों तथा अन्यथा सक्षम लोगों के बारे में पूर्वाग्रह की खबरें भी हम रोजाना पढ़ते हैं।

प्रश्न

उपरोक्त पैराग्राफ को ध्यान से पढ़िए। बताइये कि ये बच्चे किस प्रकार की सुविधा से वंचित हैं? क्या इससे समाज में विषमता पैदा हो सकती है?

सामाजिक असमानता एवं बहिष्कार का यह रोज़मर्रापन

इनका इस प्रकार रोज़ाना घटित होना इन्हें स्वाभाविक बना देता है। हमें लगने लगता है कि यह एकदम सामान्य बात है, ये कुदरती चीज़ें हैं जिन्हें बदला नहीं जा सकता। अगर हम असमानता या बहिष्कार को कभी–कभी अपरिहार्य नहीं भी मानते हैं तो अक्सर उन्हें उचित या 'न्यायसंगत' भी मानते हैं। शायद लोग गरीब अथवा वंचित इसलिए होते हैं क्योंकि उनमें या तो योग्यता नहीं होती या वे अपनी स्थिति को सुधारने के लिए पर्याप्त परिश्रम नहीं करते। ऐसा मानकर हम उन्हें ही उनकी परिस्थितियों के लिए दोषी ठहराते हैं। यदि वे अधिक परिश्रम करते या बुद्धिमान होते तो वहाँ नहीं होते जहाँ वे आज हैं।

गौर से देखने पर हम यह पाते हैं कि जो लोग समाज के सबसे निम्न स्तर पर हैं, वे ही सबसे ज़्यादा परिश्रम करते हैं। एक दक्षिण अमेरिकी कहावत है, ''यदि परिश्रम इतनी ही अच्छी चीज़ होती तो अमीर लोग हमेशा उसे अपने लिए बचा कर रखते''। सम्पूर्ण विश्व में पत्थर तोड़ना, खुदाई करना, भारी वजन उठाना, रिक्शा या ठेला खींचना जैसे कमरतोड़ काम गरीब लोग ही करते हैं, फिर भी वे अपना जीवन शायद ही सुधार पाते हैं। ऐसा कितनी बार होता है कि कोई गरीब मज़दूर एक छोटा–मोटा ठेकेदार भी बन पाया हो? ऐसा तो केवल फिल्मों में ही होता है कि सड़क पर पलने वाला एक बच्चा उद्योगपति बन सकता है, परन्तु फिल्मों में भी अधिकतर यही दिखाया जाता है कि ऐसे नाटकीय उत्थान के लिए गैर–कानूनी या अनैतिक तरीका ज़रूरी है।

क्रियाकलाप

अपने पड़ोस में रहने वाले कुछ धनी और गरीब व्यक्तियों की दिनचर्या पर विचार करें, जिनसे आप या आपका परिवार परिचित है। (उदाहरण– कोई रिक्शावाला या कुली या घरेलू नौकर और कोई सिनेमाघर का मालिक या ठेकेदार या होटल मालिक या डॉक्टर, – आपके परिवेश में कुछ और भी व्यक्ति हो सकते हैं) प्रत्येक समूह के एक व्यक्ति से उसकी दिलचस्पी मालूम करें। प्रत्येक व्यक्ति के प्रतिदिन के क्रियाकलाप यानी कार्य के सामान्य दिनों में सुबह उठने से लेकर रात को सोने तक की गतिविधियों को डायरीबद्ध करें। इन डायरियों के आधार पर निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें तथा अपने सहपाठियों के साथ विचार–विमर्श करें।

1. ये व्यक्ति कितने घण्टे काम करते हैं ? वे किस तरह का काम करते हैं ? क्या उनका काम थकाने वाला, तनावयुक्त, सुखद या अरुचिकर है? कार्य स्थल पर उनके अन्य व्यक्तियों से कैसे सम्बन्ध होते हैं – क्या वे दूसरों को आदेश देते हैं या दूसरों के आदेशों का पालन करते हैं? क्या वे दूसरों के सहयोग पर निर्भर हैं या दूसरों पर नियंत्रण रखते हैं? जिनके साथ वे काम करते हैं क्या वे उनसे आदरपूर्वक व्यवहार करते हैं या उन्हें ही दूसरे व्यक्तियों को आदर देना पड़ता है?

ऐसा भी हो सकता है कि गरीब और कभी–कभार धनी व्यक्ति भी कोई काम न कर रहा हो या अभी उसके पास काम न हो। यदि ऐसा है तब भी आप उनकी दिनचर्या मालूम करें और निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दें।

2. वह व्यक्ति ''बेरोजगार'' क्यों है? क्या वह कोई काम ढूँढ रहा है? वह अपना जीवन निर्वाह कैसे करता है? उनकी बेरोजगारी का उन पर क्या प्रभाव पड़ता है? क्या उनकी जीवनशैली अब उस समय से अलग है जब वह काम कर रहे थे?

उपरोक्त क्रिया कलाप आपको सामान्य तौर पर व्याप्त इस सहजबोध पर पुनः विचार करने के लिए प्रेरित करता है कि एक व्यक्ति के जीवन में सिर्फ कठोर परिश्रम से सुधार सम्भव है। यह सच है कि कठोर परिश्रम तथा व्यक्तिगत योग्यता महत्वपूर्ण है। यदि बाकी सभी चीज़ें बराबर हों, तब व्यक्तिगत प्रयास, योग्यता एवं भाग्य ही व्यक्तियों के बीच के अन्तर के लिए उत्तरदायी हैं। लेकिन जैसा कि हमेशा होता है, सभी चीज़ें एक समान नहीं होती हैं। यही अवैयक्तिक अथवा सामूहिक विभिन्नताएँ सामाजिक असमानता एवं बहिष्कार को स्पष्ट करती हैं।

प्रश्न

उपरोक्त पैराग्राफ के आधार पर बताइये कि व्यक्तिगत प्रयास, योग्यता तथा भाग्य के अलावा कौन–कौन सी चीजें सामाजिक समानता के लिए बराबर होनी चाहिए?

सामाजिक विषमता एवं बहिष्कार सामाजिक कैसे हैं?

इस खण्ड में पूछे गये प्रश्न के तीन प्रमुख उत्तर हो सकते हैं, जो संक्षिप्त रूप से इस प्रकार हैं– पहला, सामाजिक विषमता (असमानता) एवं बहिष्कार सामाजिक इसलिए हैं क्योंकि वे व्यक्ति से नहीं बल्कि समूह से सम्बद्ध हैं। दूसरे, ये सामाजिक हैं क्योंकि ये आर्थिक नहीं हैं, यद्यपि सामाजिक तथा आर्थिक असमानता में सामान्यतः एक मजबूत सम्बन्ध होता है। तीसरे, ये व्यवस्थित एवं संरचनात्मक हैं अर्थात् सामाजिक असमानता का एक निश्चित स्वरूप है। ''सामाजिकता'' के इन तीनों अर्थों पर आगे संक्षेप में विश्लेषण किया जाएगा।

सामाजिक विषमता एवं सामाजिक संसाधन

प्रत्येक समाज में कुछ लोगों के पास धन, सम्पदा, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं शक्ति जैसे मूल्यवान संसाधन का दूसरों की अपेक्षा ज़्यादा बड़ा हिस्सा होता है। ये सामाजिक संसाधन पूँजी के तीन रूपों में विभाजित किए जा सकते हैं– भौतिक संपत्ति एवं आय के रूप में आर्थिक पूँजी, प्रतिष्ठा और शैक्षणिक योग्यताओं के रूप में सांस्कृतिक पूँजी, सामाजिक संगतियों एवं सम्पर्कों के जाल के रूप में सामाजिक पूँजी (बोरदयू, 1980)। पूँजी के ये तीनों रूप अक्सर आपस में घुले–मिले होते हैं। तथा एक को दूसरे में बदला जा सकता है। उदाहरणतया, एक सम्पन्न परिवार का व्यक्ति अपनी आर्थिक पूँजी के जरिए महंगी उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकता है, इस तरह वह अपनी आर्थिक पूँजी को सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक स्वरूप दे सकता है। उसी प्रकार एक अन्य व्यक्ति अपने प्रभावशाली मित्रों व सम्बन्धियों (यानी अपनी सामाजिक पूँजी) के जरिए सामाजिक पूँजी को आर्थिक पूँजी में बदल सकता है।

प्रश्न

उपरोक्त पैराग्राफ के आधार पर बताइये–

1. एक सम्पन्न परिवार के व्यक्ति के पास कौन–कौन सी पूँजी के होने की सम्भावना है?

2. समाज के एक प्रभावशाली व्यक्ति के पास कौन सी पूँजी होती है? क्या उसे अपने प्रभावशाली होने का फायदा किसी अन्य प्रकार की पूंजी को बनाने में सहायक हो सकता है? यदि हां तो उस पूंजी का नाम लिखिए।

सामाजिक संसाधनों तक असमान पहुँच की पद्धति ही साधारणतया सामाजिक विषमता कहलाती है। कुछ सामाजिक विषमताएँ व्यक्तियों के बीच स्वाभाविक भिन्नता को प्रतिबिम्बित करती हैं। उदाहरणस्वरूप, उनकी योग्यता एवं प्रयास में भिन्नता। कोई व्यक्ति असाधारण बुद्धिमान या प्रतिभावान हो सकता है तथापि सामाजिक विषमता व्यक्तियों के बीच सहज या ''प्राकृतिक'' भिन्नता की वजह से नहीं है, बल्कि यह उस समाज द्वारा उत्पन्न की जाती है जिसमें वे रहते हैं। वह व्यवस्था, जो एक समाज में लोगों का वर्गीकरण करते हुए एक अधिक्रमित संरचना (Hierarchy structure) में उन्हें श्रेणीबद्ध करती है उसे समाजशास्त्री सामाजिक स्तरीकरण कहते हैं। यह अधिक्रम लोगों की पहचान एवं अनुभव, उनके दूसरों से सम्बन्ध तथा साथ ही संसाधनों एवं अवसरों तक उनकी पहुँच को आकार देता है।

सामाजिक स्तरीकरण

तीन मुख्य सिद्धान्त सामाजिक स्तरीकरण को समझने में मदद करते हैं–

1. सामाजिक स्तरीकरण व्यक्तियों के बीच की विभिन्नता का प्रकार्य ही नहीं बल्कि समाज की एक विशिष्टता है।

   सामाजिक स्तरीकरण समाज में व्यापक रूप से पाई जाने वाली व्यवस्था है जो सामाजिक संसाधनों को, लोगों की विभिन्न श्रेणियों में, असमान रूप से बाँटती है। तकनीकी रूप से सबसे अधिक आदिम समाजों में, जैसे, शिकारी एवं संग्रहकर्ता समाज में उत्पादन बहुत कम होता था, अतः उन समाजों में केवल प्रारंभिक सामाजिक

स्तरीकरण ही मौजूद था। तकनीकी रूप से अधिक उन्नत समाज में जहाँ लोग अपनी मूलभूत ज़रूरतों से अधिक उत्पादन करते हैं, सामाजिक संसाधन विभिन्न सामाजिक श्रेणियों में असमान रूप से बँटा होता है, जिसका लोगों की व्यक्तिगत क्षमता से कुछ भी लेना–देना नहीं होता है।

2. सामाजिक स्तरीकरण पीढ़ी–दर–पीढ़ी बना रहता है– यह परिवार और सामाजिक संसाधनों के एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी में उत्तराधिकार के रूप में घनिष्टता से जुड़ा है। व्यक्ति की सामाजिक स्थिति प्रदत्त अर्थात् अपने आप मिली हुई होती है। अर्थात् बच्चे अपने माता–पिता की सामाजिक स्थिति को पाते हैं। जाति व्यवस्था के अन्दर, जन्म ही व्यावसायिक अवसरों को निर्धारित करता है। एक दलित, पारम्परिक व्यवसाय जैसे, खेतिहर मजदूर, सफाईकर्मी या चमड़े का कार्य में ही बँधकर रह जाता है और उसके पास ऊँची तनख्वाह वाली सफेदपोश नौकरी या पेशेवर नौकरी के अवसर बहुत कम होते हैं। सामाजिक असमानता का प्रदत्त पक्ष अन्तर्विवाह प्रथा से और सुदृढ़ होता है। चूँकि विवाह अपनी जाति के सदस्यों तक ही सीमित है, अतः अन्तरजातीय विवाह द्वारा जातीय विभाजनों को क्षीण करने की सम्भावना खत्म हो जाती है।

3. सामाजिक स्तरीकरण को विश्वास या विचारधारा द्वारा समर्थन मिलता हैं–

सामाजिक स्तरीकरण की कोई भी व्यवस्था पीढ़ी–दर–पीढ़ी नहीं चल सकती जब तक कि व्यापक तौर पर यह माना न जाता हो कि वह या तो न्यायसंगत या अपरिहार्य है। उदाहरण के लिए, जाति व्यवस्था को धार्मिक या कर्मकाण्डीय दृष्टिकोण से शुद्धता एवं अशुद्धता के आधार पर न्यायोचित ठहराया जाता है, जिसमें जन्म और व्यवसाय की बदौलत ब्राह्मणों को सबसे उच्च स्थिति और दलितों को सबसे निम्न स्थिति दी गई है। यद्यपि ऐसा नहीं है कि हर व्यक्ति असमानता की इस व्यवस्था को ठीक मानता है। ज़्यादातर लोग, जिन्हें अधिक सामाजिक विशेषाधिकार प्राप्त हैं, वहीं सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था जैसे जाति तथा उपजाति का जोरदार समर्थन करते हैं। जो इस अधिक्रम में सबसे नीचे हैं और इस वजह से शोषित तथा अपमानित हुए हैं, वही इसे सबसे ज्यादा चुनौती दे सकते हैं।

प्रश्न

1. आदिम समाज तथा उन्नत समाज, इनमें से किस समाज में सामाजिक स्तरीकरण ज्यादा मिलेगा और क्यों?

2. अन्तर्विवाह तथा अन्तरजातीय विवाह सामाजिक विषमता को कैसे कम कर सकती है या बढ़ावा दे सकती है? अपना विचार लिखिए।

भेदभाव–बहिष्कार और पूर्वाग्रह

हम अक्सर सामाजिक भेदभाव और बहिष्कार की केवल आर्थिक संसाधनों के विभेदीकरण के रूप में ही चर्चा करते हैं। जबकि यह आंशिक रूप से ही सत्य है। लोग ज़्यादातर अपने लिंग, धर्म, निजातीयता, भाषा, जाति तथा विकलांगता की वजह से भेदभाव और बहिष्कार का सामना करते हैं। अतः अभिजात्य वर्ग की कोई महिला भी सार्वजनिक स्थान पर यौन उत्पीड़न की शिकार हो सकती है। एक धार्मिक या नृजातीय अल्पसंख्यक समूह के मध्य वर्ग के पेशेवर व्यक्ति को भी महानगर की एक मध्य वर्ग कालोनी में रहने के लिए घर लेने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। लोग दूसरे सामाजिक समूहों के बारे में पूर्वाग्रह से ज़्यादातर ग्रस्त होते हैं। हम सब एक समुदाय के सदस्य के रूप में बड़े होते हैं जिससे हम अपने ''समुदाय'', ''जाति'', ''वर्ग'' या ''लिंग'' के बारे में ही नहीं बल्कि इसके अलावा दूसरों के बारे में भी धारणाएँ बनाते हैं। यह धारणाएँ पूर्वाग्रहित होती हैं।

पूर्वाग्रह एक समूह के सदस्यों द्वारा दूसरे समूह के बारे में पूर्वकल्पित विचार या व्यवहार होता है। इस शब्द का अक्षरशः अर्थ ''पूर्वनिर्णय'' है अर्थात् वह धारणा जो बिना विषय को जाने और बिना उसके तथ्यों को परखे शुरुआत में ही बना ली जाती है। एक पूर्वाग्रहित व्यक्ति के पूर्वकल्पित विचार सबूत–साक्ष्यों के विपरीत

सुनी–सुनाई बातों पर आधारित होते हैं। यह नई जानकारी प्राप्त होने के बावजूद बदलने से इन्कार करते हैं। पूर्वाग्रह सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों हो सकते हैं। वैसे ज़्यादातर यह शब्द नकारात्मक रूप से लिए गये पूर्वनिर्णयों के लिए इस्तेमाल होता है पर यह स्वीकारात्मक पूर्वनिर्णयों पर भी लागू होता है। उदाहरणतया, एक व्यक्ति अपनी जाति और समूह के सदस्यों के पक्ष में पूर्वाग्रहित हो सकता है और उन्हें बिना किसी सबूत के दूसरी जाति या समूह के सदस्यों से श्रेष्ठ मान सकता है।

प्रश्न

1. लिंग, धर्म, नृजातीयता, भाषा, जाति तथा विकलांगता की वजह से होने वाले भेदभाव और बहिष्कार के एक–एक उदाहरण बताइये।

2. ज्यादातर भेदभाव और बहिष्कार पूर्वाग्रह की उपज होते हैं। अपना विचार लिखिए।

पूर्वाग्रह ज्यादातर एक समूह के बारे में अपरिर्वतनीय, कठोर और रूढ़िबद्ध धारणाओं पर आधारित होते हैं। रूढ़िबद्ध धारणाएँ ज्यादातर नृजातीय और प्रजातीय समूहों और महिलाओं के बारे में प्रयोग की जाती है। भारत जैसे देश में जो बहुत समय तक एक उपनिवेश रहा है, कई रूढिबद्ध विचार औपनिवेशिक देन हैं। कुछ समुदायों को 'वीर प्रजाति' की संज्ञा दी गई तो कुछ को कायर या पौरुषहीन और कुछ को दगाबाज़ कहा गया। अँग्रेज़ी व भारतीय भाषाओं की कथाओं में हम कई बार पाते हैं कि किसी पूरे के पूरे समुदाय को 'आलसी' या 'चालाक' कहा जाता है। यह सही है कि कुछ व्यक्ति किसी समय आलसी या चालाक, बहादुर या कायर हो सकते हैं किन्तु ऐसा सामान्य कथन सभी समूहों के कुछ व्यक्तियों के बारे में सच हो सकता है, पूरे समुदाय के लिए नहीं। लेकिन ऐसे व्यक्तियों के बारे में भी यह हमेशा सच नहीं होता।

वही व्यक्ति भिन्न समयों में आलसी और परिश्रमी हो सकते हैं। रूढ़िबद्ध धारणा पूरे समूह को एक समान श्रेणी में स्थापित कर देती है और इस धारणा के अन्तर्गत व्यक्तिगत, समयानुरूप या परिस्थिति अनुरूप भिन्नता को भी नकार दिया जाता है। इसके अनुसार पूरे समुदाय को एकल व्यक्ति के रूप में देखा जाता है, मानों उसमें एक विशेषता या लक्षण हो।

क्रियाकलाप

1. फिल्मों तथा उपन्यासों से पूर्वाग्रहित व्यवहार के उदाहरण एकत्रित करें।
2. एकत्रित किए गये उदाहरणों पर लोगों से चर्चा करें। एक सामाजिक समूह को जिस प्रकार से चित्रित किया है उससे पूर्वाग्रह कैसे प्रदर्शित होते हैं? हम यह निर्णय कैसे करें कि एक चित्रण पूर्वाग्रहित है अथवा नहीं?
3. क्या आप नियोजित पूर्वाग्रह अर्थात् जानबूझकर ऐसा करना जैसे एक फिल्मकार या लेखक पूर्वाग्रह दिखाना चाहता था और जानबूझकर किए गए पूर्वाग्रहों में अन्तर कर सकते हैं?

यदि पूर्वाग्रह मनोवृत्ति और विचारों को दर्शाता है तो भेदभाव दूसरे समूह अथवा व्यक्ति के प्रति किया गया व्यवहार है। भेदभाव को व्यावहारिक रूप में इस प्रकार भी देखा जा सकता है जिसके तहत एक समूह के सदस्य उन अवसरों के लिए अयोग्य करार दिये जाते हैं जो दूसरे के लिए खुले होते हैं जैसे, जब एक व्यक्ति को उसके लिंग अथवा धर्म के आधार पर नौकरी देने से मना कर दिया जाता है। भेदभाव को प्रमाणित करना बहुत कठिन है, क्योंकि हो सकता है कि यह न तो खुले तौर पर हो और न ही स्पष्टतया घोषित हो। भेदभावपूर्ण व्यवहार को इस तरह भी प्रदर्शित किया जा सकता है जैसे कि वह दूसरे कारणों द्वारा प्रेरित हो, जो भेदभाव की तुलना में ज़्यादा न्यायसंगत कारण प्रतीत होता है। उदाहरण के लिए, जिस व्यक्ति को उसकी जाति के आधार पर नौकरी देने से मना किया गया है उसको कहा जा सकता है कि उसकी योग्यता दूसरों से कम है तथा चयन पूर्णरूप से योग्यता के आधार पर किया गया है।

सामाजिक अपवर्जन या बहिष्कार

सामाजिक बहिष्कार वह तौर–तरीके हैं जिनके जरिए किसी व्यक्ति या समूह को समाज में पूरी तरह घुलने–मिलने से रोका जाता है व अलग या पृथक रखा जाता है। यह उन सभी कारकों पर ध्यान दिलाता है

जो व्यक्ति या समूहों को उन अवसरों से वंचित करते हैं जो अधिकांश जनसंख्या के लिए खुले होते हैं। भरपूर तथा क्रियाशील जीवन जीने के लिए, व्यक्ति को जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं (जैसे रोटी, कपड़ा तथा मकान) के अलावा अन्य आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं (जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात के साधन, बीमा, सामाजिक सुरक्षा, बैंक तथा यहाँ तक कि पुलिस एवं न्यायपालिका) की भी जरूरत होती है। सामाजिक भेदभाव आकस्मिक या अनायास रूप से नहीं बल्कि व्यवस्थित तरीके से होता है। यह समाज की संरचनात्मक विशेषताओं का परिणाम है।

यहाँ इस बात पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि सामाजिक बहिष्कार अनैच्छिक होता है, अर्थात् बहिष्कार बहिष्कृत लोगों की इच्छाओं के विरूद्ध कार्यान्वित होता है। उदाहरण के लिए, शहरों तथा कस्बों में हम हज़ारों बेघर गरीब लोगों की तरह धनी व्यक्तियों को कभी भी फुटपाथ पर सोते हुए नहीं देखते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि धनी व्यक्ति फुटपाथ या पार्कों का प्रयोग करने से ''बहिष्कृत'' हैं। यदि वे चाहें तो निश्चित रूप से इनका प्रयोग कर सकते हैं, परन्तु वे फुटपाथ पर चलकर और पार्क में घूमकर उसका प्रयोग ही तो करते है। सामाजिक भेदभाव को कभी–कभी इस गलत तर्क से न्यायसंगत ठहराया जाता है कि बहिष्कृत समूह स्वयं ही सम्मिलित होने को इच्छुक नहीं है। इस तरह का तर्क इच्छित या चहेती चीज़ों के सन्दर्भ में सरासर गलत है (यह उस स्थिति से बिलकुल अलग है, जहाँ अमीर लोग स्वेच्छा से फुटपाथ पर नहीं सोते या बोझा ढोने का काम नहीं करते)।

प्रश्न

शहरों में फूटपाथ पर सोने वाले लोग, पहाड़ी क्षेत्रों में ढ़लान पर मकान बनाकर रहने वाले लोग तथा नदियों के तट पर रहने वाले लोग (जहां के लोग ज्यादातर प्राकृतिक आपदा के शिकार होते हैं) क्या ये किसी तरह समाज से बहिष्कृत होते है? हां/नहीं तो कैसे?

अधिकांश समाजों की तरह भारत में भी सामाजिक भेदभाव तथा बहिष्कार चरम रूप में पाया जाता है। इतिहास की विभिन्न अवधियों में जाति, लिंग तथा धार्मिक भेदभाव के विरुद्ध आन्दोलन हुए हैं। लेकिन इसके बावजूद पूर्वाग्रह बना रहता है तथा अक्सर नए पूर्वाग्रह उत्पन्न हो जाते हैं। अतः कानून अकेले अपने बूते पर समाज को रूपान्तरित करने अथवा स्थायी सामाजिक परिर्वतन लाने में असमर्थ है। यह सब समाप्त करने के लिए परिवर्तन, जागरूकता एवं संवेदनशीलता के साथ एक सतत् सामाजिक अभियान की आवश्यकता है।

भेदभाव तथा बहिष्कार का क्या अर्थ है? यह समृद्ध भारतीयों को तब समझ आया जब वे ब्रिटिश उपनिवेशिक राज्यों के हाथों इसका शिकार हुए। इस प्रकार के अनुभव, निःसन्देह विभिन्न सामाजिक भेदभावग्रस्त समूहों (जैसे, महिलाओं, दलितों तथा अन्य उत्पीड़ित जातियों एवं जनजातियों) के लिए सामान्य थे। लेकिन उपनिवेशवाद ने अभिजात्य वर्ग को भी भेदभाव से अवगत कराया। औपनिवेशिक शासन के अपमानजनक व्यवहार का सामना करने के साथ–साथ लोकतंत्र तथा न्याय के विचारों से परिचित होने से भारतीयों ने बहुत से समाज सुधार आन्दोलनों को प्रारम्भ किया एवं उनमें सम्मिलित हुए।

इस अध्याय में हम ऐसे चार समूहों पर प्रकाश डालेंगे जो गम्भीर सामाजिक विषमता एवं बहिष्कार के शिकार रहे हैं, मुख्यतः दलित या पूर्व–अछूत जातियाँ, आदिवासी अथवा वे समुदाय जिन्हें 'जनजाति' माना जाता है, महिलाएँ तथा अन्यथा सक्षम लोग। निम्नलिखित भागों में हम प्रत्येक के संघर्ष एवं उपलब्धि की कहानी पर प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे।

जाति और जनजातिः दो व्यवस्थाएँ जो विषमता को कायम रखती हैं एवं न्यायसंगत सिद्ध करती हैं।

जातिः एक भेदभावपूर्ण व्यवस्था

जाति व्यवस्था एक विशिष्ट भारतीय सामाजिक संस्था है जो विशेष जातियों में पैदा हुए व्यक्तियों के विरुद्ध भेदभावपूर्ण व्यवहार को लागू करती है एवं न्यायसंगत ठहराती है। भेदभाव के ये व्यवहार अपमानजनक बहिष्कारी तथा शोषणकारी हैं।

ऐतिहासिक रूप से, जाति व्यवस्था व्यक्तियों का उनके व्यवसाय तथा प्रस्थिति के आधार पर वर्गीकरण करती थी। प्रत्येक जाति एक व्यवसाय से जुड़ी थी; इसका तात्पर्य है कि एक विशेष जाति में जन्मा व्यक्ति उस व्यवसाय में भी ''जन्म लेता'' था जो उसकी जाति से जुड़ा था – उसके पास कोई विकल्प नहीं था। इसके अतिरिक्त, शायद इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रत्येक जाति का सामाजिक प्रस्थिति या हैसियत के अधिक्रम में एक विशेष स्थान भी होता था। अतः मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि सिर्फ सामाजिक प्रस्थिति के अनुसार ही व्यावसायिक श्रेणियाँ श्रेणीबद्ध नहीं थीं, बल्कि प्रत्येक वृहत व्यावसायिक श्रेणी के अन्दर पुनः श्रेणीक्रम था। धर्मग्रन्थ के सख्त नियमों के अनुसार सामाजिक तथा आर्थिक प्रस्थिति को निश्चित रूप से अलग रखा जाता था। उदाहरण के लिए आनुष्ठानिक रूप से सबसे ऊँची जाति, ब्राह्मण को धन संचय की अनुमति नहीं थी, ब्राह्मण धार्मिक या (पर–लौकिक) क्षेत्र में सर्वोपरि होने के बावजूद क्षत्रीय राजाओं की इह–लौकिक (या धर्म से परे) शक्ति के अधीन होते थे। दूसरी तरफ उच्चतम चिरकालिक प्रस्थिति एवं शक्ति के बावजूद, राजा आनुष्ठानिक–धार्मिक क्षेत्र में ब्राह्मणों के अधीन होते थे।

हालाँकि वास्तविक ऐतिहासिक व्यवहार में सामाजिक तथा आर्थिक परिथिति एक दूसरे के अनुरूप होती थी। अतः स्पष्टतया सामाजिक (जैसे, जाति) तथा आर्थिक हैसियत में घनिष्ठ सम्बन्ध था – उच्च जातियाँ प्रायः निर्विवाद रूप से उच्च आर्थिक प्रस्थिति की थीं, जबकि 'निम्न' जातियाँ प्रायः निम्न आर्थिक स्थिति की होती थीं।

आधुनिक काल में, विशेष रूप से 19वीं सदी से, जाति तथा व्यवसाय के बीच के सम्बन्ध काफी ढीले हुए हैं। व्यावसायिक परिर्वतन सम्बन्धित आनुष्ठानिक–धार्मिक प्रतिबन्ध आज उतनी आसानी से नहीं लागू किए जा सकते हैं, तथा पहले की अपेक्षा अब व्यवसाय परिवर्तन आसान हो गया है। इसके अतिरिक्त, सौ या पचास वर्ष पहले की तुलना में, जाति तथा आर्थिक स्थिति के सहसम्बन्ध कमजोर हुए हैं। आज अमीर तथा गरीब लोग हर जाति में पाए जाते हैं।

व्यवस्था के थोड़ा कम सख्त होने पर मोटे तौर पर समान सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति वाली जातियों के बीच का फासला कम हुआ है। परन्तु विभिन्न सामाजिक–आर्थिक समूहों के बीच जातीय अन्तर अभी भी बना हुआ है।

यद्यपि समाज निश्चित रूप से बदला है, लेकिन व्यापक स्तर पर बहुत ज़्यादा परिवर्तन नहीं हुआ है। यह आज भी सच है कि समाज का साधन–सम्पन्न व ऊँचे ओहदे वाले वर्ग में अत्याधिक कथित ''उच्च'' जाति के लोग हैं। जबकि वंचित (तथा निम्न आर्थिक स्थिति वाले) वर्ग में कथित निम्न जातियों की प्रधानता है। इसके अतिरिक्त, कथित ''ऊँची'' व 'नीची' जातियों के गरीब और सम्पन्न तबकों के अनुपात में जमीन–आसमान का फर्क है। (सारणी 1 और 2 देखें)। संक्षेप में कहें तो यह सच है कि एक सदी से चल रहे सामाजिक आन्दोलनों ने कई महत्वपूर्ण परिवर्तन किए, उत्पादन व्यवसाय में भारी बदलाव आए, तथा साथ ही स्वतंत्र भारत की राजसत्ता ने सार्वजनिक क्षेत्र में जाति पर अंकुश लगाने की भरपूर कोशिश की। लेकिन इन परस्पर प्रयत्नों के बावजूद 21वीं सदी में भी जाति भारतीयों के जीवन अवसरों को सतत् प्रभावित कर रही है।

''मैंने श्वेतों के प्रभुत्व के विरुद्ध संघर्ष किया है तथा मैंने अश्वेतों के प्रभुत्व के विरुद्ध संघर्ष किया है। मैंने प्रजातंत्र के आदर्श तथा एक आजाद समाज का सपना संजोया है, जहाँ सभी लोग एक–दूसरे से सामंजस्य स्थापित करते हुए एक समान अवसर का उपयोग करते हुए रहेंगे। यह एक आदर्श है जिसको पाने की तथा जिसके लिए जीने की मैं आशा करता हूँ। परन्तु यदि आवश्यकता हुई तो इस आदर्श की खातिर मैं मरने के लिए भी तैयार हूँ।''

– नेल्सन मण्डेला, 20 अप्रैल, 1964, रिवोनिया जॉच के दौरान

सरणी 1– गरीबी रेखा से नीचे की जनसंख्या का प्रातिशत, 1999–2000

जति एवं समुदाय समूह	ग्रामीण भारत 327 रु. या कम प्रति व्यक्ति प्रति माह व्यय	नगरीय भारत 454 रु. या कम प्रति व्यक्ति प्रति माह व्यय
अनुसूचित जनजातियाँ	45.8	35.6
अनुसूचित जातियाँ	35.9	38.3
अन्य पिछड़ा वर्ग	27.0	29.5
उच्च जाति मुसलमान	26.8	34.2
उच्च जाति हिन्दू	11.7	9.9
उच्च जाति ईसाई	9.6	5.4
उच्च जाति सिख	0.0	4.9
उच्च अन्य जातियाँ	16.0	2.7
सभी समूह	27.0	23.4

नोट : ''उच्च जातियॉ'' अर्थात् अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/अन्य पिछड़ा वर्ग नहीं।

स्त्रोत : एन.एस.एस.ओ. 55वें चक्र (1999–2000) इकाई स्तर के ऑकड़े सी.डी. पर उपलब्ध

सारणी 2 : समृद्ध जनसंख्या का प्रतिशत, 1999–2000

जति एवं समुदाय समूह	ग्रामीण भारत 1000 रु. या अधिक प्रति व्यक्ति प्रति माह व्यय	नगरीय भारत 2000 रु. या अधिक प्रति व्यक्ति प्रति माह व्यय
अनुसूचित जनजातियाँ	1.4	1.8
अनुसूचित जातियाँ	1.7	0.8
अन्य पिछड़ा वर्ग	3.3	2.0
उच्च जाति मुसलमान	2.0	1.6
उच्च जाति हिन्दू	8.6	8.2
उच्च जाति ईसाई	18.9	17.0
उच्च जाति सिख	31.7	15.1
उच्च अन्य जातियाँ	17.9	14.4
सभी समूह	4.3	4.5

नोट : ''उच्च जातियॉ'' अर्थात् अनुसूचित जातियाँ/अनुसूचित जनजातियाँ/अन्य पिछड़ा वर्ग नहीं।

स्त्रोत : एन.एस.एस.ओ. 55वें चक्र (1999–2000) इकाई स्तर के आंकड़े सी.डी. पर उपलब्ध

सारणी 1 तथा 2 के लिए अभ्यास

सारणी 1, 1999–2000 की जनसंख्या में ''शासकीय गरीबी की रेखा'' से नीचे रहने वाली प्रत्येक जाति एवं समुदाय का प्रतिशत दर्शाती है। ग्रामीण एवं नगरीय भारत के लिए भिन्न–भिन्न कॉलम हैं।

सारणी 2 भी उसी प्रकार बनाई गई हैं, सिवाय इसके कि इसमें गरीबी रेखा की बजाय अमीर लोगों का प्रतिशत दर्शाया गया है। ''अमीरी'' को ग्रामीण भारत में एक हज़ार रु. प्रति व्यक्ति प्रति माह व्यय एवं नगरीय भारत में दो हजार रु. प्रति व्यक्ति प्रति माह व्यय के रूप में परिभाषित किया गया है। यह ग्रामीण भारत में पाँच व्यक्तियों के परिवार के द्वारा पाँच हजार रु. प्रति माह व्यय तथा नगरीय भारत में दस हजार रु. प्रति माह के बराबर हैं। निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर देने से पहले कृपया इन तालिकाओं को ध्यान से पढ़ें–

1. भारतीय जनसंख्या के कितने प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे (क) ग्रामीण भारत में और (ख) नगरीय भारत में रहते हैं?
2. किस जाति/समुदाय समूह के ज़्यादातर लोग (क) ग्रामीण तथा (ख) नगरीय भारत में अत्यधिक गरीबी में ज़िन्दगी गुजार रहे हैं? किस जाति/समुदाय के सबसे कम प्रतिशत लोग अत्यधिक गरीबी में जीते हैं?
3. प्रत्येक निम्न जातियों (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़े वर्ग) का गरीबी का प्रतिशत राष्ट्रीय सामान्य प्रतिशत से कितने गुना अधिक है? क्या इसमें कोई महत्वपूर्ण ग्रामीण–नगरीय विभिन्नता है?
4. ग्रामीण एवं नगरीय भारत की जनसंख्या में किस जाति/समुदाय के लोगों का अमीरी में सबसे कम प्रतिशत है? राष्ट्रीय सामान्य अनुपात से इसकी तुलना कैसे की जा सकती है?
5. उच्च जाति हिन्दुओं की अमीर जनसंख्या का प्रतिशत निम्न जाति (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्ग) के प्रतिशत से लगभग कितने गुना ज़्यादा है ?
6. ये सारणियाँ आपको अन्य पिछड़े वर्गों की स्थिति के बारे में क्या बतलाती हैं ? क्या इनमें कोई महत्वपूर्ण ग्रामीण–नगरीय विभिन्नता है?

अस्पृश्यता

''अस्पृश्यता'' जाति–व्यवस्था का एक अत्यन्त घृणित एवं दूषित पहलू है। छुआछूत कर्मकाण्डीय दृष्टि से सबसे नीची मानी जाने वाली जातियों के सदस्यों के विरुद्ध अत्यन्त कठोर सामाजिक दण्ड व बन्दिशों का विधान करता है। सच पूछिए तो ''अस्पृश्य'' यानी अछूत मानी जाने वाली जातियों को जाति सोपान या अधिक्रम में कोई स्थान ही नहीं है। वे तो इस व्यवस्था से बाहर हैं। उन्हें तो इतना अधिक ''अशुद्ध'' एवं अपवित्र माना जाता है कि उनके ज़रा छू जाने भर से ही अन्य सभी जातियों के सदस्य अत्यन्त अशुद्ध हो जाते हैं। जिसके कारण अछूत कहे जाने वाले व्यक्ति को तो अत्यधिक कठोर दण्ड भुगतना पड़ता है, साथ ही उच्च जाति का जो व्यक्ति छुआ गया है उसे भी फिर से शुद्ध होने के लिए कई शुद्धीकरण क्रियाएँ करनी होती हैं। सच तो यह है कि भारत के कई क्षेत्रों (विशेष रूप से दक्षिण भारत) में ''दूर से अशुद्धता'' की धारणा विद्यमान थी, जिसके अनुसार 'अछूत' समझे जाने वाले व्यक्ति की उपस्थिति अथवा छाया ही अशुद्ध समझी जाती थी। अस्पृश्यता की प्रथा उन लोगों पर तमाम सामाजिक प्रतिबन्ध भी लादती है। यहाँ यह बता देना महत्वपूर्ण है कि अस्पृश्यता के तीन मुख्य आयाम हैं– अपवर्जन, अनादर अधीनता और शोषण। इस प्रथा को परिभाषित करने के लिए ये तीनों आयाम समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। यद्यपि अन्य (यानी ''स्पृश्य'' मानी जाने वाली) नीची जातियों को भी कुछ हद तक अधीनता और शोषण का सामना करना पड़ता है, लेकिन उन्हें बहिष्कार का उतना चरम रूप नहीं सहना पड़ता जितना कि ''अछूतों'' को। दलितों को तो बहिष्कार के इतने भयंकर रूप भुगतने पड़ते हैं जो और समूहों को नहीं सहने पड़ते। उदाहरण के लिए, उन्हें पेयजल के सामान्य स्रोतों से पानी नहीं लेने दिया जाता, उनके कुएँ, हैंडपम्प, घाट

आदि अलग होते हैं, वे सामूहिक धार्मिक पूजा–आराधना, सामाजिक समारोहों और त्यौहारों–उत्सवों में भाग नहीं ले सकते। साथ ही, उनसे अनेक छोटे काम ज़ोर–ज़बरदस्ती से कराए जाते हैं जैसे, किसी धार्मिक उत्सव पर ढोल–नगाड़े बजाना। अनादर और अधीनतासूचक अनेक कार्य सार्वजनिक रूप से कराना अस्पृश्यता की प्रथा का एक महत्वपूर्ण अंग है। उन्हें तथाकथित ऊँची जातियों के लोगों के प्रति ज़बरदस्ती सम्मान प्रदर्शित करने के लिए अनिच्छापूर्वक कई व्यवहार करने पड़ते हैं जैसे, टोपी या पगड़ी उतारना, पहने हुए जूतों को उतारकर हाथ में पकड़कर ले जाना, सिर झुकाकर खड़े रहना, एकदम साफ या चमचमाते हुए कपड़े नहीं पहनना आदि–आदि। इसके अलावा, अपशब्द सुनना और अपमान सहना तो उनका रोज़मर्रा का काम है। इसके अतिरिक्त तरह–तरह का आर्थिक शोषण तो मानो इस अस्पृश्यता की कुरीति के साथ सदा से ही जुड़ा है। उन्हें आमतौर पर ''बेगार'' करनी पड़ती है, जिसके लिए उन्हें कोई पैसा नहीं दिया जाता या बहुत कम मजदूरी दी जाती है। कभी–कभी तो उनकी सम्पत्ति छीन ली जाती है।

प्रश्न

अस्पृश्य समझे जाने वाले समाज के लोगों को किस–किस प्रकार के बहिष्कार का सामना पड़ता है? सूची बनाइये।

इन तथाकथित ''अस्पृश्यता'' को पिछली अनेक शताब्दियों के सामूहिक रूप से भिन्न–भिन्न नामों से पुकारा जाता रहा है। इन नामों की अपनी व्युत्पत्ति कुछ भी हो, और इनका मूल अर्थ चाहे कुछ भी रहा हो पर अब वे अत्यन्त अपमानसूचक एवं निन्दात्मक हैं। सच तो यह है कि उनमें से अनेक शब्द तो आज भी गाली के तौर पर इस्तेमाल किए जाते हैं हालाँकि आज उनका प्रयोग एक दण्डनीय अपराध माना जाता है। महात्मा गांधी ने जाति के निन्दात्मक इन आरोपों को दूर करने के लिए 1930 के दशक से उन्हें ''हरिजन'' (जिसका शाब्दिक अर्थ ''परमात्मा के बच्चे'' हैं) कहकर पुकारना शुरू किया, यह काफी लोकप्रिय हुआ।

किन्तु भूतपूर्व अस्पृश्य समुदायों और उनके नेताओं ने एक दूसरा शब्द ''दलित'' गढ़ा, जो इन सभी समूहों का उल्लेख करने के लिए अब आमतौर पर स्वीकार कर लिया गया है। भारतीय भाषाओं में, दलित का आक्षरिक अर्थ है ''पैरों से कुचला हुआ'' और यह उत्पीड़ित लोगों के भाव का द्योतक है।

जातियों और जनजातियों के प्रति भेदभाव मिटाने के लिए राज्य और अन्य संगठनों द्वारा उठाए गए कदम

स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले से ही भारतीय राज्य, यानी भारत सरकार अनुसूचित जनजातियों और अनुसूचित जातियों के लिए अनेक विशेष कार्यक्रम चलाती रही है। ब्रिटिश भारत की सरकार ने 1935 में अनुसूचित जातियों और जनजातियों की ''अनुसूचियाँ'' तैयार की थीं जिनमें उन जातियों तथा जनजातियों के नाम दिए गये थे जिन्हें उनके विरुद्ध बड़े पैमाने पर बरते जा रहे भेदभाव के कारण विशेष बरताव का पात्र माना गया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, उन नीतियों को तो जारी रखा ही गया, उनमें कई नई नीतियाँ भी जोड़ दी गईं। इनमें सबसे उल्लेखनीय परिवर्तन यह किया गया कि 1990 के दशक के प्रारम्भिक वर्षों से अन्य पिछड़े वर्गों के लिए भी कुछ विशेष कार्यक्रम जोड़ दिए गए।

क्रियाकलाप

भारत के संविधान की एक प्रति प्राप्त करें। आप इसे अपने विद्यालय के पुस्तकालय या किताबों की किसी दुकान अथवा इंटरनेट से प्राप्त कर सकते हैं । (वेबसाइट : http://indiacode.nic.in/)

इसमें आप उन सभी अनुच्छेदों एवं अनुभवों को खोजकर उनकी सूची एवं अनुभागों को खोजकर उनकी सूची बनाएं जो अनुसूचित जातियों और जनजातियों अथवा जाति संबंधी किसी समस्या, जैसे अस्पृश्यता आदि के बारे में हैं।

पुराने और वर्तमान जातीय भेदभाव को दूर करने और उससे हुई क्षति की पूर्ति करने के लिए राज्य की ओर से जो सबसे महत्वपूर्ण कदम उठाया गया है उसे आम लोगों में ''आरक्षण'' के नाम से जाना जाता है। इसके अन्तर्गत सार्वजनिक जीवन के विभिन्न पक्षों में अनुसूचित जातियों के सदस्यों के लिए कुछ स्थान या सीटें अलग निर्धारित कर दी जाती हैं। इन आरक्षणों में अनेक किस्म के आरक्षण शामिल हैं जैसे, राज्य और केन्द्रीय विधानमण्डलों (यानी राज्य विधानसभाओं, और राज्यसभा) में सीटों का आरक्षण, सभी विभागों और सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियों के अन्तर्गत सरकारी सेवा में नौकरियों का आरक्षण, शैक्षिक संस्थाओं में सीटों का आरक्षण। आरक्षित सीटों का अनुपात समस्त जनसंख्या में अनुसूचित जातियों और जनजातियों के प्रतिशतांश के बराबर होता है। लेकिन अन्य पिछड़े वर्गों के लिए यह अनुपात अलग आधार पर निश्चित किया गया है। इसी सिद्धान्त को सरकार के अन्य विकास कार्यक्रमों पर भी लागू किया गया है, उनमें से कुछ अन्य कार्यक्रमों में उन्हें अधिमान्यता या तरजीह दी जाती है।

प्रश्न

सार्वजनिक जीवन के वे कौन–कौन से पक्ष हैं जहां अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए आरक्षण लागू है? सूची बनाइये। सामाजिक असमानता को दूर करने में आरक्षण कैसे सहायक है? अपने विचार लिखिए।

आरक्षणों के अतिरिक्त और भी बहुत से कानून हैं जो जातीय भेदभाव, विशेष रूप से अस्पृश्यता को खत्म करने, रोकने अथवा उसके लिए दण्ड देने के लिए बनाए गए हैं। ऐसे शुरूआती कानूनों में एक था 1950 का जातीय निर्योग्यता निवारण अधिनियम, जिसमें यह व्यववस्था की गई थी कि केवल धर्म या जाति के परिवर्तन के कारण ही नागरिकों के अधिकारों को कम नहीं किया जाएगा। ऐसा ही सबसे हाल का कानून था, 2005 का संविधान संशोधन (तिरानवेवाँ संशोधन) अधिनियम, जो 23 जनवरी 2006 को कानून बना। संयोगवश 1950 का कानून और 2006 का संशोधन दोनों ही शिक्षा से सम्बन्धित थे। 93वाँ संशोधन उच्चतर शिक्षा की संस्थाओं में अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण लागू करने के लिए था, जबकि 1850 का अधिनियम सरकारी स्कूलों में दलितों को भर्ती करने की इजाज़त देने के लिए बनाया गया था। इन दोनों के बीच और अनेक कानून बनाए गए जिनमें वस्तुतः सबसे महत्वपूर्ण थे 'भारत का संविधान' जो 1950 में पारित किया गया था और 1989 का अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम। संविधान में अस्पृश्यता का उन्मूलन (अनुच्छेद 17) कर दिया और उपर्युक्त आरक्षण सम्बन्धी उपबन्ध लागू किए। 1989 के अत्याचार निवारण अधिनियम ने दलितों और आदिवासियों के विरुद्ध हिंसा और अपमानजनक कार्यों के लिए दण्ड देने के उपबन्धों में संशोधन करके उन्हें और मजबूत बना दिया। इस प्रकार इस विषय पर बार–बार अनेक कानून बनाए गए जो इस तथ्य के प्रमाण हैं कि अकेला कानून ही किसी सामाजिक कुप्रथा को नहीं मिटा सकता। वस्तुतः जैसा कि आपने समाचार पत्रों में पढ़ा होगा और टी.वी., रेडियो जैसे संचार माध्यमों में देखा–सुना होगा, दलित तथा आदिवासियों के विरूद्ध अत्याचार सहित भेदभाव के मामले आज भी समस्त भारत में देखने को मिलते हैं।

शहर

– दया पवार

एक दिन किसी ने 20वीं सदी के एक शहर को खोदा और अवलोकन किया। एक दिलचस्प शिलालेख विवरण इस प्रकार था : ''यह पानी का नलका सभी जातियों और धर्मों के लिए खुला है'' इसका क्या मतलब रहा होगा : यही न कि यह समाज बँटा हुआ था? उनमें से कुछ की स्थिति ऊंची थी और बाकी की नीची? ठीक है, फिर तो यह शहर दफन होने लायक ही था– तो फिर लोग इसे मशीन युग क्यों कहते हैं? यह तो 20वीं सदी का ''पाषाण युग'' प्रतीत होता है।

कोई सरकारी कार्यवाही अकेले ही सामाजिक परिवर्तन नहीं ला सकती। इसके लिए जन–सहयोग की भी आवश्यकता होती है। हर हाल में कोई भी सामाजिक समूह भले ही वह कितना भी कमज़ोर और सताया हुआ हो, सिर्फ अत्याचारों का शिकार ही नहीं होता है। मानव विषम परिस्थितियों में भी, न्याय तथा मान–मर्यादा के लिए एकजुट होकर स्वतः संघर्ष करने को सदा तैयार होते हैं। इसलिए दलित लोग भी स्वयं राजनीतिक, आन्दोलनात्मक और सांस्कृतिक मोर्चों पर अधिकाधिक सक्रिय होते गये हैं। ज्योतिबा फुले, इयोतीदास, पेरियार, अम्बेडकर जैसे अनेक दलित नेताओं द्वारा स्वतंत्रता–प्राप्ति के पहले के दौर में संघर्ष एवं आन्दोलन किए गए थे। वे और अन्य नए आन्दोलन भी स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद कर्नाटक की दलित संघर्ष समिति जैसे समकालीन राजनीतिक संगठनों द्वारा चलाए जाते रहें है। इस प्रकार दलितों के राजनीतिक अधिकारों के लिए संघर्ष काफी लम्बे समय से चल रहा है। उन्हें ने अनेक भारतीय भाषाओं, विशेष रूप से मराठी, कन्नड, तमिल, तेलगू और हिन्दी के साहित्य में उल्लेखनीय योगदान दिया है (बॉक्स देखें, जिसमें मराठी भाषा के सुप्रसिद्ध दलित कवि दया पवार की एक छोटी कविता दी गई है)।

अन्य पिछड़े वर्ग

अस्पृश्यता सामाजिक भेदभाव का सर्वाधिक स्पष्ट एवं व्यापक रूप था किन्तु जातियों का एक काफी बड़ा समूह ऐसा भी था जिन्हें नीचा समझा जाता था। उनके साथ तरह–तरह का भेदभाव भी बरता जाता था पर उन्हें अछूत नहीं माना जाता था। ये सेवा करने वाली शिल्पी (कारीगर) जातियों के लोग थे, जिन्हें जाति–सोपान में नीचा स्थान प्राप्त था। भारत के संविधान में इस सम्भावना को स्वीकार किया गया है कि अनुसूचित जनजातियों और अनुसूचित जातियों के अलावा और भी कई समूह हो सकते हैं जो सामाजिक असुविधाओं से पीड़ित हैं। ऐसे समूहों को जाति पर आधारित होना जरूरी नहीं हैं, लेकिन वे आमतौर पर किसी जाति के नाम से ही पहचाने जाते हैं। इन समूहों को ष्सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्ग कहा गया है। यह आम बोलचाल में प्रचलित ''अन्य पिछड़े वर्ग'' शब्द का संवैधानिक आधार है, जो आजकल सामान्य रूप से प्रयोग किया जाता है।

''जनजाति'' की श्रेणी की तरह अन्य पिछड़े वर्गों को भी नकारात्मक रूप से यानी वे क्या ''नहीं हैं'' इसके आधार पर परिभाषित किया जाता है। वे न तो जाति–क्रम में ''अगड़ी'' कही जाने वाली ऊँची जातियों के हिस्से हैं, और न ही वे निम्नतम सोपान पर स्थित दलितों में आते हैं। लेकिन चूँकि जाति हिन्दू धर्म तक ही सीमित नहीं रही है, बल्कि सभी प्रमुख भारतीय धर्मों में घुस आई है, इसलिए अन्य धर्मों में भी पिछड़ी जातियाँ पाई जाती हैं तथा इनकी भी समान परम्परागत व्यावसायिक पहचान होती है और इनकी सामाजिक–आर्थिक प्रस्थिति भी वैसी ही अथवा उनसे भी बदतर होती है।

इन्हीं कारणों से अन्य पिछड़े वर्ग, दलितों अथवा आदिवासियों की तुलना में अधिक विविधतापूर्ण समूह हैं। जवाहरलाल नेहरू के प्रधानमंत्रित्व में स्वतंत्र भारत की पहली सरकार ने अन्य पिछड़े वर्गों के कल्याण के उपाय सुझाने के लिए एक आयोग स्थापित किया था। काका कालेलकर की अध्यक्षता में नियुक्त प्रथम पिछड़े वर्ग आयोग ने 1953 में अपनी रिपोर्ट पेश की थी। लेकिन उस समय के राजनीतिक वातावरण को देखते हुए इस

रिपोर्ट को ठण्डे बस्ते में डाल दिया गया। पाँचवें दशक के मध्य से अन्य पिछड़े वर्गों का मुद्दा क्षेत्रीय मामला बन गया और इस पर केन्द्रीय स्तर की बजाय राज्य स्तर पर कार्यवाही की जाती रही।

दक्षिणी राज्यों में पिछड़ी जातियों के राजनीतिक आन्दोलनों का लम्बा इतिहास रहा है, जो वहाँ 20वीं सदी के प्रारम्भिक वर्षों में शुरू हो गए थे। इन शक्तिशाली सामाजिक आन्दोलनों के कारण अन्य पिछड़े वर्गों की समस्याओं पर ध्यान देने की नीतियाँ वहाँ, अधिकांश उत्तरी राज्यों में चर्चित होने से पहले ही, अपनाई जाने लगी थीं। अन्य पिछड़े वर्गों का मुद्दा केन्द्रीय स्तर पर 1970 के दशक के आखिरी वर्षों में तब फिर उठ खड़ा हुआ जब आपातकाल (इमरजेंसी) के बाद जनता पार्टी ने शासन की बागडोर सम्भाली। उस समय बी. पी. मण्डल की अध्यक्षता में दूसरा पिछड़ा वर्ग आयोग गठित किया गया। किन्तु आगे चलकर जब 1990 में केन्द्रीय सरकार ने मण्डल आयोग की दस वर्ष पुरानी रिपोर्ट को कार्यान्वित करने का निर्णय लिया तभी अन्य पिछड़े वर्ग का मुद्दा राष्ट्रीय राजनीति में एक प्रमुख विषय बन गया।

1990 के दशक में हमें उत्तर भारत में अन्य पिछड़े वर्गों और दलितों दोनों में ही निचली जातियों के आन्दोलनों में फिर से तेजी दिखाई दी। अन्य पिछड़े वर्गों के मुद्दे के राजनीतिकरण से यह सम्भावना बढ़ गई कि उनकी बड़ी भारी संख्या को राजनीतिक प्रभाव (यानी वोटों) में बदला जा सकता है। हाल के सर्वेक्षणों से पता चलता है कि राष्ट्रीय जनसंख्या में पिछड़े वर्गों का प्रतिशतांश लगभग 41 प्रतिशत है। राष्ट्रीय स्तर पर ऐसा पहले सम्भव नहीं था, इसीलिए कालेलकर आयोग की रिपोर्ट को ठण्डे बस्ते में डाल दिया गया था और मण्डल आयोग की रिपोर्ट की लम्बे समय तक उपेक्षा की गई थी।

उच्च स्तर के अन्य पिछड़े वर्गों (जो अधिकतर भूमिधर जातियाँ हैं और भारत के अनेक क्षेत्रों में वहाँ के ग्रामीण समाज में प्रभुत्वशाली हैं) और निम्न स्तर के अन्य पिछड़े वर्गों (जो बहुत ही गरीब और सुविधावंचित लोग हैं और अक्सर सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से दलितों से बहुत भिन्न नहीं हैं) के बीच पाई जाने वाली घोर विषमताओं ने इस राजनीतिक श्रेणी की समस्याओं से निपटना बहुत कठिन बना दिया है। तथापि भूधारण और राजनीतिक प्रतिनिधित्व को छोड़कर (जहाँ उनके विधायकों तथा सांसदों की संख्या काफी बढ़ी है), बाकी सभी क्षेत्रों में अन्य पिछड़े वर्गों का प्रतिनिधित्व काफी कम है। यद्यपि उच्च स्तर के अन्य पिछड़े वर्ग ग्रामीण क्षेत्र में अपना प्रभुत्व बनाए हुए हैं, लेकिन नगरीय अन्य पिछड़े वर्गों की स्थिति काफी खराब है, यानी उनकी स्थिति ऊँची जातियों की बजाय काफी हद तक अनुसूचित जातियों और जनजातियों जैसी ही है।

प्रश्न

1. ''अन्य पिछड़े वर्ग'' का संवैधानिक आधार क्या है?
2. संवैधानिक रुप से ''अन्य पिछड़े वर्ग'' को किस तरह परिभाषित किया जाता है? इनकी सामाजिक–आर्थिक प्रस्थिति की तुलना किस जाति वर्ग से की जाती है?
3. स्वतंत्र भारत में ''अन्य पिछड़ी जाति'' के कल्याण के लिए सरकार ने क्या–क्या प्रयास किये हैं? सूची बनाइये।

आदिवासी संघर्ष

अनुसूचित जातियों की तरह ही, अनुसूचित जनजातियों को भी भारतीय संविधान द्वारा विशेष रूप से निर्धनता, शक्तिहीनता तथा सामाजिक लांछन से पीड़ित सामाजिक समूह के रूप में पहचाना गया है। जन या जनजातियों को ऐसा ''वनवासी'' समझा गया जिनके पहाड़ी या जंगली इलाकों के विशिष्ट परिस्थितियों में आवास ने उनकी आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विशेषताओं को आकार दिया। लेकिन यह पारिस्थितिक पृथकता कहीं भी पूर्ण नहीं थी, अर्थात् वे एकदम अलग–थलग या सम्पर्कहीन नहीं थे। जनजातीय समूहों का हिन्दी समाज और संस्कृति से लम्बा और निकट का नाता रहा है, जिससे ''जनजाति'' और ''जाति'' के बीच की परिसीमाएँ काफी जीर्ण–शीर्ण हो गई हैं।

आदिवासियों के मामले में, उनकी आबादी के एक इलाके से दूसरे इलाके में आने–जाने से हालात और भी उलझ गये हैं। आज, पूर्वोत्तर राज्यों को छोड़कर, देश में ऐसा कोई इलाका नहीं है जहाँ केवल जनजातीय लोग ही रहते हों। सिर्फ ऐसे इलाके हैं जहाँ जनजातीय लोगों का जमावड़ा अधिक है। यानी उनकी आबादी घनी है। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से अब तक बहुत–से गैर–जनजातीय लोग मध्य भारत के जनजातीय जिलों में जा बसे हैं और उन्हीं जिलों के जनजातीय लोग भी रोजगार की तलाश में बागानों, खानों तथा रोज़गार के अन्य स्थलों में चले गए हैं।

जिन इलाकों में जनजातीय लोगों की आबादी घनी है, वहाँ आमतौर पर उनकी आर्थिक और सामाजिक हालत, गैर–जनजातीय लोगों की अपेक्षा कहीं बदतर है। गरीबी और शोषण की जिन परिस्थितियों में आदिवासी अपना गुज़र–बसर करने के लिए मजबूर हैं, उनका ऐतिहासिक कारण यह रहा है कि औपनिवेशिक ब्रिटिश सरकार ने तेजी से जंगलों के संसाधनों को निकालना शुरु कर दिया और यह सिलसिला आगे स्वतंत्र भारत में भी जारी रहा। 19वीं सदी के परवर्ती दशकों से लेकर आगे भी औपनिवेशिक सरकार ने अधिकांश वन–प्रदेश अपने उपयोग के लिए आरक्षित कर लिए और आदिवासियों को वहाँ की उपज इकट्ठी करने और झूम खेती के लिए उनका उपयोग करने के अधिकारों से वंचित कर दिया। फिर तो इमारती लकड़ी का अधिकाधिक उत्पादन करने के लिए ही वनों का संरक्षण किया जाने लगा। इस नीति के चलते आदिवासियों से उनकी आजीविका के मुख्य आधार छीन लिए गए और इस प्रकार उनके जीवन को पहले की अपेक्षा अधिक अभावपूर्ण और असुरक्षित बना दिया गया। जब आदिवासियों से वनों की उपज और खेतों के लिए जमीन छिन गई तब वे या तो वनों का अवैध रूप से इस्तेमाल करने को मजबूर हो गए। (जिसके लिए उन्हें ''घुसपैठिए'' और चोर–उचक्के कहकर तंग और दण्डित किया जाने लगा) या फिर दिहाड़ी मजदूरी की तलाश में वन छोड़कर अन्यत्र चले गए।

प्रश्न

जनजातियों की आजीविका के मुख्य स्रोत क्या थे? इनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के खराब होने के क्या कारण रहे हैं?

1947 में भारत स्वतंत्र हो जाने के बाद, आदिवासियों की ज़िन्दगी आसान हो जानी चाहिए थी, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। इसका एक कारण तो यह था कि वनों पर सरकार का एकाधिकार जारी रहा। यहाँ तक कि वनों के सन्दोहन (कटाई आदि) में और तेजी आ गई। दूसरे, भारत सरकार द्वारा अपनाई गई पूँजी–प्रधान औद्योगिकरण की नीति को कार्यान्वित करने के लिए खनिज संसाधनों और विद्युत उत्पाद की क्षमताओं की आवश्यकता थी और ये क्षमताएँ एवं संसाधन मुख्य रूप से आदिवासी क्षेत्रों में ही स्थित थे। नयी खनन और बाँध परियोजनाओं के लिए जल्दी से आदिवासी भूमियाँ अधिगृहीत कर ली गईं। इस प्रक्रिया में लाखों आदिवासियों को पर्याप्त मुआवजे एवं समुचित पुनर्वास की व्यवस्था किए बिना विस्थापित कर दिया गया। ''राष्ट्रीय विकास'' और ''आर्थिक संवृद्धि'' के नाम पर इस कार्य को न्यायोचित ठहराया गया। इस प्रकार इन नीतियों का पालन वास्तव में एक तरह का आन्तरिक उपनिवेशवाद ही था जिसके अन्तर्गत आदिवासियों को अधीन करके उनके संसाधनों को, जिन पर वे निर्भर थे, छीन लिया गया। पश्चिमी भारत में नर्मदा नदी पर सरदार सरोवर बाँध और आन्ध्रप्रदेश में गोदावरी नदी पर पोलावरम बाँध बनाने की परियोजनाओं से लाखों आदिवासी विस्थापित हो जाएँगें, जो उन्हें पहले से अधिक अभावग्रस्त बना देगा। ये प्रक्रियाएँ लम्बे अरसे से चलती रही हैं और 1990 के दशक से तो और भी अधिक प्रबल हो गई हैं, जबसे भारत सरकार द्वारा आर्थिक उदारीकरण की नीतियाँ आधिकारिक रूप से अपनाई गई हैं। अब निगमित फर्मों के लिए आदिवासियों को विस्थापित करके बड़े–बड़े इलाके अधिगृहित करना अधिक आसान हो गया है।

प्रश्न

स्वतंत्रता के बाद भी आदिवासियों और गैर आदिवासियों के बीच सामाजिक विषमता कम होने की बजाय बढ़ी है। कारणों की सूची बनाइये।

''दलित'' शब्द की तरह ''आदिवासी'' शब्द भी राजनीतिक जागरूकता और अधिकारों की लड़ाई का सूचक बन गया है। इसका शाब्दिक अर्थ हैः ''मूल निवासी'' और इस शब्द को औपनिवेशिक सरकार और बाहरी बाशिन्दों तथा साहूकारों (ऋणदाताओं) द्वारा की जा रही घुसपैठ के विरुद्ध संघर्ष के अन्तर्गत 1930 के दशक में गढ़ा गया था। आदिवासी होने का मतलब स्वतंत्रता–प्राप्ति के समय से 'विकास परियोजनाओं' के नाम पर आदिवासियों से वनों को छिन जाने, भूमि को अधिग्रहण, बार–बार विस्थापन एवं अन्य कई और परेशानियों का सम्मिलित अनुभव है।

इन भारी विडम्बनाओं और उपेक्षाओं के बावजूद अनेक जनजातीय समूह बाहरी लोगों (जिन्हें ''दिकू'' कहा जाता है) और सरकार के विरुद्ध संघर्ष करते रहते हैं। स्वातंत्रयोत्तर भारत में आदिवासी आन्दोलनों की सर्वाधिक उल्लेखनीय उपलब्धियों में से एक है, झारखण्ड और छत्तीसगढ़ के लिए अलग राज्य का दर्जा प्राप्त करना। ये दोनों राज्य मूल रूप से क्रमशः बिहार और मध्य प्रदेश राज्यों के हिस्से थे। इस दृष्टि से आदिवासी और उनके संघर्ष दलित संघर्ष से भिन्न हैं, क्योंकि दलितों के विपरीत, आदिवासी संलग्न इलाकों में संकेन्द्रित थे, इसलिए वे अपने दिए अलग राज्य की मांग कर सके।

अभ्यास कार्य

1. समाज में हम बच्चों को किस–किस तरह के काम करते हुए देखते हैं, जिससे लगता है कि बच्चे शिक्षा से वंचित हो रहे हैं? क्या ये दृश्य एक प्रकार के सामाजिक विषमता का ही रुप है? वर्णन कीजिए।
2. 'सामाजिक विषमता एवं बहिष्कार' सामाजिक कैसे हैं। तर्क दीजिए।
3. 'समाजिक विषमता एवं बहिष्कार' को परिभाषित कीजिए। तर्क दीजिए कि यह सामाजिक कैसे है?
4. भौतिक सम्पत्ति, शैक्षणिक योग्यता तथा सामाजिक संगतियां एवं सम्पर्क सामाजिक संसाधन हैं। उदाहरणों के साथ विवेचना कीजिए।
5. लोग शिक्षा की सुविधा का लाभ लेकर कौन–कौन सी पुंजी अर्जित करने में सक्षम हो सकेंगे?
6. ''सामाजिक विषमता व्यक्तियों के बीच सहज या 'प्राकृतिक' भिन्नता की वजह से नहीं है, बल्कि यह उस समाज द्वारा उत्पन्न की जाती है जिसमें वे रहते हैं।'' कथन के पक्ष में अपना तर्क दीजिए।
7. क्या 1947 में भारत के स्वतंत्र हो जाने के बाद, आदिवासियों की जिन्दगी आसान हो गई? अपना विचार लिखिए।
8. सामाजिक पूँजी, आर्थिक पूँजी एवं सांस्कृतिक पूँजी से क्या आशय है? किसी एक पूँजी को दूसरे पूँजी में कैसे बदला जा सकता है, उदाहरण सहित समझाइये।
9. सामाजिक विषमता एवं बहिष्कार से आप क्या समझते है? समाज में हमारे आसपास यह किन–किन रुपों में दिखाई देते हैं? इसके विभिन्न स्वरूपों का वर्णन कीजिए।
10. समाज में जातियों में असमानता के क्या कारण हैं? उन्हें कैसे दूर किया जा सकता है?
11. सामाजिक विषमताओं के महत्वपूर्ण कारण के रूप में पूर्वाग्रहों का स्थान निर्धारित कीजिए?
12. आधुनिक शिक्षा व्यवस्था किस तरह सामाजिक असमानताओं को दूर करने में सहायक सिद्ध हो सकती हैं?
13. समावेशी शाला की सामाजिक विषमता के संदर्भ में क्या भूमिका हो सकती हैं?
14. क्या आप मानते हैं कि जहां सामाजिक असमानता होगी वहां आर्थिक असमानता भी होगी? अपना तर्क दीजिए।

|||||||||

इकाई 3

अध्याय – 12

भारत का संविधान : उद्देशिका

अध्याय की रूपरेखा

* सामान्य परिचय
* अध्याय के उद्देश्य
  - ° संविधान की उद्देशिका
  - ° हम भारत के लोग भारत को
  - ° समाजवादी
  - ° प्रभूत्व सम्पन्न
  - ° पंथ निरपेक्ष
  - ° गणराज्य
  - ° समता
  - ° बंधुता
  - ° लोकतंत्रात्मक
  - ° न्याय
  - ° स्वतंत्रता
  - ° बंधुता
* अभ्यास कार्य
* संदर्भ सूची

सामान्य परिचय

भारत के संविधान की 'उद्देशिका' सामान्यतया अनेक कक्षाओं के पाठ्यपुस्तकों के कवर पृष्ठ के किसी हिस्से में छपा होता है, आपने इसे कई बार पढ़ा होगा। अपने स्कूली जीवन में भी किसी अध्याय के रुप में भी पढ़ा होगा। इस बार इसे डी.एड. की पठन सामग्री के बतौर अध्ययन कीजिए। इस उद्देशिका में आए विभिन्न शब्दों जैसे प्रभुत्व सम्पन्न, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय आदि पर विचार कीजिए कि आखिर इनके क्या मायने हैं?

यह भी सोचें कि बच्चों के किसी कक्षा में, समाज में इसके सही मायने तक पहुँचने में कैसे चूक होती है? तथा इसके क्या दूरगामी प्रभाव होता है या हो सकता है?

अध्याय के उद्देश्य

1. उद्देशिका में आए शब्दों जैसे प्रभुत्व सम्पन्न, पंथ निरपेक्ष, स्वतंत्रता आदि के सार्थक अर्थ तक पहुंचना।
2. इन शब्दों की सार्थकता को अपने आसपास के परिवेश में देख पाना कि यह किस तरह से विद्यमान हैं?

नीचे दिए संविधान की उद्देशिका को ध्यान से पढ़िए। इसमें आए प्रत्येक शब्दों पर विचार कीजिए तथा अपने आसपास होने वाली घटनाओं तथा व्यवहार का अवलोकन कर इन शब्दों के सही मायने तक पहुंचने की कोशिश कीजिए। उदाहरण के लिए आप इस पर विचार कर सकते हैं कि सरकार, हर नागरिक या हम स्वयं कहां–कहां समानता का व्यवहार करते हैं तथा कहां–कहा इसका उल्लंघन करते हैं? भले ही अनजाने में ही सही। इससे हमें उद्देशिका में आए 'अवसर की समता' को समझने में मदद मिलेगी।

संविधान की उद्देशिका

हम भारत के लोग, भारत को....

भारत के संविधान का निर्माण और अधिनियमन भारत के लोगों ने अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से किया है न कि इसे किसी राजा या बाहरी आदमी ने उन्हें दिया है।

समाजवादी

समाज में संपदा सामूहिक रूप से पैदा होती है और समाज में उसका बँटवारा समानता के साथ होना चाहिए। सरकार जमीन और उद्योग–धंधों की हकदारी से जुड़े कायदे–कानून इस तरह बनाए कि सामाजिक–आर्थिक असमानताएँ कम हों।

प्रभुत्व–संपन्न

लोगों को अपने से जुड़े हर मामले में फ़ैसला करने का सर्वोच्च अधिकार है। कोई भी बाहरी शक्ति भारत की सरकार को आदेश नहीं दे सकती।

भारत का संविधान
उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण
प्रभुत्व–संपन्न, समाजवादी,
पंथ–निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक
गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को:
सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**
विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म
और उपासना की
स्वतंत्रता,
प्रतिष्ठा और अवसर की **समता,**
प्राप्त कराने के लिए,
तथा उन **सब में** व्यक्ति की गरिमा और
राष्ट्र की एकता और अखंडता
सुनिश्चित करने वाली
बंधुता बढ़ाने के लिए
दृढ़ संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में**
आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई.
(मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हजार छह विक्रमी)
को एतद्द्वारा इस **संविधान को अंगीकृत,**
अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

लोकतंत्रात्मक

सरकार का एक ऐसा स्वरूप जिसमें लोगों को समान राजनैतिक अधिकार प्राप्त रहते हैं, लोग अपने शासन का चुनाव करते हैं और उसे जवाबदेह बनाते हैं। यह सरकार कुछ बुनियादी नियमों के अनुरूप चलती है।

पंथ–निरपेक्ष

नागरिकों को किसी भी धर्म को मानने की पूरी स्वतंत्रता है। लेकिन कोई धर्म आधिकारिक नहीं है। सरकार सभी धार्मिक मान्यताओं और आचरणों को समान सम्मान देती है।

न्याय

नागरिकों के साथ उनकी जाति, धर्म और लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता।

गणराज्य

शासन का प्रमुख लोगों द्वारा चुना हुआ व्यक्ति होगा न कि किसी वंश या राजखानदान का।

स्वतंत्रता

नागरिक कैसे सोचें, किस तरह अपने विचारों को अभिव्यक्त करें और अपने विचारों पर किस तरह अमल करें इस पर कोई अनुचित पाबंदी नहीं है।

समता

कानून के समक्ष सभी लोग समान हैं। पहले से चली आ रही सामाजिक असमानताओं को समाप्त होना होगा। सरकार हर नागरिक को समान अवसर उपलब्ध कराने की व्यवस्था करें।

बंधुता

हम सभी ऐसा आचरण करें जैसे कि हम एक परिवार के सदस्य हों। कोई भी नागरिक किसी दूसरे नागरिक को अपने से कमतर न माने।

अब आप निम्नांकित परिस्थितियों पर विचार कीजिए–

1. ''सरकार किसी धर्म के निर्देशों के अनुसार काम नहीं करेगी।'' क्यों? इसके क्या मायने है?
2. ''फैसले लेने का सर्वोच्च अधिकार लोगों के पास है।'' इसके क्या मायने हैं?
3. ''लोगों को आपस में परिवार की तरह रहना चाहिए।'' इस कथन के लिए उद्देशिका में कौन सा शब्द लिखा गया है?
4. 1912 में प्रकाशित 'विवाहित महिलाओं के लिए आचरण' पुस्तक के निम्नांकित अंश को पढ़ें–

''ईश्वर ने औरत जाति को शारीरिक और भावनात्मक दोनो ही तरह से ज्यादा नाजुक बनाया है। उन्हें आत्म रक्षा के भी योग्य नहीं बनाया है। इसलिए ईश्वर ने ही उन्हें जीवन भर पुरुषों के संरक्षण में

रहने का भाग्य दिया है–कभी पिता के, कभी पति के और कभी पुत्र के। इसलिए महिलाओं को निराश होने की जगह इस बात से अनुगृहित होना चाहिए कि वे अपने आपको पुरुषों की सेवा में समर्पित कर सकती हैं।'' क्या इस अनुच्छेद में व्यक्त मूल्य भारत के संविधान की उद्देशिका के किसी शब्द से मेल खाते हैं? हां तो कैसे नहीं तो क्यों?

कुछ प्रश्न

1. नीचे दिए संयुक्त राज्य तथा दक्षिण अफ्रीका के संविधान की प्रस्तावना को पढ़कर भारत के संविधान की प्रस्तावना के साथ तुलना कीजिए, क्या– क्या समानताएं हैं–

संयुक्त राज्य के हम सभी लोग

अधिक अच्छा संघ बनाने, न्याय की स्थापना करने, घरेलू शांति बनाने, साझा सुरक्षा व्यवस्था बनाने, जन कल्याण को बढ़ावा देने तथा अपने और अपनी समृद्धि में स्वतंत्रता का लाभ लेने के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका के इस संविधान को स्थापित करते हैं और इसका अभिषेक करते हैं ।''

हम दक्षिण अफ्रीका के लोग

अपने इतिहास में हुए अन्याय को स्वीकार करते हैं, अपनी भूमि पर आजादी और न्याय के लिए संघर्ष करने में कष्ट उठाने वालों को सलाम करते हैं, अपने देश को बनाने और विकसित करने में मदद करने वालों का आदर करते हैं, और मानते हैं कि दक्षिण अफ्रीका उन सभी का है जो यहाँ रहते हैं, यहाँ की विविधता से जुड़े हैं, इसलिए स्वतंत्र रूप से चुने अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से अपने गणतंत्र के सर्वोच्च कानून के तौर पर इस संविधान को स्वीकार करते हैं जिससे पहले के विभाजन मिटें और लोकतांत्रिक मूल्यों, सामाजिक न्याय और मौलिक मानवाधिकारों पर आधारित एक समाज बन सके, एक ऐसे लोकतांत्रिक और मुक्त समाज की स्थापना हो जिसमें सरकार लोगों की इच्छा के अनुसार बने और चले तथा हर नागरिक को कानून से समान संरक्षण मिले, सभी नागरिकों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार हो और हर एक व्यक्ति की संभावनाओं को फलने–फूलने की स्वतंत्रता हो और एक संयुक्त और लोकतांत्रिक दक्षिण अफ्रीका का निर्माण हो जो राष्ट्रों के समूह में एक संप्रभु देश के तौर पर अपना उचित स्थान प्राप्त कर सके। ईश्वर हमारे लोगो की रक्षा करें।''

2. भारत के संविधान की उद्देशिका में आए संवैधानिक मूल्यों की सूची बनाइये।

   पंथ निरपेक्ष शासन से क्या तात्पर्य है – क्या शासकीय शालाओं में इस सिद्धांत का पालन होता है।

3. पंचायतें जो निर्माण कार्य कराती है यदि उसमें महिला मजदूरों को पुरुषों की तुलना में कम मजदूरी दी जाती है। यह उद्देशिका के किस मूल्य के खिलाफ है? कारण सहित समझाएं।

संदर्भ ग्रंथ–

1. सामाजिक विज्ञान, लोकतांत्रिक राजनीति – 1, कक्षा 9 के लिए राजनीति विज्ञान की पाठ्यपुस्तक, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, 2006, पृष्ठ–55
2. भारत का संविधान–एक परिचय, आचार्य डा. दुर्गा दास बसु, प्रकाशक–वाधवा एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली।
3. भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं भारतीय संविधान, वीरकेश्वर प्रसाद सिंह, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. सामाजिक विज्ञान, लोकतांत्रिक राजनीति – 1, कक्षा 9 के लिए राजनीति विज्ञान की पाठ्यपुस्तक, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, 2006, पृष्ठ–55

| | | | | | | | | |

अध्याय – 13
भारत का संविधान : मौलिक अधिकार

अध्याय की रूपरेखा

- सामान्य परिचय
- अध्याय के उद्देश्य
- मौलिक अधिकार
  - समता का अधिकार
  - स्वतंत्रता का अधिकार
  - शोषण के विरुद्ध अधिकार
  - धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार
  - सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार
  - संवैधानिक उपचारों का अधिकार
- मानवाधिकार आयोग
- अभ्यास कार्य
- संदर्भ सूची

सामान्य परिचय

भारत का संविधान– ''उद्देशिका'' नामक पठन सामग्री आपने पढ़ा, अब भारतीय नागरिकों को संविधान में प्रदत्त मौलिक अधिकारों के बारे में पढ़ें। इस पठन सामग्री में मौलिक अधिकारों का महत्व, अन्य अधिकारों से इनकी भिन्नता, दक्षिण अफ्रीका के संविधान में प्रदत्त अधिकारों से तुलना करने आदि का अवसर दिया है। इसके अलावा पाठकों को स्वयं अपनी समझ को पुख्ता करने का भी अवसर प्रदान किया गया है।

इस पठन सामग्री को पढ़ने के पूर्व सर्वप्रथम मौलिक अधिकारों के बारे में जो जानते हैं उसका एक नोट तैयार करें, बताएँ कि संविधान की उद्देशिका के अनुसार समाज बनाने में नागरिकों को किस–किस प्रकार के अधिकार मिलने चाहिए?

अध्याय के उद्देश्य

1. भारतीय संविधान में प्रदत्त मौलिक अधिकारों को विभिन्न उदाहरणों और परिस्थितियों के उद्धरण से समझना।
2. मौलिक अधिकारों के हनन होने पर उपचार के तरीकों से परिचित होना।

पृष्ठभूमि– स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान, स्वतंत्रता आन्दोलन के नेताओं ने इन अधिकारों का महत्व समझा था और माँग की थी कि अँग्रेज़ शासकों को जनता के अधिकारों का आदर करना चाहिए। 1928 में ही मोतीलाल नेहरू समिति ने ''अधिकारों के एक घोषणापत्र'' की माँग उठाई थी। अतः यह स्वाभाविक था कि स्वतंत्रता के बाद

भारत का संविधान, सिद्धान्त और व्यवहार, कक्षा 11वीं के लिए राजनीति विज्ञान की पुस्तक, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, 2006, पृष्ठ– 28 से 42.

संविधान निर्माण के दौरान संविधान में अधिकारों का समावेश करने और उन्हें सुरक्षित करने पर सभी की राय एक थी। संविधान में उन अधिकारों को सूचीबद्ध किया गया जिन्हें सुरक्षा देनी थी और उन्हें 'मौलिक अधिकारों' की संज्ञा दी गई ।

मौलिक अधिकार

जैसा कि नाम से स्पष्ट है ''मौलिक अधिकार'' अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं और इसीलिए उन्हें संविधान में सूचीबद्ध किया गया है और उनकी सुरक्षा के लिए विशेष प्रावधान बनाए गए हैं। ये अधिकार इतने महत्वपूर्ण हैं कि संविधान स्वयं यह सुनिश्चित करता है कि सरकार भी उनका उल्लंघन न कर सके।

मौलिक अधिकार हमारे अन्य अधिकारों से भिन्न हैं। जहाँ साधारण कानूनी अधिकारों को सुरक्षा देने और लागू करने के लिए साधारण कानूनों का सहारा लिया जाता है, वहीं मौलिक अधिकारों की गारन्टी और उनकी सुरक्षा स्वयं संविधान करता है। सामान्य अधिकारों को संसद कानून बना कर परिवर्तित कर सकती है लेकिन मौलिक अधिकारों में परिवर्तन के लिए संविधान में संशोधन करना पड़ता है। इसके अलावा सरकार का कोई भी अंग मौलिक अधिकारों के विरुद्ध कोई कार्य नहीं कर सकता।

इस अध्याय में हम आगे पढ़ेंगे कि सरकार के कार्यों से मौलिक अधिकारों के हनन को रोकने की शक्ति और इसका उत्तरदायित्व न्यायपालिका के पास है। विधायिका या कार्यपालिका के किसी कार्य या निर्णय से यदि मौलिक अधिकारों का हनन होता है या उन पर अनुचित प्रतिबन्ध लगाया जाता है तो न्यायपालिका उसे अवैध घोषित कर सकती है। लेकिन मौलिक अधिकार निरंकुश या असीमित अधिकार नहीं हैं। सरकार मौलिक अधिकारों के प्रयोग पर 'औचित्यपूर्ण' प्रतिबन्ध लगा सकती है।

कुछ प्रश्न

1. निम्नलिखित में कौन मौलिक अधिकारों का सबसे सटीक वर्णन है?

- किसी व्यक्ति को प्राप्त समस्त अधिकार
- कानून द्वारा नागरिक को प्रदत्त समस्त अधिकार
- संविधान द्वारा प्रदत्त और सुरक्षित समस्त अधिकार
- संविधान द्वारा प्रदत्त वे अधिकार जिन पर कभी प्रतिबंध नहीं लगाया जा सकता।

2. सरकार मौलिक अधिकारों के प्रयोग पर 'औचित्यपूर्ण' प्रतिबन्ध लगा सकती है। विचार करें ये प्रतिबंध किस तरह के हो सकते हैं और किन परिस्थितियों में सरकार इस पर प्रतिबंध लगा सकती है?

दक्षिण अफ्रीका के संविधान में अधिकारों का घोषणापत्र

दक्षिण अफ्रीका का संविधान दिसम्बर 1996 में लागू हुआ। इसे तब बनाया और लागू किया गया जब रंगभेद वाली सरकार के हटने के बाद दक्षिण अफ्रीका गृहयुद्ध के खतरे से जूझ रहा था। दक्षिण अफ्रीका के संविधान के अनुसार ''उसके अधिकारों का घोषणापत्र दक्षिण अफ्रीका में प्रजातंत्र की आधारशिला है।'' यह नस्ल, लिंग, गर्भधारण, वैवाहिक स्थिति, जातीय या सामाजिक मूल, रंग, आयु अपंगता, धर्म, अन्तरात्मा, आस्था, संस्कृति, भाषा और जन्म के आधार पर भेदभाव वर्जित करता है। यह नागरिकों को सम्भवतः सबसे ज़्यादा व्यापक अधिकार देता है। संवैधानिक अधिकारों को एक विशेष संवैधानिक न्यायालय लागू करता है।

दक्षिण अफ्रीका के संविधान में सम्मिलित कुछ प्रमुख अधिकार निम्न हैं –

1. गरिमा का अधिकार
2. निजता का अधिकार
3. श्रम–सम्बन्धी समुचित व्यवहार का अधिकार
4. स्वास्थ्यप्रद पर्यावरण और पर्यावरण संरक्षण का अधिकार
5. समुचित आवास का अधिकार
6. स्वास्थ्य सुविधाएँ, भोजन, पानी और सामाजिक सुरक्षा का अधिकार
7. बाल अधिकार
8. बुनियादी और उच्च शिक्षा का अधिकार
9. सांस्कृतिक, धार्मिक और भाषाई समुदायों का अधिकार
10. सूचना प्राप्त करने का अधिकार

कुछ प्रश्न

भारतीय संविधान के मौलिक अधिकारों की तुलना दक्षिण अफ्रीका के संविधान में दिए गए अधिकारों के घोषणापत्र से करें। उन अधिकारों की एक सूची बनाएँ जो –

1. दोनों संविधानों में पाए जाते हों।
2. दक्षिण अफ्रीका में हों पर भारत में नहीं।
3. दक्षिण अफ्रीका के संविधान में स्पष्ट रूप से दिए गए हैं पर भारतीय संविधान में निहित माने जाते हैं।

1. समता का अधिकार – निम्न दो स्थितियों पर विचार करें। ये काल्पनिक स्थितियाँ हैं। पर ऐसी बातें होती रहती हैं और आगे भी हो सकती हैं। क्या आपको इनमें मौलिक अधिकारों का उल्लंघन दिखाई देता है?

1. स्वदेश कुमार अपने गाँव गया। उसके साथ उसका एक दोस्त भी था। गाँव के एक होटल में उन्हें चाय पीने की इच्छा हुई। दुकानदार स्वदेश कुमार को जानता था, पर उसके मित्र की जाति जानने के लिए उसने उसका नाम पूछा। उसके बाद दुकानदार ने स्वदेश कुमार को तो एक सुन्दर कप में चाय दी, लेकिन उसके दोस्त को कुल्हड़ में चाय दी क्योंकि वह दलित था।

2. टेलीविजन के एक चैनल में समाचार पढ़ने वाले कुल दस सदस्यों में से केवल चार को यह आदेश दिया गया कि आगे से वे समाचार न पढ़ें। वे सभी महिलाएँ थीं। इसका कारण यह बताया गया कि वे सभी 45 वर्ष की उम्र को पार कर चुकी हैं लेकिन इस अवस्था को पार कर चुके दो पुरुषों पर यह प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया।

प्रश्न

उपरोक्त परिस्थितियां भेदभाव के स्पष्ट उदाहरण हैं। एक में जाति और दूसरे में लिंग के आधार पर भेदभाव किया गया। आपकी राय में क्या ऐसा भेदभाव उचित है?

समता का अधिकार और सार्वजनिक स्थल

''समता का अधिकार'' ऐसे और अन्य प्रकार के भेदभाव को समाप्त करने का प्रयास करता है। यह

सार्वजनिक स्थलों – जैसे दुकान, होटल, मनोरंजन स्थल, कुआँ, स्नान घाट और पूजास्थलों में समानता के आधार पर प्रवेश देता है। जाति, नस्ल, रंग, लिंग, धर्म या जन्मस्थान के आधार पर प्रवेश में कोई भेदभाव नहीं हो सकता। यह उपर्युक्त आधारों पर लोक सेवाओं में भी कोई भेदभाव वर्जित करता है। यह अधिकार बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि पहले हमारे समाज में इन जगहों पर सबके साथ समान बर्ताव नहीं होता था।

छुआछूत की प्रथा असमानता का सबसे भद्दा रूप है। समता के अधिकार के द्वारा इसे समाप्त कर दिया गया। इसी अधिकार के अंतर्गत यह भी व्यवस्था की गई है कि केवल उन लोगों को छोड़कर जिन्होंने सेना या शिक्षा के क्षेत्र में गौरवपूर्ण उपलब्धि प्राप्त की है, राज्य किसी भी व्यक्ति को कोई उपाधि प्रदान नहीं करेगा। इस प्रकार समता का अधिकार भारत को एक सच्चे लोकतंत्र के रूप में स्थापित करने का प्रयास करता है। जिसमें सभी नागरिकों को समान प्रतिष्ठा व गरिमा प्राप्त हो सके।

क्रियाकलाप

1. उन स्थानों या व्यवहारों को चिह्नित कीजिए जहां आपको लगता है कि समाज में अब पहले की तुलना में समानता का व्यवहार होने लगा है अर्थात परिवर्तन हुआ है।

2. उन स्थानों या व्यवहारों को चिह्नित कीजिए जहां आपको लगता है कि समाज में अब भी असमानता का व्यवहार होता है।

प्रश्न

3. आपने अपने संविधान की प्रस्तावना जरूर पढ़ी होगी। यह समानता को कैसे परिभाषित करता है? अपने शब्दों में लिखिए।

आप पाएँगे कि प्रस्तावना में समानता के बारे में दो बातों का उल्लेख हैः प्रतिष्ठा की समानता और अवसर की समानता। अवसर की समानता का अर्थ है कि समाज के सभी वर्गों को समान अवसर मिले। लेकिन जब समाज में अनेक सामाजिक विषमताएँ व्याप्त हों, तो वहाँ समान अवसरों का क्या मतलब हो सकता है? संविधान स्पष्ट करता है कि सरकार बच्चों, महिलाओं तथा सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों की बेहतरी के लिए विशेष योजनाएँ तथा निर्णय लागू कर सकती है। आपने नौकरियों और स्कूलों में प्रवेश के लिए ''आरक्षण'' के बारे में अवश्य सुना होगा। आपको सम्भवतया आश्चर्य भी हुआ होगा कि समानता के सिद्धान्त का पालन करने के बावजूद यहाँ ''आरक्षण'' क्यों है?

अनुच्छेद 16(4) – ''इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को पिछड़े हुए नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों या पदों के आरक्षण का प्रावधान करने से नहीं रोकेगी।''

वास्तव में संविधान का अनुच्छेद 16(4) साफ–साफ कहता है कि आरक्षण जैसी नीति को समानता के अधिकार के उल्लंघन के रूप में नहीं देखा जा सकता। यदि आप संविधान देखें तो आप पाएँगे कि ''अवसर की समानता'' के अधिकार को पूरा करने के लिए यह ज़रूरी है।

प्रश्न

आपके विचार में समानता के अधिकार को पूरा करने के लिए सरकार को और क्या–क्या करना चाहिए?

आप एक न्यायाधीश हैं –

आप को उड़ीसा के पुरी ज़िले के दलित समुदाय के एक सदस्य हादिबन्धु का एक पोस्टकार्ड मिलता है। उसमें लिखा है कि उसके समुदाय के पुरुषों ने उस प्रथा का पालन करने से इंकार कर दिया, जिसके अनुसार उन्हें उच्च जातियों के विवाहोत्सव में दूल्हे और सभी मेहमानों के पैर धोने पड़ते थे। इसके बदले उस समुदाय की चार महिलाओं को पीटा गया और उन्हें निर्वस्त्र करके घुमाया गया। पोस्टकार्ड लिखने वाले के अनुसार ''हमारे बच्चे शिक्षित हैं और वे उच्च जातियों के पुरुषों के पैर धोने, विवाह में भोज के बाद जूठन हटाने और बर्तन माँजने का परम्परागत काम करने को तैयार नहीं हैं।''

प्रश्न

यह मानते हुए कि उपर्युक्त तथ्य सही है, आपको निर्णय करना है कि क्या इस घटना में मौलिक अधिकारों का उल्लघंन हुआ है? आप इसमें सरकार को क्या करने का आदेश देंगे?

''अनुच्छेद 21 – जीवन और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण किसी व्यक्ति को, उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा अन्यथा नहीं।''

2. स्वतंत्रता का अधिकार – किसी भी लोकतंत्र में समता और स्वतंत्रता सबसे महत्वपूर्ण अधिकार हैं। इनमें से एक के बिना दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती। स्वतंत्रता का अर्थ है चिन्तन, अभिव्यक्ति और कार्य करने की स्वतंत्रता। लेकिन स्वतंत्रता का यह अर्थ नहीं है कि हम जैसा चाहें वैसा करने लगें। यदि ऐसा करने की इजाजत दे दी जाए तो बहुत सारे लोग अपनी स्वतंत्रता का आनन्द उठाने से वंचित हो जाएँगे। अतः स्वतंत्रता को इस प्रकार परिभाषित किया जाता है कि बिना किसी अन्य की स्वतंत्रता को नुकसान पहुँचाएँ और बिना कानून–व्यवस्था को ठेस पहुँचाए, प्रत्येक व्यक्ति अपनी–अपनी स्वतंत्रता का आनन्द ले सके।

जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार

स्वतंत्रता के सबसे महत्वपूर्ण अधिकारों में ''जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार'' है। किसी भी नागरिक को कानून द्वारा निर्धारित प्रक्रिया का पालन किये बिना उसके जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जा सकता। इसका अर्थ है कि किसी भी व्यक्ति को बिना कारण बताए गिरतार नहीं किया जा सकता। गिरतार किए जाने पर उस व्यक्ति को अपने पसन्दीदा वकील के माध्यम से अपना बचाव करने का अधिकार है। इसके अलावा, पुलिस के लिए यह आवश्यक है कि वह अभियुक्त को 24 घण्टे के अन्दर निकटतम न्यायाधीश के सामने पेश करें। न्यायाधीश ही इस बात का निर्णय करेगा कि गिरतारी उचित है या नहीं।

कुछ प्रश्न–

निम्नलिखित स्थितियों को पढ़ें। प्रत्येक स्थिति के बारे में बताएँ कि किस मौलिक अधिकार का उपयोग या उल्लंघन हो रहा है और कैसे?

1 राष्ट्रीय एयरलाइन के चालक–परिचालक दल (Cabin-Crew) के ऐसे पुरुषों को जिनका वजन ज्यादा है– नौकरी में तरक्की दी गई लेकिन उनकी ऐसी महिला सहकर्मियों को, दंडित किया गया जिनका वजन बढ़ गया था।

2 एक निर्देशक एक डॉक्यूमेंट्री फिल्म बनाता है जिसमें सरकारी नीतियों की आलोचना है।

3 एक बड़े बाँध के कारण विस्थापित हुए लोग अपने पुनर्वास की माँग करते हुए रैली निकालते हैं।

4 आंध्र–सोसायटी आंध्र प्रदेश के बाहर तेलगु माध्यम के विद्यालय चलाती है।

इस अधिकार द्वारा किसी व्यक्ति के जीवन को मनमाने ढंग से समाप्त करने के विरुद्ध ही गारण्टी नहीं

मिलती बल्कि इसका दायरा और भी व्यापक है। सर्वोच्च न्यायालय के पिछले अनेक निर्णयों द्वारा इस अधिकार का दायरा बढ़ा है। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार इसमें शोषण से मुक्त और मानवीय गरिमा से पूर्ण जीवन जीने का अधिकार अन्तर्निहित है। न्यायालय ने माना कि 'जीवन के अधिकार' का अर्थ है कि व्यक्ति को आश्रय और आजीविका का भी अधिकार हो क्योंकि इसके बिना कोई व्यक्ति जिन्दा नहीं रह सकता।

कियाकलाप

1. पता करें कि सरकार द्वारा आजीविका और आश्रय का अधिकार सुनिश्चित करने के लिए अब तक क्या–क्या कदम उठाए गए हैं?

2. 'महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी अधिनियम' के उद्देश्यों के बारे में जानकारी पता करें। क्या आपको लगता है कि यह अधिनियम लोगों को स्वतंत्रता का अधिकार दिलाने की दिशा में उठाया गया एक कदम है?

निवारक नज़रबन्दी

सामान्यतः किसी व्यक्ति को अपराध करने पर गिरतार किया जाता है। पर इसके अपवाद भी हैं। कभी–कभी किसी व्यक्ति को इस आशंका पर भी गिरतार किया जा सकता है, कि वह कोई गैर–कानूनी कार्य करने वाला है और फिर उसे वर्णित प्रक्रिया का पालन किए बिना ही कुछ समय के लिए जेल भेजा जा सकता है। इसे ही निवारक नज़रबन्दी कहते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि सरकार को लगे कि कोई व्यक्ति देश की कानून–व्यवस्था या शान्ति और सुरक्षा के लिए खतरा बन सकता है, तो वह उसे बन्दी बना सकती है। लेकिन निवारक नज़रबन्दी अधिकतम 3 महीने के लिए ही हो सकती है। तीन महीने के बाद ऐसे मामले समीक्षा के लिए एक सलाहकार बोर्ड के समक्ष लाए जाते हैं।

क्या इसका मतलब यह है कि कुछ ऐसे मामले भी हो सकते हैं जिनमें कानून एक आदमी की ज़िन्दगी ले सकता है? यह तो अज़ीब बात हैं। क्या आपको कोई ऐसा मामला याद आता हैं?

प्रत्यक्ष रूप से निवारक नज़रबन्दी सरकार के हाथ में असामाजिक तत्वों और राष्ट्र विद्रोही तत्वों से निपटने का एक हथियार है। अनेक लोग यह मानते हैं कि इस कानून में कुछ ऐसे सुरक्षात्मक उपाय किए जाने चाहिए जिससे सामान्य नागरिकों के विरूद्ध अन्य किसी कारण से इसके दुरूपयोग को रोका जा सके। वास्तव में जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकारों तथा निवारक नज़रबन्दी के प्रावधानों में परस्पर विरोधाभास है।

प्रश्न

एक मोहल्ले में कुछ जाति के लोगों को यह कहकर बसने नहीं दिया गया कि वे मांस खाते हैं।

यह उनके किस मौलिक अधिकार का हनन है?

अन्य स्वतंत्रताएँ

आप देख सकते हैं कि ''स्वतंत्रता के अधिकार'' के अन्तर्गत कुछ और अधिकार भी हैं। पर इनमें से कोई भी अधिकार निरंकुश नहीं है। इनमें से प्रत्येक के प्रयोग पर सरकार कुछ प्रतिबन्ध लगा सकती है।

उदाहरण के लिए ''भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता''' पर कानून–व्यवस्था, शान्ति और नैतिकता के आधार पर प्रतिबन्ध लगाए जा सकते हैं। सभा और सम्मेलन करने की स्वतंत्रता का प्रयोग करने पर यह शर्त

सोमनाथ लाहिड़ी, संविधान सभा वाद–विवाद, खण्ड तीन पृष्ठ 404

है कि वह शान्तिपूर्ण तथा बिना हथियारों के हो। सरकार किसी क्षेत्र में पाँच या पाँच से अधिक लोगों की सभा पर प्रतिबन्ध लगा सकती है। प्रशासन इस शक्ति का आसानी से दुरूपयोग कर सकता है। वह सरकार के किसी कार्य या नीति के विरूद्ध जनता को न्यायोचित विरोध–प्रदर्शन करने की अनुमति देने से मना कर सकता है। लेकिन जनता अपने अधिकारों के प्रति सजग ओर सतर्क हो और प्रशासन के ऐसे कार्यों का विरोध करे तो इसके दुरूपयोग की सम्भावना कम हो जाती है। संविधान सभा में भी कुछ सदस्यों ने अधिकारों को प्रतिबन्धित करने पर अपना असन्तोष जताया था।

''मैं समझता हूँ कि इनमें से अनेक मौलिक अधिकारों को एक सिपाही के दृष्टिकोण से बनाया गया है। आप देखेंगे कि काफी कम अधिकार दिए गए हैं और प्रत्येक अधिकार के बाद एक उपबन्ध जोड़ा गया है। लगभग प्रत्येक अनुच्छेद के बाद एक उपबन्ध है जो उस अधिकार को पूरी तरह से वापस ले लेता है।.... मौलिक अधिकारों की हमारी क्या अवधारणा होनी चाहिए?.... हम उस प्रत्येक अधिकार को संविधान में पाना चाहते हैं जो हमारी जनता चाहती है।'' –

आरोपी या अभियुक्त के अधिकार

हमारा संविधान इसका भी प्रावधान करता है कि जिन लोगों पर विभिन्न अपराधों के आरोप हैं उन्हें भी पर्याप्त सुरक्षा मिले। हम प्रायः ऐसा विश्वास कर लेते हैं कि जिस पर भी किसी अपराध का आरोप लगता है वह दोषी है। लेकिन जब तक न्यायालय किसी व्यक्ति को किसी अपराध का दोषी नहीं ठहराता तब तक उसे दोषी नहीं माना जा सकता। यह भी ज़रूरी है कि किसी अपराध के आरोपी को स्वयं को बचाने का समुचित अवसर मिले। न्यायालय में निष्पक्ष मुकदमे के लिए संविधान तीन अधिकारों की व्यवस्था करता है–

1. किसी भी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए एक बार से ज़्यादा सज़ा नहीं मिलेगी,

2. कोई भी कानून किसी भी ऐसे कार्य को जो उक्त कानून के लागू होने से पहले किया गया हो, अपराध घोषित नहीं कर सकता।

3. किसी भी व्यक्ति को स्वयं अपने विरूद्ध साक्ष्य देने के लिए नहीं कहा जा सकेगा।

कुछ प्रश्न

क्या आप मानते हैं कि निम्न परिस्थितियाँ स्वतंत्रता के अधिकार पर प्रतिबन्ध की माँग करती हैं? अपने उत्तर के समर्थन में तर्क दें –

(क) शहर में साम्प्रदायिक दंगों के बाद लोग शान्ति मार्च के लिए एकत्र हुए हैं।

(ख) दलितों को मन्दिर में प्रवेश की मनाही है। मन्दिर में जबर्दस्ती प्रवेश के लिए एक जुलूस का आयोजन किया जा रहा है।

(ग) सैकड़ों आदिवासियों ने अपने परम्परागत अस्त्र तीर–कमान और कुल्हाड़ी के साथ सड़क जाम कर रखा है। वे माँग कर रहे हैं कि एक उद्योग के लिये अधिग्रहीत खाली जमीन उन्हें लौटाई जाए

(घ) किसी जाति की पंचायत की बैठक यह तय करने के लिए बुलाई गई कि जाति से बाहर विवाह करने के लिए नवदंपति को क्या दण्ड दिया जाए।

3. शोषण के विरूद्ध अधिकार

अपने देश में करोड़ों लोग गरीब, दलित–शोषित और वंचित हैं या लोगों के द्वारा उनका शोषण हो

सकता है। ऐसे शोषण को हम अपने देश में ''बेगार'' या ''बन्धुआ–मज़दूरी'' के रूप में जानते हैं। इसी प्रकार के एक शोषण में लोगों को ''दास'' के रूप में खरीदा और बेचा जाता था। इन दोनों प्रकार के शोषणों पर संविधान प्रतिबन्ध लगाता है। पुराने समय में ज़मींदार, सूदखोर और अन्य धनी लोग ''बन्धुआ मज़दूरी'' करवाते थे। देश में अभी भी, खास तौर से भट्ठे के काम में बन्धुआ–मज़दूरी करवाई जाती है। अब इसे अपराध घोषित कर दिया गया है और यह कानून द्वारा दण्डनीय है।

इस फोटो में आपको किस मौलिक अधिकार का उल्लंघन दिखाई देता हैं?

संविधान के अनुसार 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को किसी कारखाने, खदान या अन्य किसी खतरनाक काम में नौकरी नहीं दी जा सकती। इस प्रकार बाल श्रम को अवैध बनाकर और शिक्षा को बच्चों का मौलिक अधिकार बनाकर शोषण के विरुद्ध संवैधानिक अधिकार को और अर्थपूर्ण बनाया गया है।

1. उपरोक्त फोटो में आपको कौन से मौलिक अधिकार का उल्लंघन दिखाई देता है? इसी तरह के दृश्य आपको और कहां–कहां देखने को मिलता है? सूची बनाइये।

2. शिक्षा को बच्चों का मौलिक अधिकार बनाने से शोषण के विरुद्ध अधिकार को कैसे बल मिला होगा? विचार कीजिए।

3. पंचायतें जो निर्माण कार्य कराती है यदि उसमें महिला मजदूरों को पुरुषों की तुलना में कम मजदूरी दी जाती है, तो यह उनके किस–किस मौलिक अधिकारों का हनन है कारण सहित समझाएं।

4. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार

अपने संविधान के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपनी पसन्द के धर्म का पालन करने का अधिकार है। इस स्वतंत्रता को लोकतंत्र का प्रतीक माना जाता है। इतिहास गवाह है कि दुनिया के अनेक देशों के शासक और राजाओं ने अपने–अपने देश की जनता को धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार नहीं दिया। शासकों से अलग धर्म को मानने वाले लोगों को या तो मार डाला गया या विवश किया गया कि वे शासकों द्वारा मान्य धर्म को स्वीकार कर लें। अतः लोकतंत्र में अपनी इच्छा के अनुसार धर्म पालन करने की स्वतंत्रता को हमेशा एक बुनियादी सिद्धान्त के रूप में स्वीकार किया गया है।

आस्था और प्रार्थना की स्वतंत्रता

भारत में प्रत्येक व्यक्ति को अपना धर्म चुनने और उसका पालन करने का अधिकार है। धार्मिक स्वतंत्रता में अन्तःकरण की स्वतंत्रता भी समाहित है। इसका अर्थ है कि कोई व्यक्ति किसी भी धर्म को चुन सकता है या यह निर्णय ले सकता है कि वह किसी भी धर्म का पालन नहीं करेगा। धार्मिक स्वतंत्रता का अर्थ यह भी है कि सभी व्यक्तियों को अपने धर्म को अबाध रूप से मानने, उसके अनुसार आचरण करने और प्रचार करने का समान हक होगा। लेकिन धार्मिक स्वतंत्रता पर कुछ प्रतिबन्ध भी है। लोक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य के आधार पर सरकार धार्मिक स्वतंत्रता पर प्रतिबन्ध लगा सकती है। धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार असीमित नहीं है। कुछ सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए सरकार धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप कर सकती है। उदाहरण के तौर पर सरकार ने सती प्रथा, एक से अधिक विवाह और मानव–बलि जैसी कुप्रथाओं पर प्रतिबन्ध के लिए अनेक कदम उठाए हैं। ऐसे प्रतिबन्धों को धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार में हस्तक्षेप नहीं माना जा सकता।

धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार पर नियंत्रण लगाने से विभिन्न धर्म के मानने वालों और सरकार के बीच अक्सर ही तनावपूर्ण स्थितियाँ पैदा होती हैं। जब भी किसी धार्मिक समुदाय के कुछ क्रियाकलापों पर सरकार नियंत्रण लगाती है, तो उस समुदाय के लोग यह महसूस करते हैं कि यह उनके धर्म में एक तरह का हस्तक्षेप है।

प्रश्न

धार्मिक स्वतंत्रता में अन्तःकरण की स्वतंत्रता भी समाहित है। इसका क्या आशय है?

एक अन्य कारण से भी धार्मिक स्वतंत्रता राजनीतिक विवाद का विषय बन जाती है। संविधान ने सभी को अपने धर्म का प्रचार करने की स्वतंत्रता दी है। इसमें लोगों को एक धर्म से दूसरे धर्म में परिवर्तन के लिए मनाने का अधिकार भी शामिल है। लेकिन कुछ लोग धर्म परिवर्तन का विरोध करते हैं। उनका मानना है कि धर्मान्तरण भय या लालच के आधार पर कराए जाते हैं। संविधान भी जबरन धर्म–परिवर्तन की इजाजत नहीं देता, वह हमें केवल अपने धर्म के बारे में सूचनाएँ प्रसारित करने का अधिकार देता है जिससे हम दूसरों को अपने धर्म की ओर आकर्षित कर सकें।

सभी धर्मों की समानता

विभिन्न धर्मावलम्बियों का देश होने के कारण यह ज़रूरी है कि सरकार विभिन्न धर्मों के साथ समानता का बर्ताव करे। इसका अर्थ यह भी है कि सरकार किसी धर्म–विशेष का पक्ष नहीं लेगी। भारत का कोई राजकीय धर्म नहीं है। भारत के राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, न्यायाधीश या अन्य किसी सार्वजनिक पद पर कार्य करने के लिए हमारा किसी धर्म–विशेष का सदस्य होना ज़रूरी नहीं है। समानता के अधिकार के अन्तर्गत भी हमने देखा कि सभी नागरिकों को इस बात की गारण्टी दी गई है कि सरकारी नौकरियों में नियुक्ति के सम्बन्ध में सरकार धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं करेगी। राज्य द्वारा संचालित शैक्षणिक संस्थाओं में न तो किसी धर्म का प्रचार किया जाएगा, न ही कोई धार्मिक शिक्षा दी जाएगी और न ही उसमें प्रवेश के लिए किसी धर्म को वरीयता दी जाएगी। इन प्रावधानों से धर्म निरपेक्षता को जीवन और बल मिलता है।

खुद करें खुद सीखें

1. अपने गाँव या शहर में होने वाली सार्वजनिक धार्मिक गतिविधियों की सूची बनाएँ।

2. इनमें से कौन–कौन सी गतिविधियाँ धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार का प्रयोग दिखलाती हैं?

3. इस पर विचार करें कि यदि आपके क्षेत्र में लोगों को यह अधिकार नहीं होता, तो क्या होता?

5. सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार

जब हम भारतीय समाज की बात करते हैं तो हमारे मन में विविधता की छवि उभरती है। भारतीय समाज कोई समरूप समाज नहीं है वरन् उसमें काफी विविधता है। ऐसे विविधता भरे समाज में कुछ समुदाय संख्या में छोटे और कुछ बड़े हैं। क्या ऐसी स्थिति में अल्पसंख्यक समुदाय को बहुसंख्यक समुदाय की संस्कृति स्वीकार करनी पड़ेगी?

''बहुसंख्यकों पर एक गम्भीर उत्तरदायित्व है कि वे देखें कि अल्पसंख्यक सुरक्षित महसूस करें।.... केवल एक धर्म निरपेक्ष शासन में ही अल्पसंख्यक सुरक्षित रहेंगे। उनके लिए राष्ट्रवादी होना लाभकारी है। बहुसंख्यकों को अपने राष्ट्रीय दृष्टिकोण का दिखावा नहीं करना चाहिए।..... उन्हें स्वयं को अल्पसंख्यकों की स्थिति में रखकर उनकी आशंकाओं को समझना चाहिए। सुरक्षा की सभी माँगें उसी आशंका पर आधारित हैं, जो अल्पसंख्यकों के मन में अपनी भाषा, लिपि और नौकरियों के अवसर के सम्बन्ध में हैं।''

हमारा संविधान मानता है कि ''विविधता'' हमारे समाज की मज़बूती है। अतः अल्पसंख्यकों का अपनी संस्कृति को बनाए रखने का अधिकार भी एक मौलिक अधिकार है। किसी समुदाय को केवल धर्म के आधार पर नहीं बल्कि भाषा और संस्कृति के आधार पर भी अल्पसंख्यक माना जाता है। अल्पसंख्यक वह समूह है जिसकी अपनी एक भाषा या धर्म होता है और देश के किसी एक भाग में या पूरे देश में संख्या के आधार पर वह किसी अन्य समूह से छोटा होता है। ऐसे अल्पसंख्यक समूहों को अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति को सुरक्षित रखने और उसे विकसित करने का अधिकार है।

भाषाई या धार्मिक अल्पसंख्यक अपने शिक्षण संस्थान खोल सकते हैं। ऐसा करके वे अपनी संस्कृति को सुरक्षित और विकसित कर सकते हैं। शिक्षण संस्थाओं को वित्तीय अनुदान देने के मामले में सरकार इस आधार पर भेदभाव नहीं करेगी कि उस शिक्षण संस्थान का प्रबन्ध किसी अल्पसंख्यक समुदाय के हाथ में है।

कुछ प्रश्न

निम्नलिखित में कौन सा कथन सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकारों की सही व्याख्या है?

1. शैक्षिक–संस्था खोलने वाले अल्पसंख्यक वर्ग के ही बच्चे उस संस्थान में पढ़ाई कर सकते हैं।

2. सरकारी विद्यालयों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि अल्पसंख्यक–वर्ग के बच्चों को उनकी संस्कृति और धर्म–विश्वासों से परिचित कराया जाए।

3. भाषाई और धर्मिक–अल्पसंख्यक अपने बच्चों के लिए विद्यालय खोल सकते हैं और उनके लिए इन विद्यालयों को आरक्षित कर सकते हैं।

4. भाषाई और धर्मिक–अल्पसंख्यक यह माँग कर सकते हैं कि उनके बच्चे उनके द्वारा संचालित शैक्षणिक–संस्थाओं के अतिरिक्त किसी अन्य संस्थान में नहीं पढ़ेंगे।

6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार

इस बात से हर कोई सहमत होगा कि हमारे संविधान में मौलिक अधिकारों की सूची बड़ी आकर्षक है। लेकिन अधिकारों की विस्तृत सूची देना ही काफी नहीं। कोई ऐसा तरीका होना चाहिए जिससे उन्हें व्यवहार में लाया जा सके और उल्लंघन होने पर अधिकारों की रक्षा की जा सके।

''संवैधानिक उपचारों का अधिकार'' वह साधन है जिसके द्वारा ऐसा किया जा सकता है। डॉ. अम्बेडकर ने इस अधिकार को ''संविधान का हृदय और आत्मा'' की संज्ञा दी। इसके अन्तर्गत हर नागरिक को यह अधिकार प्राप्त है कि वह अपने मौलिक अधिकारों के उल्लंघन की स्थिति में सीधे उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए सरकार को आदेश और निर्देश दे सकते हैं। न्यायालय कई प्रकार के विशेष आदेश जारी करते हैं। जिन्हें प्रादेश या रिट कहते हैं।

सरदार हुकुम सिंह, संविधान सभा वाद–विवाद खण्ड आठ, पृष्ठ. 322

- **बन्दी प्रत्यक्षीकरण–** बन्दी प्रत्यक्षीकरण के द्वारा न्यायालय किसी गिरफ्तार व्यक्ति को न्यायालय के सामने प्रस्तुत करने का आदेश देता है। यदि गिरफ्तारी का तरीका या कारण गैरकानूनी या असन्तोषजनक हो, तो न्यायालय गिरफ्तार व्यक्ति को छोड़ने का आदेश दे सकता है।

• **परमादेश–** यह आदेश तब जारी किया जाता है जब न्यायालय को लगता है कि कोई सार्वजनिक पदाधिकारी अपने कानूनी और संवैधानिक दायित्वों का पालन नहीं कर रहा है और इससे किसी व्यक्ति का मौलिक अधिकार प्रभावित हो रहा है।

• **निषेध आदेश–** जब कोई निचली अदालत अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण करके किसी मुकदमे की सुनवाई करती है तो ऊपर की अदालत (उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय) उसे ऐसा करने से रोकने के लिए ''निषेध आदेश'' जारी करती है।

• **अधिकार पृच्छा–** जब न्यायालय को लगता है कि कोई व्यक्ति ऐसे पद पर नियुक्त हो गया है जिस पर उसका कोई कानूनी हक नहीं है तब न्यायालय 'अधिकार पृच्छा आदेश' के द्वारा उसे उस पद पर कार्य करने से रोक देता है।

• **उत्प्रेषण रिट–** जब कोई निचली अदालत या सरकारी अधिकारी बिना अधिकार के कोई कार्य करता है, तो न्यायालय उसके समक्ष विचाराधीन मामले को उससे लेकर उत्प्रेषण द्वारा ऊपर की अदालत या अधिकारी को हस्तांतरित कर देता है।

कहाँ पहुँचे? क्या समझे?

ऐसा अनुमान है कि भारत में लगभग 30 लाख लोग शहरों में बेघर हैं। इनमें से 5 प्रतिशत लोगों के पास रात में सोने की जगह भी नहीं है। इनमें सैकड़ों बूढ़े और बीमार बेघर लोगों की जाड़े में शीतलहर से मृत्यु हो जाती है। उन्हें 'निवास का प्रमाण' न दे पाने के कारण राशन कार्ड या मतदाता पहचान पत्र नहीं मिल पाते। इसके अभाव में उन्हें जरूरतमंद मरीज के रूप में सरकारी मदद भी नहीं मिल पाती। इनमें एक बड़ी संख्या में लोग दिहाड़ी मजदूर हैं जिन्हें बहुत कम मजदूरी मिलती है। वे मजदूरी की तलाश में देश के विभिन्न हिस्सों से शहरों में आते हैं।

आप इन तथ्यों के आधार पर 'संवैधनिक उपचारों के अधिकार' के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय को एक याचिका भेंजे (लिखें)। आपकी याचिका में निम्न दो बातों का उल्लेख होना चाहिए–

1. इन बेघर लोगों के किस मौलिक अधिकार का उल्लंघन हो रहा है?

2. आप सर्वोच्च न्यायालय से किस प्रकार का आदेश देने की प्रार्थना करेंगे?

बाद में इन अधिकारों की रक्षा के लिए न्यायपालिका के अलावा कुछ और संरचनाओं का भी निर्माण किया गया। आपने राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग, राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग आदि के बारे में सुना होगा। ये संस्थाएँ क्रमशः अल्पसंख्यकों, महिलाओं और दलितों के अधिकारों की रक्षा करती हैं। इसके अतिरिक्त, मौलिक अधिकारों और अन्य अधिकारों की रक्षा करने के लिए कानून द्वारा राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का भी गठन किया गया है।

मैं अपने मुहल्ले में तो अल्संख्यक हूँ पर शहर में बहुसंख्यक। भाषा के हिसाब से तो अल्पसंख्यक हूँ लेकिन धर्म के लिहाज से मैं बहुसंख्यक हूँ! क्या हम सभी अल्पसंख्यक नहीं हैं?

मानवाधिकार आयोग

किसी भी संविधान द्वारा प्रदान किए गए अधिकारों की असली पहचान तब होती है जब उन्हें लागू किया जाता है। समाज के गरीब, अशिक्षित और कमज़ोर तबके के लोगों को अपने अधिकारों को प्रयोग करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज (पी. यू. सी. एल.) या पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स (पी.यू.डी.आर.) जैसी संस्थाएँ अधिकारों के हनन के विरूद्ध चौकसी करती हैं। इस परिप्रेक्ष्य में वर्ष 2000 में सरकार ने राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का गठन किया।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग में सर्वोच्च न्यायालय का एक पूर्व मुख्य न्यायाधीश, किसी उच्च न्यायालय का एक पूर्व मुख्य न्यायाधीश तथा मानवाधिकारों के सम्बन्ध में ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव रखने वाले दो और सदस्य होते हैं।

मानवाधिकार के उल्लंघन की शिकायत मिलने पर राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग स्वयं अपनी पहचान पर या किसी पीड़ित व्यक्ति की याचिका पर जाँच कर सकता है। जेलों में बंदियों की स्थिति का अध्ययन करने जा सकता है, मानवाधिकार के क्षेत्र में शोध कर सकता है, या शोध को प्रोत्साहित कर सकता है।

आयोग को प्रतिवर्ष हज़ारों शिकायतें मिलती हैं। इनमें से अधिकतर हिरासत में मृत्यु, हिरासत के दौरान बलात्कार, लोगों के गायब होने, पुलिस की ज़्यादतियों, कार्यवाही न किए जाने, महिलाओं के प्रति दुर्व्यवहार आदि से सम्बन्धित होती हैं। मानवाधिकार आयोग का सबसे प्रभावी हस्तक्षेप पंजाब में युवकों के गायब होने तथा गुजरात दंगों के मामले में जाँच के रूप में रहा। आयोग को स्वयं मुकदमा सुनने का अधिकार नहीं है। यह सरकार या न्यायालय को अपनी जाँच के आधार पर मुकदमा चलाने की सिफारिश कर सकता है।

अभ्यास कार्य

1. भारतीय संविधान के द्वारा प्रदत्त आरक्षण समानता के मौलिक अधिकार का उल्लंघन है या उसे प्राप्त करने में सहायक है, समीक्षा कीजिये।
2. दक्षिण अफ्रीका के संविधान में नागरिक को दिए गये अधिकारों का वर्णन कीजिए तथा इसकी तुलना भारत के नागरिकों को प्राप्त अधिकारों से कीजिए।
3. किसी क्षेत्र के मजदूर जब काम के लिए दूर के राज्यों में पलायन करते है तब बच्चों सहित पूरे परिवार वालों को कम वेतन पर बंधुआ मजदूरों की तरह कई महीने ईंट भट्टों में काम करना पड़ता है। ऐसे में उन लोगों के किन–किन मौलिक अधिकारों का हनन होता है?
4. एक गरीब आदिवासी बच्चा कुपोषण के कारण मर जाता है – यह उसके किस मौलिक अधिकार का हनन है– उस बच्चे को बचाना किसकी जिम्मेदारी है।
5. अगर कोई किसी को मार डालने की धमकी देता है तो वह किस मौलिक अधिकार का उल्लघंन कर रहा है। उसे रोकने की जिम्मेदारी किसकी है।
6. अक्सर अदालतें किसी व्यक्ति को मौत की सजा देती है– क्या यह उस व्यक्ति की जीवन का मौलिक अधिकार का हनन है? विचार कीजिये।
7. आपके अनुसार कौन–सा मौलिक अधिकार सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है? इसके प्रावधानों को संक्षेप में लिखें और तर्क देकर बताएँ कि यह क्यों महत्त्वपूर्ण है?

संदर्भ ग्रंथ

1. भारत का संविधान, सिद्वान्त और व्यवहार, कक्षा 11वीं के लिए राजनीति विज्ञान की पुस्तक, प्रकाशक राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, 2006
2. भारत का संविधान–एक परिचय, आचार्य दुर्गा दास बसु, आठवां संस्करण 2002, प्रकाशक, वाधवा एण्ड कम्पनी, नागपुर, दिल्ली।
3. हमारे संविधान में मूल अधिकार और कर्तव्य, प्रकाशक–एकलव्य, भोपाल, मध्यप्रदेश।

अध्याय – 14
आर्थिक विकास एवं सामाजिक अवसर

अध्याय की रूपरेखा

- सामान्य परिचय
- अध्याय के उद्देश्य
- विकास, स्वतंत्रता एवं अवसर
  - आय की वृद्धि या मनचाहा जीवन जीने की स्वतंत्रता
  - गरीबी यानि योग्यताओं से वंचित होना
  - नीतियों के मूल्यांकन के आधार
  - शिक्षा एवं स्वास्थ्य के मुद्दे
- अभ्यास कार्य
- सारांश
- संदर्भ सूची

अमर्त्य सेन

सामान्य परिचय

यदि हम से किसी से यह प्रश्न करें कि विकास के क्या मायने है? तो हमें सीधा सा जवाब मिलेगा प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि का होना, उत्पादन में वृद्धि, आधारभूत संरचना अर्थात सड़कों आदि का विकास होना ही विकास है। प्रख्यात अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन ने विकास को इससे आगे भी देखते हैं जैसे आय में वृद्धि किसी महत्वपूर्ण उद्देश्य तक पहुंचने का माध्यम हो सकता है न कि स्वयं में एक उद्देश्य। इसी तरह लोगों के क्षमता एवं योग्यता में वृद्धि ही विकास के सही मायने हो सकते हैं। कैसे? इस अध्याय में आप इन्हीं सब बातों पर विचार करेंगे।

अध्याय के उद्देश्य

1. अर्थशास्त्री अमर्त्यसेन के अनुसार विकास का अर्थशास्त्र के मायने समझना;
2. यह समझना कि आय में वृद्धि कुछ महत्वपूर्ण उद्देश्यों तक पहुंचने का एक माध्यम है न कि स्वयं एक उद्देश्य;
3. विकास को योग्यता एवं क्षमता में वृद्धि के रूप में समझना;
4. विभिन्न नीतियों के मूल्यांकन या विकास कार्यक्रमों की सफलता के मानदण्ड में लोगो के सहज जीवन–यापन के महत्व को समझना;
5. व्यक्ति की क्षमताओं एवं योग्यताओं तथा स्वतंत्रताओं में वृद्धि को प्रभावित करने में शिक्षा एवं स्वास्थ्य के महत्व को समझना।

भारत विकास की दशाएँ, अमर्त्य सेन व ज़्याँ द्रीज़, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली 2007, पृष्ठ– 19 से 24.

विकास, स्वतंत्रता एवं अवसर

द्वितीय महायुद्ध के तुरन्त बाद जब विकास की समस्याओं पर केन्द्रित अर्थशास्त्र अपना स्वतंत्र अस्तित्व बना रहा था, तो उस पर कुछ पुराने प्रभावों की झलक साफ दिखाई पड़ रही थी। उदाहरण के लिए 'प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में संवृद्धि' के दुराग्रह से यह विकास अर्थशास्त्र भी मुक्त नहीं था।

आय की वृद्धि या मनचाहा जीवन जीने की स्वतंत्रता

अर्थशास्त्र की स्थापना करने वाले चिन्तक एडम स्मिथ व जान स्टुअर्ट मिल ने तो वास्तविक आय की संवृद्धि पर बहुत कुछ लिखते हुए भी आय को किन्हीं महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों की प्राप्ति के अनेक माध्यमों में से एक माना था। उन्होंने उन महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों पर भी बहुत खुलकर विचार व्यक्त किए हैं तथा वे विचार यह स्पष्ट कर देते हैं कि वे उद्देश्य केवल आय से किस प्रकार भिन्न हैं।

ये विद्वान इस बात को लेकर बहुत सजग थे कि अच्छे जीवन–यापन के अवसरों की रचना में आय एवं सम्पत्ति के अतिरिक्त ''उन कार्यों को कर पाने की हमारी क्षमता जिन्हें हम महत्त्वपूर्ण मानते हैं'' पर बहुत बल दिया गया है। इस प्रकार से जीवन को अपनी इच्छानुसार जी पाने की स्वतंत्रता किसी अन्य लक्ष्य की प्राप्ति का माध्यम मात्र नहीं होकर स्वयं अपने आप में महत्त्वपूर्ण हो जाती है। उन्होंने इन बातों तथा आय, सम्पत्ति एवं अन्य आर्थिक दशाओं पर बहुत खुलकर टिप्पणियाँ की हैं और आधारभूत आवश्यकताओं की संवर्धनकारी सार्वजनिक नीतियों के बारे में भी बहुत कुछ बताया है। जिन परिवर्तनों को हम आज आर्थिक विकास का अंग मानते हैं – यहाँ तक कि नेहरू द्वारा निर्धारित आर्थिक योजनाओं की सूची – उनसे भी मिल या स्मिथ का कोई मतभेद नहीं होता।

प्रश्न

'आय' के बारे में एडम स्मिथ व जान स्टुअर्ट मिल के विचार क्या हैं? लिखिए।

गरीबी यानी योग्यताओं से वंचित होना

हाल के वर्षों में आर्थिक विकासशास्त्र भी विकास को केवल आय की दृष्टि से नहीं बल्कि एक बहुआयामी दृष्टि से देखने लगा है। विकास को देखने के एक नज़रिए के अनुसार विकास का मतलब है नागरिकों की उस स्वतंत्रता में वृद्धि जिसकी मदद से वे अपने मनभावन उद्देश्यों की सम्प्राप्ति के लिए प्रयास कर सकते हैं। इस सन्दर्भ में मानवीय योग्यता के प्रसार को विकास की प्रक्रिया का एक केन्द्रीय लक्षण माना जाना चाहिए।

किसी व्यक्ति के जीवन को उसके द्वारा किए गए कार्यों की एक शृंखला, या उन जीवन दशाओं जिन्हें वह व्यक्ति पा लेता है, के रूप में देखा जा सकता है। इन्हें ही व्यक्ति के कृत्यों एवं अवस्थाओं का अथवा उसकी क्रियाकलापों (functioning) का समुच्च्य माना जा सकता है। योग्यता (Capability) से हमारा अभिप्राय क्रियाकलापों के वैकल्पिक समूहों में से चयन कर पाने की व्यक्ति की क्षमता से ही है। इस प्रकार योग्यता का विचार स्वतंत्रता के विचार से ही जुड़ा हुआ है। यहाँ उसका सम्बन्ध इस बात से है कि व्यक्ति के सामने जीवनशैली के कितने विकल्प खुले हैं। इस परिवेश में जीवन की दुरावस्था का अभिप्राय केवल व्यक्ति की गरीबी ही नहीं, बल्कि सामाजिक, वैयक्तिक बाधाओं के कारण जीवन शैली के चयन के वास्तविक अवसरों के अभाव से भी है। कम आय, अति अल्प सम्पत्ति आदि आर्थिक गरीबी के सहज चिह्न भी अन्ततः इसी कारण से यहाँ महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं कि उनके कारण योग्यताएँ – अर्थात् वांछित जीवन शैली का चयन कर पाने की क्षमता – दुष्प्रभावित होती हैं। अतः गरीबी तो अन्ततः योग्यता से वंचित रह जाना ही है।

इस निबन्ध में हम गरीबी के इस व्यापक अर्थ को अपने विश्लेषण का आधार मानकर चलेंगे – जब हम गरीबी

और सामान्य जीवन–यापन करने की योग्यता (बीमारी व अकाल मृत्यु या निरक्षरता से मुक्त जीवन जीने की स्वतंत्रता) की चर्चा करेंगे। हम बार–बार गरीबी शब्द का प्रयोग भले ही न करें पर अभाव, वंचना एवं जीवन की दुरावस्था हमारी इसी चिन्ता के द्योतक हैं। जहाँ कहीं हम गरीबी के सामान्य स्वरूप (अर्थात् आय की कमी आदि) की चर्चा करेंगे, वहाँ भी हमारा मुख्य सरोकार तो इस कमी के कारण योग्यता प्राप्ति से वंचित रह जाने से ही होगा।

प्रश्न–

उपरोक्त पैराग्राफों में गरीबी और योग्यता के बीच किस प्रकार के संबंधों की चर्चा की गई है?

नीतियों के मूल्यांकन का आधार

आधुनिक काल में विकास साहित्य का मुख्य ध्यान आर्थिक संवृद्धि अर्थात् सकल राष्ट्रीय उत्पाद आदि की वृद्धि पर ही केन्द्रित रहा है – इसमें मानवीय योग्यताओं एवं क्षमताओं के संवर्धन को कभी पूरी तरह दृष्टिगत नहीं किया गया। आर्थिक संवृद्धि निश्चित रूप से मानवीय क्षमताओं को बढ़ा देती है। फिर भी यहाँ दो बातों का ध्यान रखना आवश्यक हैः (1) मानवीय क्षमता संवर्धन (Development of Human Capabilities) पर आर्थिक संवृद्धि के अतिरिक्त और अनेक कारकों के भी प्रभाव पड़ते हैं; तथा (2) योग्यता के संवर्धन पर संवृद्धि के प्रभाव भी अनेक बातों द्वारा निर्धारित होंगे, जैसे कि क्या आर्थिक संवृद्धि की प्राप्ति से रोज़गार–सृजन में बहुत अधिक वृद्धि हुई है? अथवा क्या आर्थिक उन्नति के फलों का उपयोग समाज के सबसे पिछड़े वर्गों के अभावों एवं वंचनाओं को कम करने के लिए हुआ है, आदि?

कहने का तात्पर्य यही है कि अन्ततः हमें विभिन्न नीतियों का मूल्यांकन इसी आधार पर करना होगा कि क्या उनसे जनसामान्य को सुलभ योग्यताओं का संवर्धन हो रहा है अथवा नहीं (यह संवर्धन चाहे आय की संवृद्धि के माध्यम से हो या अन्यथा)। यह दृष्टिकोण उस विचार से सर्वथा भिन्न है जिसमें वास्तविक आय की संवृद्धि को ही (अपने आप में) माना जाता है। इस प्रकार की विश्लेषण विधि (आय की संवृद्धि पर केन्द्रित) के औचित्य के प्रति शंका व्यक्त करने का अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि मानवीय योग्यता/क्षमता संवर्धन में आय की संवृद्धि का कोई योगदान नहीं होता। हमारा मन्तव्य तो लक्ष्य एवं उसे प्राप्त करने के माध्यमों का सुस्पष्ट निरूपण करना ही है।

भारत तथा अन्य अनेक देशों में आजकल शासनतंत्र के हस्तक्षेप से मुक्त बाज़ार की नीतियों के पक्ष में दी जा रही दलीले मुख्यतः आर्थिक प्रसार अथवा देश में उत्पादन एवं आय को बढ़ाने से ही जुड़ी हैं। लेकिन उत्पादन और आय पर ध्यान देने का औचित्य ही इस बात पर आधारित रहता है कि इनकी संवृद्धि से व्यक्ति की वांछित जीवन–यापन की स्वतंत्रता का संवर्धन होता है। आर्थिक विकास के विश्लेषण में इन दोनों कारणों पर ध्यान दिया जाना चाहिए। यही नहीं, उन नीतियों एवं संस्थागत परिवर्तनों पर भी गौर होना चाहिए जिनसे मानवीय योग्यताएँ बढ़ती हैं। विकास कार्यक्रम की सफलता का मानदण्ड केवल उत्पादन एवं आय की वृद्धि नहीं हो सकता, इसमें तो लोगों के सहज जीवन–यापन स्तर पर बल दिया जाना चाहिए। विश्व में किसी भी देश के विकास कार्यक्रम के मूल्यांकन की भाँति ही यह कथन भारत जैसे देश में चल रहे आर्थिक सुधारों एवं नीतियों के मूल्यांकन–विश्लेषण पर भी समान रूप से लागू होगा।

प्रश्न

विभिन्न विकास कार्यक्रमों या नीतियों के मूल्यांकन के लिए किन–किन आधारों पर बल दिया गया है?

शिक्षा एवं स्वास्थ्य के मुद्दे

आर्थिक अवसर का लाभ उठाने की क्षमता तथा अन्य स्वतंत्रताओं को प्रभावित करने (अथवा उनका संवर्धन/अपवर्धन करने) वाले तत्वों का भी अपना महत्व है। जैसे कि शिक्षा एवं स्वास्थ्य स्वातंत्र्य संवर्धन में सहायक होते हैं। आर्थिक विकास से सम्बद्ध साहित्य में इन दो 'सामाजिक' कारकों के आर्थिक प्रगति में सहायक स्वरूप पर अब काफी चर्चा होने लगी है।

आज के युग में सभी आर्थिक विकास में प्राथमिक शिक्षा के महत्व को स्वीकार करते हैं – फिर भी भारत में इस बात की अनदेखी होना बहुत ही आश्चर्य की बात है। जाने क्यों आर्थिक नीतियों में भारी परिवर्तन के बाद भी आर्थिक विकास के शिक्षा सम्बन्धी आयामों पर अभी भी ध्यान नहीं दिया जा रहा है? यही स्थिति स्वास्थ्य सेवाओं की भी है। यही नहीं, भगवती एवं श्रीनिवासन (1993) का आर्थिक सुधार सम्बन्धी अतिरोचक विश्लेषण भी इन मुद्दों (शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं का आर्थिक विकास पर प्रभाव) पर चुप्पी ही साध गया। आधार–निर्माण (Infrastructure) के बारे में भी उनकी चर्चा केवल परिवहन व्यवस्था और विद्युत उत्पादन तक ही सीमित रह गई। भारत के योजना तंत्र में रह गए एक असन्तुलन को दूर कर पाने का यह अवसर भी गँवा दिया गया। असल बात तो यही है कि विद्वान आर्थिक सुधारों का अपना ही स्वतंत्र अस्तित्व मानने के भ्रम के शिकार हो चले हैं। वे उन्हें सामाजिक नीतियों की विफलताओं का निराकरण करने से जोड़ने का प्रयास ही नहीं करते – अर्थात् यह माँग ही नहीं उठाई जाती कि संकुचित आर्थिक परिवर्तनों के साथ–साथ सामाजिक कार्यक्रमों, विशेषकर प्राथमिक शिक्षा में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन लाए जाने चाहिए।

शिक्षा एवं स्वास्थ्य कम–से–कम पाँच प्रकार से व्यक्ति के स्वातंत्र्य संवर्धन में बहुमूल्य सिद्ध हो सकते हैं:

(1) **अन्तर्निहित महत्व –** शिक्षित एवं स्वस्थ होना अपने आप में ही बहुत मूल्यवान है। शिक्षा एवं स्वास्थ्य के सम्पन्न हो पाने का अवसर सहज ही व्यक्ति के स्वातंत्रय को प्रभावी बना देता है।

(2) **वैयक्तिक रूप से सहायक –** शिक्षित एवं स्वस्थ होने के कारण ही व्यक्ति अन्य अनेक प्रकार के कार्य भी सरलता से कर पाने में सफल होता है। वे सभी कार्य (एवं उन्हें कर पाना) भी (मनुष्य के जीवन–यापन की दृष्टि से) अत्यन्त महत्वशाली होते हैं। उदाहरण के रूप में, उनके (शिक्षा एवं स्वास्थ्य के) आधार पर व्यक्ति रोज़गार पा सकता है या अन्य आर्थिक अवसरों का लाभ उठा सकता है। इस प्रकार आय एवं आर्थिक संसाधनों की संवृद्धि से वह व्यक्ति उन क्रियाकलापों की प्राप्ति में सफल हो सकता है जिन्हें वह बहुमूल्य मानता रहा है।

(3) **सामाजिक रूप से सहायक –** साक्षरता एवं प्राथमिक शिक्षा के प्रसार से समाज में स्वास्थ्य सेवाओं और सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था की आवश्यकता आदि के विषय में आर्थिक सारपूर्ण विचार–मंथन एवं उनकी माँग का मार्ग प्रशस्त होता है। इनके माध्यम से जनसामान्य की सहज सुलभ सुविधाओं का विस्तार होगा और वर्तमान सुविधाओं का कहीं बेहतर प्रयोग भी सम्भव हो पाएगा।

(4) **प्रक्रियाओं में सहायक –** विद्यालयीन शिक्षा की प्रक्रिया के शिक्षण के अतिरिक्त अन्य लाभ भी हो सकते हैं। अक्सर बाल–मजदूरी की चक्की में वही बच्चे फँसे होते हैं जिन्हें शिक्षा तंत्र से बाहर रहने की विवशता झेलनी पड़ी हो। यदि शिक्षा व्यवस्था का समुचित एवं प्रभावी प्रसार हो तो भारत में व्याप्त बाल–मज़दूरी की दुखदाई दशा पर भी नियंत्रण पाया जा सकेगा। विद्यालय में आकर बच्चे परस्पर मिल–जुलकर भी बहुत कुछ सीखते हैं – उनके सोच, समझ का (और व्यवहार का) दायरा विस्तृत होता है। यह बात बालिकाओं के विषय में बहुत अधिक महत्वपूर्ण है।

(5) सामर्थ्यवर्धन एवं पुनर्वितरण में सहायक – समाज के पिछड़े हुए वर्ग की साक्षरता में सुधार एवं शिक्षा सम्बन्धी उपलब्धियाँ उनमें दमन का सामना करने की क्षमता को बढ़ाने में सहायक होती हैं। वे राजनीतिक दृष्टि से संगठित हो अपनी दशा सुधारने के प्रयास कर सकते हैं। संसाधनों के पुनर्वितरण की दृष्टि से तो शिक्षा का महत्व और गहराई तक जाता है – यह पुनर्वितरण समाज के वर्गों या फिर परिवारों तक ही सीमित नहीं रहता – बल्कि परिवार के भीतर भी नर–नारी के बीच (बेटा–बेटी के बीच) विषमता की खाई को पाटने में शिक्षा (विशेषकर स्त्री–शिक्षा) का बहुत महत्वपूर्ण योगदान रहता है।

कुछ प्रश्न

'शिक्षा एवं स्वास्थ्य के मुद्दे' के सभी पैराग्राफ को पढ़कर बताएं–

1. व्यक्ति के स्वातंत्रय को प्रभावी बनाने में कौन–कौन से कारक सहायक होते है?
2. 'शिक्षित और स्वस्थ्य व्यक्ति' द्वारा उठाए जाने वाले कोई दो लाभ बताइए।
3. बाल मजदूरी के मुख्य कारणों में से एक है.....।
4. बच्चों के सोचने, समझने तथा व्यवहार को प्रभावित करती है,.....।

ये प्रभाव उन्हीं व्यक्तियों तक सीमित नहीं रह जाते जिन्हें शिक्षा एवं स्वास्थ्य लाभ का अवसर मिला है। इनके प्रभाव समाज के अन्य सदस्यों पर भी पड़ते हैं। कितनी ही बार एक साक्षर व्यक्ति दूसरों को प्रचार पत्र आदि पढ़कर सुनाता या फिर किसी सार्वजनिक घोषणा का अर्थ समझाता मिल जाता है, अर्थात् उसके अक्षर ज्ञान से वह स्वयं ही नहीं, अन्य भी लाभान्वित होते हैं। इस प्रकार व्यक्तियों के बीच के सम्पर्क सूत्र राजनीतिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हो सकते हैं। समाज के किसी वर्ग या जाति के लोगों के बीच में (उसी वर्ग के) शिक्षित लोग यदि सक्रियतापूर्वक कार्य करें तो उस जाति अथवा वर्ग के बीच अग्र एवं पश्चगामी अन्तर्सम्बन्धों के कारण एक व्यक्ति द्वारा किसी आर्थिक अवसर का लाभ उठाना अन्य अनेक के लिए लाभ का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। व्यापक सामाजिक चयन (Social Choice) विधा से हटकर हम शिक्षा के योगदान का सही मूल्यांकन नहीं कर पाएंगे। इसी प्रकार स्वास्थ्य को लेकर भी हमें मरणशीलता, रोगों से बचाव एवं उपचार आदि में अनेक प्रकार की बाह्यताएं (Externalitiè) प्राप्त होती हैं।

यहां अभिप्राय यही है कि शिक्षा द्वारा सारे समाज में व्यक्तियों एवं समूहों की चयन क्षमता एवं कुशलला में वृद्धि होती है। इसी प्रकार स्वास्थ्य व्यवस्था में भी लाभ किसी व्यक्ति विशेष तक सीमित नहीं रहते। घर में एक व्यक्ति के बीमार पड़ने पर परिवार के अन्य सदस्यों की कार्यक्षमता पर भी दुरूप्रभाव पड़ता है। यदि रोग संक्रामक हो तो फिर यह दुष्प्रभाव औरों की बीमारी का का रूप भी धारण कर लेता है।अतः स्वस्थता–अस्वस्थता भी समाजव्यापी हो जाती है।

दूसरे शब्दों में, शिक्षा एवं स्वास्थ्य, दोनों ही के प्रभाव तात्कालिक रूप से लाभान्वित हो रहे व्यक्ति तक ही सीमित नहीं रहते, उनका समाज में व्यापक असर होता है।

इस प्रकार के पारस्परिक सम्बन्धों के कारण आर्थिक विकास की प्रक्रिया में शिक्षा एवं स्वास्थ्य का महत्व अधिक हो जाता है। शिक्षा एवं स्वास्थ्य से जुड़ी सार्वजनिक नीतियों की अपर्याप्तता ही पिछली आधी शताब्दी में भारत में विकास प्रयासों की सीमित उपलब्धियों की व्याख्या कर सकने के लिए काफी रहेगी। केवल उदारीकरण एवं नियंत्रण तंत्र में ढील देने पर मौलिक नीतिगत सुधार पिछली आयोजन व्यवस्था में रह गई इन त्रुटियों को कदापि दूर नहीं कर पाएँगे।

निष्पादन में बाधक सरकारी नियंत्रणों की समाप्ति से अनेक व्यक्तियों को नए अवसर सुलभ हो सकते हैं, किन्तु निरक्षरता एवं रोगग्रस्त आदि की परिस्थितियों (जिनके कारण समाज का बहुत बड़ा वर्ग उचित अवसरों? का लाभ उठाने से वंचित रह जाता है) को सुधारने में ये सुधार पर्याप्त नहीं होंगे। आवश्यक है कि इनके साथ–साथ जनस्वास्थ्य एवं शिक्षा नीतियों में भी आमूलचूल परिवर्तन लाए जाएँ। यदि हम आर्थिक विकास को सामाजिक अवसरों के व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखना–समझना चाहते हैं और इन परिप्रेक्ष्यों के अन्तर्निहित एवं सहयोगी योगदान का महत्व जानते हैं, तो फिर, शिक्षा और स्वास्थ्य तथा सामाजिक, आर्थिक विकास के अन्तर्सम्बन्धों की अनदेखी कदापि नहीं कर पाएँगे।

सारांश

विकास का अर्थशास्त्र सिर्फ आय में वृद्धि होना भर नहीं है बल्कि इसके अलावा भी बहुत कुछ है। इस सामग्री में इसी बात पर बल दिया गया हे कि मानवीय योग्यताओं एवं क्षमताओं का संवर्धन सही मायने में विकास के अर्थशास्त्र को दर्शाता है और इस प्रकार मानवीय योग्यताओं एवं क्षमताओं के संवर्धन में शिक्षा एवं स्वास्थ्य महत्वपूर्ण मुद्दे हो जाते हैं। अभिप्राय यहि है कि शिक्षा द्वारा सारे समाज में व्यक्तियों एवं समूहों की चयन क्षमता एवं कुशलला में वृद्धि होती है। इसी प्रकार स्वास्थ्य व्यवस्था में भी लाभ किसी व्यक्ति विशेष तक सीमित नहीं रहते। घर में एक व्यक्ति के बीमार पड़ने पर परिवार के अन्य सदस्यों की कार्यक्षमता पर भी दुष्प्रभाव पड़ता है। यदि रोग संक्रामक हो तो फिर यह दुष्प्रभाव औरों की बीमारी का का रूप भी धारण कर लेता है।अतः स्वस्थता–अस्वस्थता भी समाजव्यापी हो जाती है।

अभ्यास कार्य

1. ''विकास कार्यक्रम की सफलता का मानदण्ड केवल उत्पादन एवं आय की वृद्धि नहीं हो सकता। इसमें तो लोगों के सहज जीवन के स्तर पर भी बल दिया जाना चाहिए।'' इस कथन का विश्लेषण कीजिए।
2. अमर्त्य सेन के अनुसार व्यक्ति की क्षमता वर्धन में 'शिक्षा और स्वास्थ्य' किस प्रकार सहायक है? समझाइए।
3. शिक्षा और स्वास्थ्य विकास के लिए क्यों जरूरी है? अपना तर्क दीजिए।
4. अमर्त्य सेन के अनुसार 'गरीबी' की व्याख्या कीजिए।
5. आर्थिक विकास में प्राथमिक शिक्षा का महत्व समझाइये।
6. अन्याय व दमन का सामना करने के लिए शिक्षा किस प्रकार सहायक हो सकता है? समझाइये।
7. अमर्त्य सेन के अनुसार किसी क्षेत्र के विकास के मायने बताइये।
8. व्यक्ति के स्वतंत्रता संवर्धन में शिक्षा एवं स्वास्थ्य किस प्रकार सहायक हैं? विस्तार से वर्णन कीजिए।
9.. ''शिक्षित लोग अपने हकों की बेहतर रक्षा कर पाते है।'' कथन को समझाइये।
10. 'किसी व्यक्ति की शिक्षा और स्वास्थ्य समाज के अन्य लोगों पर भी असर डालता है।' इस कथन को उदाहरण सहित समझाइये।
11. किसी क्षेत्र के विकास के लिए आप वहां कारखानें खोलने या शिक्षा तथा स्वास्थ्य सुविधाएं मुहैया कराने में से किसे प्राथमिकता देंगे और क्यों?
12. विकास क्या है? आर्थिक विकास एवं सामाजिक विकास के बीच किस प्रकार के संबंध होते है? उदाहरण सहित वर्णन कीजिए।

संदर्भ ग्रंथ

1. भारत विकास की दिशाएं, अमर्त्य सेन व ज्यां द्रिज़ राजपाल प्रकाशन, 2007, दिल्ली।
2. भारत का विकास कुछ प्रादेशिक अध्ययन, अमर्त्य सेन व ज्यां द्रिज़ राजपाल प्रकाशन, 2007, दिल्ली।
3. आर्थिक विकास और स्वातंष्य, अमर्त्य सेन, राजपाल प्रकाशन, 2007, दिल्ली।
4. India's Economic Reform, Ministry of Finance Govt. of India, New Delhi.

| | | | | | | | | |

इकाई 4

अँग्रेजी शासन काल में शिक्षा व्यवस्था

अध्याय – 15

प्राक् ब्रिटिश काल में देशज शिक्षा परम्पराएं और समस्याएं

अध्याय की रूपरेखा

- सामान्य परिचय
- अध्याय के उद्देश्य
- बंगाल में शिक्षा व्यवस्था
  - स्कूल पाठयक्रम का वास्तविक जीवन से संबंध
  - देशी शिक्षा की अन्य व्यवस्था
  - वार्षिक या अन्तिम परीक्षा
  - देशज शिक्षा प्रणाली की विशेषताएं
  - जनतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष पाठशाला
  - शिक्षा के अवसर
  - जनता का शिक्षा व्यवस्था में भागीदारी
  - निम्नतम जातियों के छात्रों को शाला लाने में शिक्षकों की भूमिका
  - शिक्षा में लड़कियों की भागीदारी और अन्धविश्वास
  - धार्मिक बंधन और सामाजिक पूर्वाग्रह
- अभ्यास कार्य
- संदर्भ सूची

सामान्य परिचय

अँग्रेज़ों के आगमन के भारत में भारत में शिक्षा व्यवस्था कैसी थी? प्रायः अभी भी ज़्यादातर लोग अपने घर व पड़ोस में बड़ों के साथ रहकर, उनके साथ काम करते व खेलते हुए शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। विभिन्न विधाओं के गुरू भी थे जिनके पास रहकर विद्या सीखी जाती थी। लेकिन मध्यकाल में इनके अलावा एक और व्यवस्था बनी जिसे हम ग्रामीण पाठशाला कह सकते हैं। इसमें एक गरीब पढ़े–लिखे व्यक्ति को गाँव के लोग अपने गाँव में बसाते थे। वह अपने घर की दहलीज पर शाला चलाता था जिसमें 15–20 लड़के पढ़ते थे। इन शालाओं में लिखना–पढ़ना, हिसाब करना व कुछ नीति कथा व कवितायें सिखायी जाती थीं। आमतौर पर इनमें स्थानीय भाषा ही सिखाई जाती थी। संस्कृत व फारसी सीखने के लिए विशिष्ट लोगों के लिए टोल या मदरसे भी थे।

प्रस्तुत पठन सामग्री बंगाल में 18 वीं सदी में प्रचलित शिक्षा व्यवस्था का अध्ययन है।

अध्याय के उद्देश्य

1. अंग्रेजों के भारत आगमन के पूर्व भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर विचार करना।
2. प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में ब्रिटिश शिक्षा–प्रणाली लागू होने से पहले स्थानीय भाषा में दी जाने वाली शिक्षा के स्वरूप और उसकी व्यापकता पर विचार करना।

बंगाल में शिक्षा व्यवस्था

बंगाल के लगभग सभी जिलों में मदरसा नामक फारसी और अरबी स्कूल तथा टोल नामक संस्कृत स्कूल थे। उच्चतर शिक्षा के

प्रस्तुत लेख परमेश आचार्य की किताब देशज शिक्षा औपनिवेशिक विरासत और जातीय विकल्प, अनुवाद अनिल राजिमवाले, ग्रन्थ शिल्पी प्रकाशन 2000, नई दिल्ली, से लिया गया है।

इन स्कूलों की देखभाल ज़मींदारों एवं धनी हिन्दुओं तथा मुसलमानों के दान से की जाती थी। आमतौर पर छात्रों को कोई खर्च नहीं उठाना पड़ता था, हालाँकि उन्हें अपनी शिक्षा पूरी करने के लिए करीब बारह वर्षों की लम्बी अवधि तक स्कूल में रहना पड़ता था। ऐसे छात्रों के लिए, जिन्हें रहने की जगह की ज़रूरत थी अर्थात् जो आना–जाना नहीं कर सकते थे, मुफ्त रहने–खाने की व्यवस्था के साथ उन्हें शिक्षा मुफ्त दी जाती थी।

स्कूली पाठ्यक्रम का वास्तविक जीवन से संबंध

संस्कृत स्कूलों के पाठ्यक्रम में हिन्दू कानून, तर्कशास्त्र और साहित्य अर्थात स्मृति, न्याय, काव्य और अंलकार शामिल थे। फारसी और अरबी स्कूलों में मुख्यतः मुस्लिम कानून और इस्लामी धर्मशास्त्र अर्थात् कुरान, तफसीर, हदीस और फिक्ह पढ़ाए जाते थे। फारसी स्कूलों में कुछ साहित्यिक एवं ऐतिहासिक रचनाएँ भी शामिल थीं, जैसे मन्दनामेह, अमेदनामेह, गुलिस्तान, यूसुफ और जुलेखा, सिंकदरनामेह और अबुल फज़ल इत्यादि।

उच्चतर शिक्षा के इन हिन्दू और मुस्लिम स्कूलों के पाठ्यक्रमों से पता चलता है कि उनका मेहनतकशों के वास्तविक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं था। इन्हें पूरा करने के लिए वे इतना अधिक वक्त स्कूलों में बिताने की स्थिति में नहीं थे। सिर्फ वही वर्ग ऐसा कर सकता था जिसके पास इतना वक्त था। परम्परागत संस्कृत का अध्ययन और विकास ब्राह्मणों के लिए ज़रूरी था क्योंकि उन्हें हिन्दू समुदाय के सामाजिक जीवन में अपनी विशेषाधिकार वाली स्थिति बनाए रखनी थी। उधर फारसी शिक्षा की ज़रूरत उन्हें भी थी जो सरकारी नौकरी के इच्छुक थे या उच्च समाज में विशेष स्थान की इच्छा रखते थे।

देशी शिक्षा की अन्य व्यवस्था

उपरोक्त व्यवस्थाओं के साथ–साथ देशी शिक्षा की अन्य व्यवस्था प्रचलित थी। इसे मुख्यतः व्यापारी और खेतीहर वर्ग चलाते थे। 1835 में डब्ल्यू. एडम ने स्थानीय भाषा–भाषी और संस्कृत स्कूलों में कोई भी सम्बन्ध या पारस्परिक निर्भरता नहीं पाई उन स्कूलों के बीच जो आम लोगों के लिए थे और वे अन्य स्कूल जो पढ़े–लिखे वर्गों के लिए थे। वे दो अलग–अलग किस्म की संस्थाएँ हैं जो अलग–अलग वर्गों या समाज के लिए हैं – एक व्यापारी और खेतिहर वर्ग के लिए, तो दूसरा धार्मिक तथा पढ़े–लिखे वर्गों के लिए है। पाठशालाएँ और मकतब प्रथम किस्म के वर्गों के लिए थे जबकि टोल और मदरसा दूसरे किस्म के वर्गों के लिए।

प्रश्न

संस्कृत स्कूलों का पाठ्यक्रम किस वर्ग के वास्तविक जीवन से मेल खाता था? उनके लिए संस्कृत स्कूल क्यों आवश्यक थे?

उन्नीसवीं सदी के प्रथम दशक में फ्रांसिस बुकानन हैमिलटन का अवलोकन है कि, ''हिन्दू और मुसलमान दोनों ही प्रारम्भिक शिक्षा छोटे स्कूलों में देते हैं जिन्हें पाठशाला कहा जाता है; इनमें पढ़ाने वाले को गुरू कहा जाता है जो किसी भी जाति या धर्म के हो सकते हैं। समाज के इन उपयोगी सदस्यों के लिए जीवनयापन की कोई सार्वजनिक व्यवस्था नहीं है और वे अपनी जीविका के लिए पूरी तरह अपने छात्रों पर निर्भर होते हैं। वे आगे कहते हैं– बच्चे आमतौर पर पाँच वर्ष की आयु में स्कूल जाते हैं, और उन्हें एक ही समय पढ़ना और लिखना सिखाया जाता है, और यह बड़ी अच्छी व्यवस्था दिख पड़ती है।''

तालिका 1 : कायस्थ शिक्षकों का अनुपात

जिला	शिक्षकों की कुल संख्या	कायस्थ जाति	दूसरी जातियां
मुर्शिदाबाद	67	39	28
बीरभूम	412	256	156
बर्दवान	639	369	270
दक्षिण बिहार	285	278	7
तिरहुत	80	77	3
कुल	1483	1019	464

इसी समय डब्ल्यू. वार्ड ने लिखा ''बंगाल के लगभग सारे बड़े गाँवों में सामान्य स्कूल होते हैं।'' वे आगे कहते हैंः ''ग्रामीण स्कूलों मे जीवन की समस्याओं के सम्बन्ध में चिन्ता दिखाई देती थी।'' पाठशालाओं में पाठ्यक्रमों एवं विषयों तथा पढ़ाने के तरीकों के बारे में डब्ल्यू. वार्ड कहते हैंः ''सरल अक्षरों के बाद छात्र संयुक्ताक्षर लिखते हुए, सभी छात्र दिन में दो बार खड़े होकर क्लास के मॉनीटर की देखरेख में पहले तो इकाई–दहाई–सैकड़ा–हज़ार... इत्यादि याद करते हैं फिर वे एक से सौ तक गिनते हैं और इसके बाद केले के हरे पत्तों पर वे पैसों से सम्बन्धित आसान जोड़–घटाव करते हैं और फिर गुणा–भाग और पैसों तथा वजन सम्बन्धी हिसाब–किताब। हिन्दू बटखरे रत्ती से शुरू होकर मन तक जाते हैं। पाठ्यक्रम के अन्त में बड़े लड़के सामान्य पत्र लिखना, आवेदन लिखना, इत्यादि सीखते हैं।''

प्रश्न

फ्रांसिस बुकानन हैमिल्टन तथा डब्ल्यू वार्ड ने ग्रमीण स्कूलों के बारे में क्या–क्या लिखा है? बिंदुवार लिखें।

वार्षिक या अन्तिम परीक्षा–

वार्षिक या अन्तिम परीक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। लेकिन लालबिहारी डे की रचना ''दिएक्शंस ऑफ माय स्कूल–डेज'' (स्कूल के दिनों की मेरी यादें) में एक प्रकार की परीक्षा या जाँच का उल्लेख मिलता है। उन्होनें लिखा हैं, ''मैं एक प्रकार की दैनिक परीक्षा का उल्लेख करना चाहूँगा, जो समूचे क्षेत्र में हुआ करती और जिसे हम लड़के घोष कहा करते। एक बड़े परिवार या कई परिवारों के लड़के हर शाम एक चण्डीमण्डप या बैठकखाना में एक जगह इकटठा किए जाते। यह किसी बुजुर्ग, आम तौर पर पिता या चाचा या ऐसे ही किसी व्यक्ति की देखरेख में कमरे में होती और उनसे आमतौर पर गणित के बारे में सवाल पूछे जाते।'' उन्हें इस तरह के सवाल पूछे जाते, जैसे ''मान लो एक पैसे में यदि नौ केले मिलते हैं, तो पचास केले कितने में मिलेंगे?'' सवाल बुजुर्ग इन लड़कों से पूछते और लड़कों को ''सारा हिसाब दिमाग में ही करना होता क्योंकि न उनके पास स्लेटें होतीं, न कागज़, न कलम।''

इससे साफ जाहिर होता है कि जाँच का काम शिक्षक नहीं, अभिभावक किया करते थे। फलस्वरूप शिक्षक, अभिभावक और छात्र, सभी शिक्षा–प्रक्रिया में शामिल हो जाते थे। शिक्षा–प्रक्रिया में अभिभावकों की हिस्सेदारी से एक ऐसा अनुकूल वातावरण बनता था जिसमें शिक्षक एवं छात्र दोनों ही हमेशा सचेत रहते। लेकिन इस बारे में शक है कि ग्रामीण समाज के निम्नतम तबकों– अर्थात् अछूतों, खेतिहर मज़दूरों और गरीब रैयतों के भी अभिभावकों को अपने बच्चों की शिक्षा में दिलचस्पी थी या वे इसमें भाग लेने की क्षमता रखते थे। सम्भव है, उन्हें चण्डीमण्डप या बैठकखाना में होने वाले घोष में ऊपरी जातियों के छात्रों के साथ बैठने की अनुमति नहीं थी और वे अपने बूते पर ऐसी बैठकें आयोजित कर सकने में असमर्थ थे।

आमतौर पर हिन्दू बच्चों को पाँच या छह वर्ष की उम्र से हाथखड़ी सिखाई जाती, और उसी प्रकार मुस्लिम बच्चों को चार वर्ष, चार महीने और चार दिनों की उम्र से बिस्मिल्ला की रस्म से भर्ती की जाती।

प्रश्न

ऊपर के कुछ पैराग्राफ को पढ़कर प्राक ब्रिटिश काल में प्रचलित वार्षिक परीक्षा लेने की प्रक्रिया की तुलना वर्तमान परीक्षा प्रक्रिया से कीजिए।

देशज शिक्षा प्रणाली की विशेषताएं

आमतौर पर पाठशालाएँ किसी उपयुक्त केन्द्रीय स्थान में स्थित बरवारीघर, चण्डीमण्डप या बरगद या बकुल पेड़ के नीचे लगतीं और मकतब आमतौर पर गाँव की मस्ज़िदों से जुड़े होते। देशी शिक्षा प्रणाली की विशेषताएँ इस प्रकार थींः

1. बाहर से नियंत्रण करने वाली कोई केन्द्रीय अफसरशाही नहीं थी।
2. न ही कोई समान परीक्षा–व्यवस्था।
3. देशी भाषा–भाषी स्कूल आमतौर पर एक शिक्षक वाली संस्थाएँ थीं। अध्यापक आम तौर पर छात्रों से थोड़ी सी फीस या ग्रामीणों द्वारा समय–समय पर दी जाने वाली सहायता के सहारे जीवनयापन करते थे।
4. ऐसा लगता है कि शिक्षक पढ़ाई की खास परम्पराओं और तरीकों का पालन करते थे, जिनमें एक स्थान से दूसरे में बहुत कम अन्तर हुआ करता। लेकिन शायद शिक्षकों की क्षमता पर आधारित स्तर में फर्क पड़ जाता था।
5. लिखने के चार मुख्य तरीके थे :
   - ज़मीन पर लिखना,
   - ताड़ के पन्नों पर लिखना,
   - केले के पत्तों पर लिखना, और
   - कागज़ पर लिखना।
6. इन स्कूलों में आमतौर पर ''तीन आर'' पढ़ाए जाते थे जिनका ज़ोर लिखने और गणित पर हुआ करता।

प्रश्न

देशी शिक्षा व्यवस्था की विशेषताओं को पढ़कर इसकी तुलना वर्तमान शिक्षा व्यवस्था से कीजिए।

जनतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष पाठशाला

पाठशालाओं और मकतबों के बीच फिर भी कुछ अन्तर थे। यह दिलचस्प बात है कि शुरुआती यूरोपीय दर्शकों ने पाठशाला के जनतांत्रिक एवं धर्म निरपेक्ष चरित्र पर गौर किया। जहाँ प्राचीन हिन्दू शिक्षा व्यवस्था बौद्ध विचारधारा के प्रभाव से जनतांत्रिक बनी, वहीं पाठशाला का तंत्र शायद मुस्लिम काल के प्रभाव से धर्मनिरपेक्ष बना। बंगाल के ग्रामीण स्कूलों में अक्सर ही मुस्लिम शिक्षक और छात्र पाए जो थे। एडम के अनुसार, ''बीरभूम और बर्दवान में ग्रामीण पाठशालाओं में 13 मुस्लिम शिक्षक और 1001 मुस्लिम छात्र थे।''

सतीश चन्द्र मित्र ने अपनी पुस्तक ''जेसोट खुलनार इतिहास'' (जेसोट खुलनार इतिहास अनु.) में कहा है कि पठान युग का अन्त आते–आते पाठशालाओं में मुस्लिम शिक्षक निपुण हो चुके थे। वे आगे कहते हैं कि बुरान परगना का एक मुस्लिम बरनीर खान पाठशाला के शिक्षक के रूप में प्रसिद्ध हो गया था।

मकतब अपना धार्मिक स्वरूप बरकरार रखे हुए थे, जबकि पाठशाला निरंतर धर्मनिरपेक्ष बनती जा रही थी। उत्तर भारत के मकतबों और सिन्ध के मुल्ला स्कूलों ने हमेशा ही आध्यात्मिक शिक्षा पर ज़ोर दिया है। यह गैर–धर्मनिरपेक्ष चरित्र मुख्यतः मुल्लाओं और मुस्लिम धार्मिक उपदेशकों के कारण था, क्योंकि मकतब आमतौर पर गाँव की मस्जिदों से जुड़े हुए थे, और इसलिए यह माना जा सकता है कि इन धार्मिक उपायों से उस वक्त का शासक वर्ग मुस्लिम समुदाय की एकता बनाए रखना चाहता था। साथ ही यह जनता को निष्क्रिय रखने का भी एक प्रभावशाली तरीका था। जे. एम. सेन अपनी रचना हिस्टरी आफ इलिमेंट्री एजुकेशन इन इंडिया (भारत में प्राथमिक शिक्षा का इतिहास –अनु.) में कहते हैं: ''मुस्लिम और सिख स्कूलों (गुरूमुखी स्कूलों) में आध्यात्मिक शिक्षा पर इस जोर को छोड़कर हिन्दू, मुसलमान और सिख स्कूलों के बीच लगभग कोई अन्तर नहीं रह जाता।''

यह स्पष्ट है कि देशी भाषा–भाषी शिक्षा व्यवस्था देश की केन्द्रीय सत्ता द्वारा तैयार की गई किसी

सोची–समझी व्यवस्था पर आधारित नहीं थीं, और न ही किसी ऐसी बाहरी सत्ता से नियंत्रित थी। यह एक विकेन्द्रित व्यवस्था थी।

ये सभी स्कूल जिनमें स्कूल शिक्षकों का अपना स्थान था स्वयं ग्रामीण लोगों द्वारा चलाए जा रहे थे। यह पहलू महत्वपूर्ण है क्योंकि जैसे कि बाद में हम पाएँगे यह शिक्षा व्यवस्था इसी के कारण जीवन्त बनी रही।

तलिका क. 2 फारसी स्कूलों में शिक्षक और छात्र

जिला	फारसी और अरबी स्कूलों में शिक्षक		फारसी और अरबी स्कूलों में छात्र	
	हिन्दू	मुस्लिम	हिन्दू	मुस्लिम
मुर्शिदाबाद	–	19	62	47
बीरभूम	5	68	245	254
बर्दवान	7	101	452	519
दक्षिण बिहार	1	290	867	619
तिरहुत	1	237	470	128
कुल	14	715	2096	1567

ब्रिटिश व्यवस्था स्थानीय व्यवस्था में स्वतः स्फूर्तता का यह पहलू समझने में असमर्थ रही। फलस्वरूप वह जनता से अलग–थलग पड़ गई। ब्रिटिश शासकों द्वारा लागू की गई प्राथमिक शिक्षा ऊपर से लादी गई थी। इसे राज्य सरकार सीधे तौर पर, नियंत्रित और प्रशासित करती थी एक ऐसी सत्ता के सहारे जो देश की जनता के लिए विदेशी थी। फलस्वरूप स्थानीय पहल लुप्त हो गई।

यह देखना आवश्यक है कि निम्नलिखित अर्थों में स्थानीय प्राथमिक शिक्षा कितनी व्यापक थीः–

1. शिक्षा के अवसर अर्थात् स्कूलों की संख्या और उनका वितरण,

2. जनता के विभिन्न तबकों की उस व्यवस्था में हिस्सेदारी।

प्रश्न–1 मकतबों और सिन्ध के मुल्ला स्कूलों में आध्यात्मिक शिक्षा पर ज्यादा ध्यान दिया जाता था। इसके क्या कारण थे?

2. विकेन्द्रीकृत देशी शिक्षा व्यवस्था की विशेषताओं की सूची बनाइये।

शिक्षा के अवसर

शिक्षा सम्बन्धी अवसरों के बारे में डब्ल्यू. वार्ड का उन्नीसवीं सदी के प्रथम दशक में अवलोकन था– ''बंगाल के लगभग सभी बड़े गाँवों में सामान्य स्कूल हैं।'' इस सम्बन्ध में इस प्रदेश के जजों और मजिस्ट्रेटों 1801–02 में अपनी जाँच दर्ज की और वे वार्ड की प्रस्थापना की पुष्टि करते हैं। उन्होंने यह भी पाया कि बांग्ला पढ़ाने के लिए ग्रामीण स्कूलों की व्यापक व्यवस्था थी और निम्न स्थितियों के बच्चों का भी वे उल्लेख करते हैं। डब्ल्यू. एडम अपने फर्स्ट रिपोर्ट आन द स्टेट आफ एजुकेशन इन बेंगाल (बंगाल में शिक्षा की स्थिति पर प्रथम रिपोर्ट)

में कहते हैं, कि ''बंगाल और बिहार में प्रत्येक ग्राम–स्कूल में औसतन स्कूली उम्र के 63 बच्चे हैं। गाँवों की संख्या सरकारी तौर पर 1,50,748 बताई जाती है, जिनमें से सभी में तो नहीं, लेकिन अधिकतर में एक स्कूल तो है।'' एडम के अनुसार ''बंगाल और बिहार में ''स्थानीय'' वर्गों के लिए एक लाख से अधिक स्थानीय भाषा–भाषी स्कूल हैं।''

भारत के प्रथम शिक्षा कमीशन ने भी अपनी रिपोर्ट में दर्ज किया कि ''बंगाल में हमेशा ही बड़ी भारी संख्या में देशी स्कूल अस्तित्व में रहे हैं। 1881–82 में 50,000 निम्न प्राइमरी स्कूलों को विभागीय स्कूलों का दर्जा दिया गया था। वे मूल रूप से स्थानीय ग्रामीण स्कूल थे जिन्हें सहायता और जाँच के जरिए शिक्षा विभाग द्वारा विभागीय प्रणाली में शामिल कर दिया गया था। शिक्षा आयोग की बंगाल प्रादेशिक समिति की रिपोर्ट ने इस सम्बन्ध में स्वीकार किया कि ऐसी बात नहीं है कि विभाग ने कई नए स्कूलों की स्थापना की बल्कि सच्चाई यह है कि इतने सारे ऐसे देशी स्कूलों को विभाग से जोड़ा गया जो पहले से ही अस्तित्व में थे।'' वास्तव में उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दशक में बंगाल में विभागीय प्राइमरी स्कूलों के चमत्कारिक विकास के लिए देशी स्कूलों का विभागीय स्कूलों में रूपान्तरण ही ज़िम्मेदार है। इससे यह भी पता चलता है कि स्थानीय पाठशाला प्रणाली ब्रिटिश प्राइमरी शिक्षा व्यवस्था लागू किए जाने के बाद में बंगाल में काफी व्यापक थी।

लेकिन स्थानीय स्कूलों के विभागीय स्कूलों में परिवर्तन से इन स्कूलों की स्वतःस्फूर्तता और आन्तरिक जीवन्तता समाप्त हो गई। शिक्षकों द्वारा मार्गदर्शन और स्कूल संगठित करने में ग्रामीणों की भूमिका कम होती जा रही थी, क्योंकि बाहरी संस्था द्वारा नियंत्रण कम्पनी देश के शासक के रूप में स्वयं को स्थापित कर रही थी।

उपर्युक्त अवलोकन संक्रमण काल के दौरान, जब देश का ग्राम्य समाज परिवर्तन के दबाव से गुज़र रहा था, किए जा रहे थे। वैसे भी ब्रिटिश शासकों को भारत में जन शिक्षा की कोई चिन्ता नहीं थी। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि देशी जनशिक्षा व्यवस्था उस वक्त देश के सारे हिस्सों में व्याप्त थी जब ईस्ट इंडिया कम्पनी देश के शासक के रूप में स्वयं को स्थापित कर रही थी।

जनता के विभिन्न तबकों की शिक्षा व्यवस्था में हिस्सेदारी

इस व्यवस्था में जनता के विभिन्न तबके किस प्रकार भाग ले रहे थे यह अध्ययन का एक और मुद्दा है। एडम की तीसरी रिपोर्ट इसका कुछ अन्दाज़ा देती है। एडम ने बंगाल के तीन जिलों, मुर्शिदाबाद, बीरभूम और बर्दवान का सर्वेक्षण किया। वे बीरभूम और बर्दवान रिपोर्टों को पूर्ण मानते थे।

बर्दवान रिपोर्ट में कहा गया है कि जिले के 13 थानों में कुल 629 बांग्ला स्कूल थे। इनमें से सात एक गाँव में देखे गए, छह दूसरे में और पाँच तीसरे में। नौ गाँव ऐसे थे जिनमें से प्रत्येक में तीन–तीन स्कूल थे, और 466 में प्रत्येक में एक–एक।

शिक्षकों की संख्या 639 थी जो स्कूलों की कुल संख्या से दस ज्यादा थी। हिन्दू शिक्षकों में बहुमत उच्च जातियों का था जिनमे 369 कायस्थ, 107 ब्राह्मण, 50 सद्गोप, 30 अंगूरी, 13 वैष्णव , 10 तेली, 9 भट्ट, 6 गन्धवणिक, 5 कैवर्त्त, 4 चाण्डाल, 3 कुमार, 3 नापित, 2 सुवर्णवणिक, 2 ग्वाला, 2 बागडी, एक–एक ताती, दैवज्ञ, वैद्य युगी, बराई, कमर, मौर्य, धोबी, राजपूत और कालू थे। नौ मुस्लिम और तीन ईसाई अध्यापक थे।

यह याद रखा जाना चाहिए कि उच्च जाति के शिक्षक होने का यह अर्थ नहीं था कि वे आवश्यक रूप से उच्च वर्ग के भी थे। पर्याप्त तथ्यों की कमी के कारण हम ऊपरी जातियों को आम तौर पर ग्रामीण समुदाय के विशेषाधिकार प्राप्त तबकों का मान सकते हैं और इसमें कोई शक नहीं कि तीन ऊपरी जातियाँ अर्थात कायस्थ, ब्राह्मण और सद्गोप जिले की पाठशाला–प्रणाली पर छाए हुए थे।

बीरभूम जिले पर भी यही बात लागू होती है। वहाँ जिले के 412 स्कूलों के 412 शिक्षकों में 354 कायस्थ, ब्राह्मण और सद्गोप जातियों के थे। मुसलमान और ईसाई शिक्षकों की संख्या क्रमशः एक और चार थी। फिर भी यह सच है कि दोनों ही जिलों में ऐसे शिक्षक भी थे जो निम्नतम जातियों के थे, हालाँकि उनकी संख्या कम थी।

इन स्कूलों के छात्रों के सम्बन्ध में भी यही स्थिति देखने को मिलती है। बर्दवान जिले के 639 शिक्षकों द्वारा चलाए जाने वाले 629 स्कूलों में कुल औसतन 20.9 छात्र प्रति स्कूल के हिसाब से 13,190 छात्र थे। इनमें से लगभग आधे– 3429 ब्राह्मण, 1846 कायस्थ और 1254 सद्गोप 3 सर्वोच्च जातियों के थे जबकि 760 छात्र 16 निम्नतम जातियों के जैसे– कालू, सुनरी, बागडी, डोम, चाण्डाल, जालिया, धोबी, मोची, होरी, तियोर, लुहर, गरार, कूहन, मल, मतियो और पासी थे। 108 वैद्य और 161 क्षत्रिय छात्रों को छोड़ बाकी हिन्दू छात्र दूसरी नीची जातियों, जैसे अंगूरी, गन्धबनिक, तेली, ग्वाला, मोयरा, सुवर्णबणिक, तोत्ती, तमिल, कैवर्त्त, तिलि, नापित, वैष्णव, युगी, सुतार, कुमार, स्वर्णकार, छत्री, काँस्यबणिक, दैवज्ञ, बरई, संखबनिक, बैती, भट्ट, अग्रदानी, कुर्मी, कुस्यार और कुण्ड के थे। मुस्लिम एवं ईसाई छात्रों की संख्या क्रमशः 769 और 13 थी। बीरभूम की स्थिति भी इसी प्रकार की थी।

इस पाठशाला प्रणाली की अच्छी बात यह थी कि पढ़ाने का काम मुख्यतः लिखने वाले कायस्थ वर्ग के हाथों में था, न कि पुरोहित वर्ग के ब्राह्मणों के हाथों में। तालिका 1 से पता चलता है कि कैसे यह वर्ग दूसरों से अधिक संख्या में था।

जहाँ धार्मिक कर्मकाण्डों पर अभी भी ब्राह्मणों का प्रभुत्व था, वहीं पाठशाला व्यवस्था में पढ़ाने के काम पर कायस्थों का प्रभुत्व और मुस्लिमों एवं निम्नतम जातियों के हिन्दुओं की हिस्सेदारी के कारण वे धर्मनिरपेक्ष एवं जनतांत्रिक बने रहे।

यह उल्लेखनीय है कि देशी भाषा–भाषी स्कूलों की शिक्षा, व्यापार, वाणिज्य और कृषि से सम्बन्धित समुदायों के लिए फायदेमन्द थी क्योंकि वाणिज्य और कृषि हिसाब–किताब का इन स्कूलों के पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान था। चूँकि कायस्थ और सद्गोप जातियों का इन कार्यक्षेत्रों पर प्रभुत्व था, इसलिए देशी भाषा–भाषी शिक्षा पर प्रभुत्व भी इन्हीं का हो गया। लेकिन उच्चतर हिन्दू शिक्षा पर ब्राह्मणों का प्रभुत्व बना रहा ।

तलिका 3 : संसकृत स्कूलों में शिक्षक और छात्र

जिला	शिक्षकों की संख्या	छात्रों की संख्या
मुर्शिदाबाद	24	153
बीरभूम	59	393
बर्दवान	190	1358
दक्षिण बिहार	27	437
तिरहुत	56	214
कुल	**356**	**2555**

एक और महत्वपूर्ण पहलू पाठशाला–प्रणाली में निम्नतम जातियों की हिस्सेदारी था। एडम के अनुसार, छात्रों में डोम, केवट, होरी और दूसरी निम्न जातियों के लड़के भी शामिल थे, हालाँकि कम संख्या में। इससे शिक्षा की इच्छा का अच्छा प्रमाण मिलता है और साथ ही इसे आसानी से हासिल करने का भी। ये जातियाँ निम्न में भी निम्नतम हैं और पहले उनमें पढ़ने की इच्छा नहीं थी क्योंकि उन्हें इसके लायक नहीं माना जाता था।

मुर्शिदाबाद की रिपोर्ट में उन्होनें कहा ''इस आँकड़े से पता चलता है कि हिन्दू समाज के किन वर्गों में शिक्षा अधिक पाई जाती है और किन वर्गों में कम होती जा रही है। यह सोचना गलत होगा कि निम्न तबकों की स्थिति (उच्चतर तबकों) के मुकाबले कमज़ोर होती जा रही है.... वे मज़बूत होते जा रहे हैं, और धीरे–धीरे उस साधारण शिक्षा का महत्व समझ रहे हैं जो उनकी पहुँच के अन्दर है लेकिन जिससे परम्परा ने उन्हें बहुत दूर रखा हुआ था।''

कुछ प्रश्न

1. विचार करें कि देशज शिक्षा व्यवस्था समाज के हर वर्ग की व्यावहारिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किस हद तक उपयुक्त थी?

2. क्या देशज पाठशालाओं ने समाज के निम्नतम वर्ग के लोगों को भी आकृष्ट किया? यदि हां तो किस तरह?

निम्नतम जातियों के छात्रों को शाला लाने में शिक्षकों की भूमिका

ऐसा प्रतीत होता है कि पाठशालाओं के शिक्षकों ने निम्नतम जातियों के लोगों को स्कूलों मे लाने में बड़ी भूमिका अदा की। चूँकि शिक्षक छात्रों द्वारा दी जाने वाली थोड़ी–सी फीस पर निर्भर थे, इसलिए यह स्वाभाविक था कि वे छात्रों की संख्या बढ़ाना चाहते थे। वे उन गरीब और निम्नतम जातियों के छात्रों को अपने बच्चे स्कूलों में भेजने के लिए मनाते, जो आसानी से मानने को तैयार नहीं थे। यह सम्भव है कि ऐसे शिक्षकों के मन में जो गरीब और निम्न जातियों के थे, इनके छात्रों के स्कूल में भर्ती होने के प्रति कोई हिचकिचाहट नहीं थी।

एडम की रिपोर्ट से स्पष्ट है कि हालाँकि गरीब और निम्न जातियों के अधिकतर लोग अभी भी इस शिक्षा प्रणाली से दूर थे, फिर भी यह शिक्षा एक हद तक उन तक भी पहुँच रही थी, चाहे सीमित मात्रा में ही क्यों न हो। यह कम महत्व की बात नहीं थी कि बर्दवान जिले के 13,190 छात्रों में 6392 अर्थात् करीब 50 प्रतिशत निम्नतर जातियों के थे।

शिक्षा में लड़कियों की भागीदारी और अन्धविश्वास

फिर भी वास्तविकता यह है कि शिक्षा प्रणाली पर ऊपरी जातियों के लोगों का प्रभुत्व एवं नियंत्रण बना हुआ था। इसमें कोई शक नहीं कि ग्रामीण समाज के गरीब और निम्न जातियों के लोग पाठशाला प्रणाली में हिस्सेदारी की दृष्टि से यानी जनसंख्या में उनके छात्रों के अनुपात के अर्थों में उच्चतर वर्ग और जाति से कहीं पीछे थे। शिक्षा में लड़कियों की सीमित हिस्सेदारी के कारणों के बारे में एडम ''राजशाही में शिक्षा की स्थिति सम्बन्धी रिपोर्ट'' में कहते हैं: ''कहा जाता है कि अधिकांश हिन्दू परिवारों में एक अन्धविश्वास है, विशेष तौर पर स्त्रियों में, जिसे पुरुष समाप्त करने की कोशिश नहीं करते, कि पढ़ी–लिखी लड़की शादी के तुरन्त बाद विधवा हो जाती है।'' वे आगे कहते हैं, ''मुसलमानों में भी लड़कियों की पढ़ाई के बारे में इसी प्रकार के पूर्वाग्रह हैं; और वैसे ही उनकी अधिकतर आबादी अत्यन्त गरीबी में रहती है, और इसलिए चाहते हुए भी वे अपने बच्चों को शिक्षा नहीं दे पाते।''

प्रश्न

लड़कियों की शिक्षा में किस प्रकार की बाधाओं का उल्लेख मिलता है?

अधिकतर निम्न जातियों से आए गरीब रैयतों और ग्रामीण मज़दूरों की शिक्षा में बाधा पहुँचाने वाले कारकों के बारे में प्रामाणिक स्त्रोतों के न होने की स्थिति में हमें साहित्य का सहारा लेना पड़ता है।

पादरी लाल बिहारी दे द्वारा लिखित ''बेंगाल पेजेंट लाइफ'' (बंगाल का किसान जीवन) या ''गोविन्द सामन्त'' में उस समय के बंगाल के किसान जीवन का व्यापक चित्र प्रस्तुत किया गया है। वे अकाट्य सबूत पेश करते हैं कि कैसे सामाजिक रीति–रिवाज और धार्मिक अन्धविश्वास शिक्षा में कमज़ोर तबकों की हिस्सेदारी में बाधा पहुँचाते थे। लाल बिहारी का जन्म 1824 में बर्दवान जिले के सोनापलसी गाँव में हुआ था। यह पुस्तक 1872 में लिखित उनके लेख ''बेंगाल पेजेंट लाइफ'' (बंगाल का किसान जीवन) का बड़ा संस्करण है। यह उनके बचपन के संस्मरणों के आधार पर लिखा गया था।

बर्दवान के कंचनपुर गाँव में दो पाठशालाएँ थी; एक पाठशाला एक गरीब कायस्थ शिक्षक रामरूप चलाया करता, दूसरी एक ब्राह्मण पण्डित। आम तौर पर गरीब वर्ग अपने बच्चों को रामरूप की पाठशाला में भेजा करते जबकि उच्चतर वर्गों एवं जातियों के लड़के ब्राह्मण शिक्षक की पाठशाला में जाया करते।

धार्मिक बंधन और सामाजिक पूर्वग्रह

बदन एक मेहनतकश रैयत था। वह अपने बेटे गोबिन को रामरूप की पाठशाला में भेजना चाहता था। इसके लिए उसने अपनी माँ की सहमति लेनी चाही। पहले तो उसने इन्कार किया, क्योंकि प्रचलन के अनुसार उनकी स्थिति के लोगों के लिए शिक्षा की इच्छा रखना पाप जैसी चीज थी। साथ ही उसने बदन के बड़े भाई का उदाहरण दिया, जो स्कूल जाने के एक साल के भीतर ही मर गया था। माँ का विश्वास था कि पढ़ना सिर्फ ऊपरी वर्ग और जाति का ही अधिकार था।

इस सम्बन्ध में माता और पुत्र के बीच के वार्तालाप के कुछ अंश यहाँ हम प्रस्तुत कर रहे हैं:–

बदन : क्या यह अच्छा नहीं होगा माँ, कि गोबिन को अक्षर–ज्ञान हो ? मुझे तो चिट्ठी भी पढ़नी नहीं आती, न ही कबूलियत लिखना। यह बड़ी कमी है। मैं तो अपना नाम तक नहीं लिख सकता। अपनी अज्ञानता के कारण मैं नाम की जगह एक काट बना देता हूँ। मेरी आँखें हैं, लेकिन मैं देख नहीं सकता। मैं हर धोखेबाज गुमाश्ते का शिकार बनता हूँ और हर अत्याचारी जमींदार का। कितना ही अच्छा हो यदि गोबिन लिखना–पढ़ना सीख जाए, नहीं?

अलंगा : अरे बड़ा बदन! लिखने–पढ़ने की बात भी मत कर। तुम्हारे बड़े भाई को पाठशाला भेजा गया था। तुम्हारे पिता ने मेरी इच्छा के खिलाफ भेजा था। और क्या हुआ। स्कूल में एक ही साल के बाद भगवान उसे हमसे छीन ले गया। पढ़ना–लिखना हमारे जैसे गरीबों के लिए नहीं... मुझे तो डर लगता है कि... अगर तुम गोबिन को स्कूल भेजोगे तो... भगवान उसे भी हमसे छीन लेगा।

बदन ने पूछा : तो पढ़ने–लिखने वाले ब्राह्मणों और कायस्थ लड़के भी क्यों नहीं मर जाते?

अलंगा जवाब देती है : पढ़ना–लिखना ब्राह्मणों और कायस्थ का काम है। इसलिए भगवान उनसे नाराज नहीं होते। लेकिन हमारा काम तो ज़मीन जोतना है, और अगर हम इतना बड़ा होकर सोचने लगें कि पढ़ने की बातें करने लगें तो भगवान ज़रूर ही हमसे नाराज हो जाएँगे।... वह आगे कहती है, ''हम जन्म से ही ज़मीन जोतने वाले लोग हैं, और हमें सारा जीवन ज़मीन जोतना चाहिए। क्या तुम्हारे बुजुर्गों ने पढ़ना–लिखना सीखा था? तो, जो उन्होनें नहीं सीखा, वह बेटे क्यों सीखें?''

इस उदाहरण से पता चलता है कि धार्मिक बन्धनों एवं सामाजिक पूर्वग्रहों के कारण गरीब तबके के लोग शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकते थे। इसे आन्तरिक बाधाएँ माना जा सकता है।

आरामतलब ऊपरी तबके के लोग मेहनतकश वर्गों द्वारा उत्पादित अधिशेष पर ही ज़िन्दा रह सकते हैं। कब्जा कर लेने की यह प्रवृत्ति मेहनतकशों के दब्बूपन या निष्क्रियता का नतीजा है। इसे बल प्रयोग या दूसरे तरीके जैसे धर्म के सहारे हासिल किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में कोसाम्बी कहते हैं– ''हिंसा का ज़ोर कम करने में ब्राह्मण राज्य का एक प्रमुख अंग था; समर्पण का उसका उपदेश कुल प्रशासनिक खर्च को कम करता था। इस काल में वह इससे भी अधिक और कुछ था– जंगल से भरे क्षेत्रों में प्रवेश करने वाला प्रथम, हल पर आधारित ग्रामीण संस्कृति का प्रमुख हथियार।'' वे आगे कहते हैं, सामन्तवाद में जाति एक प्रशासनिक कार्य सम्पादित करती है और प्राथमिक उत्पादक को बिना अधिक बल प्रयोग के काम मे लगाए रखती है।

ज्ञान की इज़ारेदारी के फलस्वरूप ब्राह्मण ग्रामीण समाज के स्वाभाविक नेता बन गए। 'धर्म' के रक्षकों के रूप में वे धार्मिक और सामाजिक परम्पराओं तथा नियमों के व्याख्याता थे। साथ ही वे नियम–निर्माता भी बन गए। उच्चतर शिक्षा व्यवस्था से निम्नतर जातियों को अलग रखा गया क्योंकि इससे ब्राह्मणों की इज़ारेदारी समाप्त हो जाती। राजस्व पाने वाले भूस्वामी तबकों को इस पुरोहित वर्ग में अपना सहयोगी मिला। वे उन्हें कम या बिना किसी कर अदायगी के बड़ी उदारतापूर्वक भूमिदान करते और इस प्रकार वर्तमान सामाजिक ढाँचे को बनाए रखने के लिए उनका प्रयोग करते। यह अकारण ही नहीं है कि उच्चतर शिक्षा को जमींदारों की सहायता मिली, इतनी कि वह पूरी तरह उनके भूदान पर निर्भर हो गई जबकि पाठशाला–प्रणाली को शायद ही कभी उनसे मदद मिली। 'कर्म' सम्बन्धी ब्राह्मणवादी सिद्धान्त (जो सामाजिक ढाँचे में किसी का स्थान तय करता है), सामाजिक स्तरीकरण एवं उच्चतर वर्गों द्वारा अधिशेष पर नियंत्रण को उचित ठहराता है।

'भाज्य' का यह सिद्धान्त कैसे काम करता है, यह एक गरीब रैयत बोकाराम के शब्दों से स्पष्ट हो जाता है। उसने उसी गाँव कंचनपुर के एक और रैयत–नन्द द्वारा ज़मींदार के उत्पीड़न का विरोध करने के लिए धर्मघाट के निर्माण का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया।

बोकाराम : ''मैं धर्मघाट–कर्मघाट वगैरा कुछ नहीं जानता। मुझे इतना ही मालूम है कि अगर हम 'माथोट' नहीं अदा करते तो हम बरबाद हो जाएँगे। और फिर, भाग्य से लड़ना बेकार है। उसके ज़मींदार बनना उसका भाग्य है, और हमारे भाग्य में उसका रैयत बने रहना बदा है। इसलिए हमें उसके द्वारा हथियाने की करतूतों को सहते जाना है, चाहे वह उचित हो या अनुचित।'' हमने उपर्युक्त उदाहरण में पाया कि अपने अनुभव से सीखते हुए बदन ने अपना बेटे गोबिन को रामरूप की पाठशाला में भेजना चाहा ताकि उसे ज़मींदारी हिसाब–किताब से अवगत कराया जा सके, और इस प्रकार गोबिन बदन के समान ज़मींदार के गुमाश्ता की मर्ज़ी पर न रहे। लेकिन उसकी माँ अलंगा इसे स्वीकार न कर सकी, क्योंकि वह पारम्परिक रीति–रिवाजों में बंधी थी।

राजशाही रिपोर्ट में एडम के एक और अवलोकन से पता चलता है कि धार्मिक बन्धन और सामाजिक पूर्वाग्रह वर्गों से स्वतंत्र सार्वत्रिक श्रेणियाँ नहीं थीं।

एडम के अनुसार जहाँ अधिकांश हिन्दू एवं मुस्लिम परिवारों में स्त्री शिक्षा के खिलाफ पूर्वाग्रह थे, वहीं ''ज़मींदार अधिकतर इससे मुक्त थे। वे आमतौर पर अपनी लड़कियों को ज्ञान की प्राथमिक बातों से अवगत कराते थे, हालाँकि वे इसे आसानी से स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। वे अपनी लड़कियों की शादी धनी, खाते–पीते परिवारों में करना चाहते हैं। इसलिए वे समझते हैं कि लिखने और हिसाब–किताब रखने के ज्ञान के बिना उनकी लड़कियाँ अगर विधवा हो गईं तो स्वर्गवासी पतियों की सम्पत्ति की देखभाल करने में असमर्थ होंगी और अनिवार्यतः लालची लोगों का शिकार बन जाएँगी।''

वास्तव में धार्मिक बन्धन और सामाजिक पूर्वाग्रह समाज के उच्चतर तबकों की शिक्षा में न्यूनतम भूमिका अदा करते हैं। निम्न तबके के लोग भी इन बाधाओं को पार कर सकते हैं, लेकिन कहीं अधिक कठिनाई से जैसा कि बदन के साथ हुआ। फिर भी समाज के उच्चतर तबके ऐसी कोई भी बाधा कहीं अधिक आसानी से पार कर सकते हैं, यदि आर्थिक परिस्थिति का तकाज़ा हो। उदाहरण के लिए, उस वक्त के फारसी स्कूलों में हिन्दू छात्र मुस्लिमों से कहीं अधिक संख्या में थे। तालिका 2 से यह स्पष्ट हो जाता है जिसमें बंगाल और बिहार के कुछ जिलों में फारसी और अरबी स्कूलों में हर सम्प्रदाय के छात्रों की संख्या दी गई है।

कुछ प्रश्न

1 जमींदार वर्ग के लोगों ने 'पाठशाला–प्रणाली' के बजाय 'उच्चतर शिक्षा' को सहायता देने में क्यों रूचि दिखाई? ये सहायता किस प्रकार के थे?

2 जमींदार वर्गों में अन्य हिन्दू–मुस्लिम की तुलना में स्त्री शिक्षा के खिलाफ पूर्वाग्रह नहीं थे या कम थे। क्यों?

अधिकतर हिन्दू छात्र उच्चतर जातियों के थे। ब्राह्मण और कायस्थ सबसे अधिक थे। मुस्लिम शिक्षा संस्थाओं में हिन्दुओं की हिस्सेदारी अधिक स्पष्ट हो जाती है। तब तालिका 3 से तुलना करके हम पाते हैं कि उस वक्त के संस्कृत स्कूलों में शायद ही कोई मुस्लिम शिक्षक या छात्र रहा हो।

जहाँ संस्कृत स्कूलों में कुल छात्रों की संख्या फारसी और अरबी स्कूलों के छात्रों से कहीं कम थी, वहीं हिन्दू छात्रों की कुल संख्या मुस्लिम छात्रों से कहीं अधिक थी। फारसी और अरबी स्कूलों में हिन्दू छात्रों की कुल संख्या संस्कृत स्कूलों में सभी छात्रों की संख्या से सिर्फ 459 ही कम थी।

यह हमारी इस मान्यता की पुष्टि करता है कि उत्पादन साधनों के स्वामित्व तथा शैक्षणिक उपलब्धियों के बीच सकारात्मक सम्बन्ध है। इसमें दो राय नहीं कि मुगल काल में भी बंगाल में भूस्वामित्व मुख्य रूप से उच्च जातियों के हिन्दूओं के पास था जबकि किसान मुख्यतः मुस्लिम थे। मुस्लिम शासन मे यह स्वाभाविक था कि जाति, विचार और धर्म से परे उच्चतर तबकों के लोग शासकों की भाषा सीखें। और इसी कारण ब्रिटिश शासन के दौरान इन्हीं लोगों में अँग्रेज़ी सीखने की होड़ लगी। और ये ही उत्पादन साधनों के स्वामी लोग निम्न तबकों द्वारा धार्मिक नियमों के थोड़े भी उल्लंघन का विरोध किया करते थे। एक और महत्वपूर्ण प्रश्न आम जनता की शिक्षा की ओर उच्चतर तबकों का रूख था।

इस सम्बन्ध में गोविन्द सामन्त की एक और घटना हमें ठोस सबूत पेश करती है।

गोबिन्द अब एक बालिग व्यक्ति बन चुका था। उसे एक बार माथोट, जो एक प्रकार का अबवाब था, नहीं अदा करने के कारण जमींदार के आगे पेश किया गया। जब जमींदार ने सुना कि गोबिन की आरम्भिक शिक्षा रामरूप की पाठशाला में हुई थी तो उसने इसे गोबिन के दुस्साहस का कारण माना। वह गुस्से से लाल–पीला हो गया और गाँव के स्कूल मास्टर रामरूप को किसानों के बेटों को आगे पढ़ाने से मना कर दिया। उसने धमकी दी कि यह आदेश नहीं मानने पर उसकी बची हुई टाँग भी चली जाएगी।

आम जनता की शिक्षा के प्रति ग्रामीण समाज के उच्चतर तबकों का रुख, जैसा कि इस उदाहरण से पता चलता है, कोई अपवाद नहीं बल्कि आम बात थी और इसे बाहरी बाधा माना जा सकता है।

इस सम्बन्ध में बंगाल प्रादेशिक शिक्षा आयोग, 1884 के सामने पेश कुछ गवाहियों पर ध्यान देना उचित

होगा। इससे इस समस्या पर कुछ प्रकाश पड़ता है। प्रश्न संख्या तीन में आयोग जनशिक्षा की ओर उच्चतर वर्ग का रूख जानना चाहता था। बर्दवान के मजिस्ट्रेट डब्ल्यू. आर. लारमिनी ने अपने बयान में कहाः

''जहाँ तक मेरा अनुभव है, उच्चतर वर्गों के कुछ ही लोग प्राथमिक स्कूलों में खास दिलचस्पी लेते हैं। उच्चतर सभ्यता का दम्भ भरने वाले कइयों में कुछ तो निम्न वर्गों की किसी भी शिक्षा का विरोध करते हैं; वे समझते हैं कि इससे निम्न तबके के लोग अपनी स्थिति से असन्तुष्ट हो जाएँगे और वे शायद इस विचार के भी हैं कि ये तबके तब इतनी आसानी से चुपचाप दमन नहीं सहेंगे।''

बाबू द्वारकानाथ गांगुली ने कहा, ''प्राथमिक शिक्षा के प्रसार की ओर प्रभावशाली वर्ग आम तौर पर मित्रतापूर्ण रूख नहीं अपनाते..... उन्हें डर है कि ऐसी शिक्षा से जनता पर उनका नियंत्रण कमजोर हो जाएगा।'' पादरी जे. डी. भटटाचार्य के अनुसारः ''उनमें से कई (उच्चतर वर्ग के लोगों मे से कई) कहते हैं कि जब तक उन्हें अज्ञानी रखा जाएगा तब तक वे हमारी बात मानेंगे, लेकिन यदि वे ज्ञान अर्जन कर लेगें तो अपने अधिकारों के लिए हमारे साथ संघर्ष करेंगे।''

स्तरीकृत समाज में जनशिक्षा के रास्ते में ढाँचागत और विचारजनित बाधाओं के ये कुछ उदाहरण हैं। हमारी चर्चा के इस हिस्से को समाप्त करने से पहले हमें एक और तथ्य पर विचार करना हैः प्रेरणा का प्रश्न। इसे दूसरी तरह से भी पेश किया जा सकता है– शिक्षा क्यों?

निस्सन्देह स्तरीकृत समाज में, शिक्षा का अर्थ विभिन्न तबकों के लिए अलग–अलग होता है।

प्राक्–ब्रिटिश काल में ग्रामीण समाज में चार मुख्य वर्गों की पहचान की जा सकती हैः 1. ज़मींदार और अपनी जीविका के लिए उन पर सीधे तौर पर निर्भर एजेंट एवं सहयोगी; 2. रैयत या खेती करने वाला वर्ग; 3. दस्तकार और व्यापारी; तथा 4. मजदूर।

ज़मींदार और उनके सहयोगी शिक्षा को मात्र अपना ही अधिकार तथा विशेषाधिकार मानते थे। समाज में अपनी प्रभुत्वकारी स्थिति बनाए रखने एवं शोषण की मशीनरी चलाने के लिए कुछ शिक्षा की जरूरत थी। वे उच्चतर शिक्षा की सहायता करते थे क्योंकि यह उस सामाजिक रचना को बरकरार रखने के लिए ज़रूरी था, जो ऐसा आरामतलब तबका तैयार करता जो एक ओर तो उनकी विशिष्ट स्थिति को वैध ठहराए और दूसरी ओर निम्नतर जातियों को उनकी दासता स्वीकार करने को मनवा ले।

लेकिन भू–अधिकारों के लिए तथा ज़मींदारों के अत्याचारों का विरोध करने एवं अपनी सम्पत्ति की देखभाल करने के लिए रैयतों को लिखने और हिसाब–किताब रखने की कम से कम जानकारी होनी जरूरी थी। मजदूरों का ही एकमात्र वर्ग था जिसे अपने बच्चों की पढ़ाई का कोई उद्देश्य नज़र नहीं आता; उनके पास न बचाने के लिए कोई सम्पत्ति थी और न ही शिक्षा के जरिए अपनी स्थिति बेहतर बनाने की कोई सम्भावना।

ज़मींदारों और रैयतों के वर्ग–हित एक–दूसरे के बिलकुल विपरीत थे, और शिक्षा की प्रेरक भावनाएँ भी अलग–अलग थीं। ऐसी परिस्थिति में सार्वत्रिक शिक्षा के बारे में सोचा भी नहीं जा सकता था। शिक्षा वर्ग–शिक्षा थी, और इसलिए इस क्षेत्र में एक से दूसरे वर्ग में अन्तर था।

ज़मींदार और पढ़े–लिखे वर्ग अपना सामाजिक अलगाव बनाए रखना चाहते थे, इसलिए बच्चों को घरों में ही विद्वान पण्डितों द्वारा पढ़ाया जाना अधिक पसन्द करते थे। इसीलिए ग्राम पाठशालाएँ चलाने में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं थी। दूसरी ओर, रैयतों तथा छोटे व्यापारियों के लिए अपने बच्चों को पाठशाला में भेजना अधिक लाभदायक था। और स्वाभाविक रूप से वे पाठशाला–प्रणाली के असली निर्माता थे जबकि मजदूर हाशिए पर रह गए।

इस बात के बावजूद कि धार्मिक बन्धन, सामाजिक पूर्वाग्रह और जनशिक्षा की ओर उच्चतर तबकों का शत्रुतापूर्ण रवैया निम्न वर्गों की देसी भाषा–भाषी शिक्षा के रास्ते में कई बाधाएँ पहुँचा रहे थे, यह सच है कि इस व्यवस्था ने समाज में जड़े जमा लीं। आखिर, सदियों के सहयोग के कारण जनता इस प्रणाली से वाकिफ थी। इसके अलावा पारम्परिक व्यवस्था के अन्दर सामाजिक गति दिख पड़ रही थी। जैसा कि एडम ने कहा, ''देसी स्कूलों में निम्न जातियों के लोगों की संख्या इतनी है, जिससे पता चलता है कि निम्न वर्गों में पढ़ाई के जरिए अपनी स्थिति सुधारने और फायदे बढ़ाने के लिए दूसरे कारण एवं प्रक्रियाएँ काम कर रही हैं।''

इन परिस्थितियों मे परम्परागत प्रणाली से दूर जाने का मतलब था अनावश्यक जटिलताएँ पैदा करना, जिसमें जनता के अलगाव का खतरा था। ऐसे स्कूलों की प्रणाली और उनका स्थानीय प्रशासन एक ओर तो केन्द्रीय प्रशासन का वित्तीय और प्रशासनिक भार कम करती और दूसरी ओर जनता की हिस्सेदारी आसान बनाती है।

कुछ दस्तावेज़ों से यह पता चलता है कि हालाँकि ब्रिटिश शासकों ने देसी शिक्षा प्रणाली के फायदे को महसूस किया, फिर भी भारत को गुलाम बनाने की उनकी नीति इस प्रणाली को जारी रखने की इजाज़त नहीं देती थी।

शुरू में ही जब ईस्ट इंडिया कम्पनी ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी हासिल करके नागरिक सत्ता अपने हाथों में ली तो पूर्ण विनाश की प्रक्रिया शुरू हो गई। इस दौर को आर. पी. दत्त ने ''वाणिज्यीय पूँजीवाद'' बताया, जिसमें कम्पनी का एकमात्र उद्देश्य व्यापार के नाम पर देश को लूटना था। इसे देश के अच्छे प्रशासन की कोई चिन्ता नहीं थी। वास्तव में 1813 तक ईस्ट इंडिया कम्पनी ने शिक्षा की चिन्ता ही नहीं की। षब्रिटिश व्यापारी जो इस देश से व्यापार करने के और इसके राजस्व पर नियंत्रण बना रहे थे, यहाँ विदेशी लोगों की– जिन पर उसका शासन था–शिक्षा की चिन्ता नहीं करते थे। ''मुगलों के काल की भू–राजस्व शोषण व्यवस्था अभी भी प्रचलित थी। अन्तर यही था कि वह और भी कठोर हो गई थी और शासित जनता की बिना किसी जिम्मेदारी के प्रचलित थी, और देसी शिक्षा–प्रणाली उपेक्षित होती जा रही थी।

यह दिलचस्प बात है कि स्थानीय व्यवस्था का पतन अपने आप नहीं हुआ। इसे अँग्रेज़ शासकों की सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था ने पूरी तरह समाप्त कर दिया। उन्होंने ब्रिटिश मॉडल पर प्राथमिक स्कूल से उच्चतर शिक्षा व्यवस्था लागू की। यह पाठशाला–प्रणाली से पूरी तरह अलग थी। शिक्षा के सम्बन्ध में मुक्त नीति साम्राज्यवादी सत्ता के लिए खतरनाक थी। इस तथाकथित ''सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली'' ने आखिरकार स्थानीय प्रणाली को विकृत कर अपने अन्दर शामिल कर लिया। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि 1881–82 में विभागीय संस्थाओं के रूप में पेश 50,000 निम्न प्राइमरी स्कूल, मूल रूप में स्थानीय ग्रामीण स्कूल थे। यह केन्द्रीकृत प्राथमिक शिक्षा प्रणाली उस स्वतः स्फूर्तता से वंचित थी जो देसी शिक्षा प्रणाली का जीवन था।

इसमें कोई अचरज की बात नहीं कि ''छानकर अलग करने'' की नीति से जनित उन्नीसवीं सदी के बुद्धिजीवियों ने इस नई प्रणाली का स्वागत किया।

अभ्यास कार्य

1. प्राक ब्रिटिश काल के ग्रामीण समाज की शिक्षा के विस्तार पर आर्थिक–सामाजिक दृष्टि से निबंध लिखिए।
2. अंग्रेजों के भारत आगमन के पूर्व भारतीय शिक्षा व्यवस्था समाज के हर वर्ग की व्यवहारिक आवश्यकता की पूर्ति करती थी। समझाइये।

| | | | | | | | | |

अध्याय – 16
दस्तावेजों से

अध्याय की रूपरेखा

- सामान्य परिचय
- अध्याय का उद्देश्य
- आधुनिक भारत में शिक्षा व्यवस्था
  - चार्ल्स ग्रांट
  - राजा राममोहनराय
  - मैकाले
- अभ्यास कार्य

राजा राममोहन राय

चार्ल्स ग्रांट

लार्ड मैकॉले

सामान्य परिचय

आधुनिक भारत में शिक्षा व्यवस्था कैसी हो, छात्रों को क्या पढ़ाया जाए इस पर उन्नीसवीं शताब्दी की शुरुआत में काफी बहस हुआ। कुछ लोगों का मानना था कि छात्रों को संस्कृत, फारसी जैसी भाषा व हिन्दू व इस्लामी शास्त्र पढ़ाया जाना चाहिए। अन्य लोगों का मत था कि इनकी जगह अँग्रेज़ी व आधुनिक विज्ञान पढ़ाया जाना चाहिए यहा इन तीन दस्तावेज़ों के अंश दे रहे हैं जो अँग्रेज़ी शिक्षा की पैरवी कर रहे थे।

अध्याय के उद्देश्य

1 आधुनिक भारत की शिक्षा व्यवस्था के संबंध में विभिन्न विद्वानों के विचारों से अवगत होना।

2 चार्ल्स ग्रान्ट, राजा राममोहन राय तथा मैकाले के आधुनिक शिक्षा संबंधी विचारों का तुलनात्मक विश्लेषण करना।

आधुनिक भारत में शिक्षा व्यवस्था

चार्ल्स ग्रान्ट

भारतीय समाज का पुनरूद्धारण हमारा परम कर्तव्य है। भारतीय अज्ञान के कारण गलत राह पर हैं। वहाँ इसाई धर्म, अँग्रेज़ी शिक्षा तथा पाश्चात्य विज्ञान व कला के प्रसार से यह अँधकार दूर हो सकेगा।

राजा राममोहन राय 11 दिसंबर 1823

लार्ड अम्हर्स्ट को पत्र

हमें पता चला है कि सरकार पण्डितों के निर्देशन में एक संस्कृत पाठशाला खोल रही है जिसमें ऐसा ज्ञान दिया जाएगा जो

भारत में पहले से वैसा ही चला आ रहा है। ऐसी पाठशाला युवाओं के दिमाग में सिर्फ व्याकरण के बारीक नियम और दूसरे लोक का ज्ञान भर सकती हैं और ऐसा कुछ नहीं दे सकती जो विद्यार्थी या समाज के लिए व्यवहारिक रूप से उपयोगी हों।

चूँकि सरकार का उद्देश्य स्थानीय लोगों को बेहतर बनाना है इसलिए वह गणित, दर्शन शास्त्र, रसायन शास्त्र, शरीर रचना शास्त्र, और दूसरे उपयोगी विज्ञान को बढ़ावा दे। यह काम यूरोप में शिक्षित व्यक्तियों को नियुक्त करके और पुस्तकों व उपकरणों से सुसज्जित कालेज बनाकर पूरा किया जा सकता है।

प्रश्न

चार्ल्स ग्रान्ट तथा राजा राममोहन राय ने आधुनिक भारत की शिक्षा व्यवस्था में अंग्रेजी शिक्षा के पक्ष में क्या तर्क दिए?

मैकाले

सभी इस बात से सहमत हैं कि भारतीय बोलियों में कोई साहित्यिक, वैज्ञानिक सामग्री उपलब्ध नहीं है और वे बोलियाँ जब तक दूसरी भाषाओं से अनुवाद नहीं करेंगी, वे विकसित नहीं होगी। यह सभी लोग मानते हैं कि जो लोग उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं उनके लिए कोई अन्य भाषा सीखना ही उपयुक्त रहेगा। यह कौन सी भाषा हो सकती है। कुछ हमारे साथी मानते हैं कि यह भाषा अँग्रेज़ी होना चाहिए और कुछ यह मानते हैं कि वह संस्कृत या अरबी होना चाहिए। अगर हम इन भाषाओं में उपलब्ध साहित्य की तुलना करते हैं तो स्पष्ट हो जाता है कि जिन भाषाओं में उत्कृष्ट साहित्य, वैज्ञानिक तथ्य उपलब्ध हों, व्यापक मुद्दों पर विचार विमर्श हों उनमें यूरोपीय भाषा ही अग्रणी हैं। उनमें अँग्रेज़ी ही सबसे उपयुक्त है। दर्शन, नीति, शासन, कानून, व्यापार, पूर्ण व सही जानकारी हर विज्ञान के बारे में, स्वास्थ्य के बारे में, जिनसे किसी भी व्यक्ति की बुद्धि का विकास हो – जो कोई भी इस भाषा को जाने उसके सामने दुनिया की सबसे समझदार देशों द्वारा पीढ़ियों से संचित ज्ञान खुल जाता है। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि पिछले तीन सौ सालों में जो साहित्य इस भाषा में रचा गया है वह उसके पूर्व में दुनिया भर में सभी भाषाओं में रचित सामग्री से अधिक समृद्ध है।

भारतीय खुद इस भाषा को सीखने व ज्ञान अर्जित करने के लिए आतुर हैं। अगर हम भारतीयों को इस भाषा से दूर रखते हैं तो हम न केवल उन्हें वंचित रखते हैं बल्कि उन्हें उस अध्ययन में झोंक देंगे जिससे वे खुद ऊब गए हैं। यह इस बात से प्रमाणित होता है कि हम अरबी व संस्कृत सीखने वाले छात्रों को छात्रवृत्ति देकर पढ़ाते हैं जबकि जो लोग अँग्रेज़ी सीखना चाहते हैं वे पैसा देकर सीखने के लिए तैयार हैं। जो लोग यह दलील देते हैं कि भारतीय अपनी भाषा व साहित्य को ही सीखना पसन्द करेंगे, वे हमें पूरे भारत में ऐसा एक छात्र दिखा दें जो अपनी ही बोली को सीखने के लिए बिना हमारे पैसे दिए तैयार हों।

पिछले साल जिन छात्रों को हमने छात्रवृत्ति देकर संस्कृत पढ़ाई थी, ने हमें एक अर्ज़ी दी कि उन्होंने 12 साल अध्ययन पर खर्च किया है और उसके आधार पर कोई जीविका नहीं मिल रही है और वे चाहते हैं कि शासन उन्हें वज़ीफा दे। यानी जिन्हें हमने पैसा खर्च करके शिक्षित किया वे उसके लिए हमसे मुआवज़ा माँग रहे हैं, क्योंकि उनका जीवन व्यर्थ हो गया। मेरा मानना है कि वे सही कहते हैं।

मेरे पास एक और निर्णायक दलील है। हमने बड़े खर्च से पुरानी संस्कृत व अरबी पुस्तकों को प्रकाशित किया है। लेकिन इन्हें खरीदने के लिए कोई तैयार नहीं है। वे गोदामों में सड़ रही हैं। हम उन्हें मुफ्त भी नहीं बाँट पा रहे हैं।

यह दलील दी जाती है कि हमें उनके धर्म व आस्थाओं का सम्मान करना चाहिए और उसमें दखल नहीं देना चाहिए। मेरा मानना है कि हम किसी प्रकार की शासकीय मदद उन लोगों को नहीं देंगे जो भारतीयों में

इसाई धर्म का प्रचार कर रहे हैं, और आगे भी यही नीति अपनाते रहेंगे। लेकिन क्या हम दूसरी ओर शासकीय पैसे से उन लोगों को उनके पुरातन व अन्धविश्वासी ग्रन्थों का अध्ययन करवाते रहें।

यह भी दलील दी जाती है कि भारतीय अँग्रेज़ी ठीक से नहीं सीख सकते हैं अतः उन्हें उनकी ही भाषा सिखाना चाहिए। यह सरासर गलत दलील है – भारतीयों ने यह सिद्ध किया है कि वे हमारे ही जैसी अँग्रेज़ी सीखकर हमसे संवाद कर सकते हैं।

हमारे पास जितना पैसा शिक्षा के लिए उपलब्ध है उससे हम पूरे देश के लोगों को शिक्षित नहीं कर सकते हैं। लेकिन हम उनमें से कुछ को हमारे व करोड़ों शासितों के बीच अनुवादक के रूप में तैयार कर सकते हैं – जो रंग व खून में भारतीय हों मगर स्वाद, विचार, नैतिकता व बुद्धि से अँग्रेज़ हों। उस वर्ग के हाथ हम इस बात के लिए छोड़ दें कि वे अपनी बोलियों को परिष्कृत करें व वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद से समृद्ध करें ताकि लोगों तक यह ज्ञान पहुँचे।

अन्त में मेरा आग्रह है कि बनारस व दिल्ली में जो संस्कृत व अरबी कालेज स्थापित किए गए हैं, उन्हें बनाए रखें व अन्य ऐसी संस्थाओं (कलकत्ता व पूणे के) को बन्द कर दें। उससे बचे धन से तीनों प्रान्तों में अच्छी तरह अँग्रेज़ी पढ़ाने के लिए स्कूलों को स्थापित करें।

1. राजा राममोहन राय ने अँग्रेज़ी शिक्षा का समर्थन क्यों किया?

2. मैकॉले ने संस्कृत व अरबी ग्रन्थ पढ़ाने के विरोध में क्या–क्या दलीलें दीं?

3. लगभग 150 साल के अनुभवों के बाद आज आप क्या राममोहन राय व मैकॉले के बातों से सहमत हैं? आपके क्या विचार है?

| | | | | | | | |

अध्याय – 17

उपनिवेशवाद और प्रभुत्व के सिद्धान्त की तरह शिक्षा

अविजित पाठक

अध्याय की रूपरेखा

- सामान्य परिचय
- अध्याय के उद्देश्य
- अठारहवीं सदी की भारतीय शिक्षा
  - शिक्षा की समृद्ध परम्परा
  - ग्रामीण स्कूली व्यवस्थाएँ
  - शिक्षा के अन्य केन्द्र
  - 18 वीं सदी की भारतीय शिक्षा पर घर्मपाल का अध्ययन
  - ईस्ट इंडिया कम्पनी और देशी स्कूली व्यवस्था
  - भारतीय शिक्षा पर चार्ल्स ग्रांट के विचार
  - चार्ल्स ग्रांट के किचारें का प्रभाव
  - मैकाले और आधुनिक /यूरोपीय शिक्षा के
  - विचार
  - मैकाले और सांस्कृतिक साम्राज्यवाद
  - 7 मार्च 1835 का आदेश
  - अंग्रेजी शिक्षा पर विभिन्न विद्वानों के विचार
  - उपनिवेशवाद और पुनर्जागरण की प्रतिक्रिया
  - शिक्षा के क्षेत्र में ज्योतिबाफूले के विचार
- अभ्यास कार्य

सामान्य परिचय

उपनिवेशवाद का मतलब है नियंत्रण। यह विश्व को ऊपर–नीचे की श्रेणियों में बाँट देता है। यह उपनिवेशक को विशेषाधिकार प्रदान करता है; उसे इतनी शक्ति देता है कि वह अपने अधीन लोगों का दमन कर सके। और यह हिंसा केवल शारीरिक नहीं होती; उपनिवेशवाद को नैतिक/सांस्कृतिक/सांकेतिक हिंसा से अलग नहीं किया जा सकता। अधीनस्थ लोग आमतौर पर हताशा में जीते हैं। उनके लिए खुद में आस्था रख पाना मुश्किल हो जाता है। वे खुद को कमतर मानने लगते हैं तथा ताकत, हिम्मत, शिक्षा, सभ्यता–वस्तुतः सभी सकारात्मक गुणों को अपने औपनिवेशिक स्वामियों के साथ जोड़कर देखते हैं। यह बताने की ज़रूरत नहीं कि औपनिवेशिक शिक्षा इस वैचारिक उपकरण का महत्वपूर्ण अंग होती है। जब हम औपनिवेशिक शिक्षा के इतिहास को देखते हैं तो हमें एहसास होता है कि किस तरह शिक्षा ने औपनिवेशिक स्वामियों की गतिविधियों को वैधता देने की इस प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। अँग्रेज़ी/आधुनिक शिक्षा (औपनिवेशिक स्वामियों की दी हुई 'भेंट') प्रदान करना मुख्यतः सांस्कृतिक आक्रमण की कार्यवाही थी। इसने हमारी सभ्यता के सभी आदर्शों की निन्दा की और सिर्फ पश्चिमी विचारों को ही ज्ञान का दर्ज़ा दिया; यह शिक्षा हमारी अपनी शैक्षिक विरासत के इतिहास के प्रति संवेदनशील नहीं थी। इसके अलावा इस शिक्षा ने बड़े कुशल ढंग से उपनिवेशवाद को वैधता प्रदान की।

अध्याय के उद्देश्य

1 अठारहवीं सदी में भारत की शिक्षा व्यवस्था के स्वरूप को समझना।

2 पूर्वाभिमूखी शिक्षा तथा पश्चिमी शिक्षा के अंतर को समझते हुए देशी शिक्षा की विशेषताओं से अवगत होना।

3 देशी स्कूली व्यवस्था के प्रति ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रारम्भिक समर्थन के कारणों पर विचार करना।

4 भारतीय शिक्षा पर चार्ल्स ग्रांट के विचारों से अवगत होना।

5 सांस्कृतिक साम्राज्यवाद और मैकाले की शिक्षा व्यवस्था के मध्य संबंधों को पहचानना।

6 अंग्रेजी शिक्षा के प्रति विभिन्न विद्वानों के विचारों को जानना।

7 उपनिवेशवाद और पुनर्जागरण की प्रतिक्रिया को विशेष जातियों के संदर्भ में देखना।

8 शिक्षा के क्षेत्र में ज्योतिराव फुले के विचारों से अवगत होना।

उपनिवेशवाद के साथ दंभ का जुड़ा होना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं थी। अपने 'सभ्य बनाने के मिशन' के दावे को मजबूती प्रदान करने के लिए इस शिक्षा ने भारत में चल रहे 'अंधकार युग' के बारे में बात की। हम 'अंधकार युग' की बात में निहित झूठ को आसानी से समझ सकते हैं, क्योंकि जैसा कि हम बता चुके हैं भारत के पास पढ़ाई और शिक्षा की समृद्ध परंपरा थी। इतना ही नहीं, ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा किए गए अध्ययनों तक ने यह दिखाया है कि औपनिवेशिक आक्रमण के समय भारत में पढ़ने की संस्कृति का व्यापक प्रसार था। उदाहरण के लिए, 1835–38 के काल के बंगाल प्रेसीडेंसी पर आधारित विलियम ऐडम की रिपोर्ट (1941) को लें। यह रिपोर्ट शिक्षा के महत्व के बारे में समाज में, विशेषकर ऊपरी तबके के लोगों में, व्याप्त सामान्य जागरुकता का उल्लेख करती है। ऐडम के इस कथन से शिक्षा को दिए जाने वाले महत्व और उससे जुड़ी गरिमा के बारे में पता चलता है:

ग्रामीण स्कूली व्यवस्था

हम ऐडम की रिपोर्ट से यह भी जान जाते हैं कि देशी प्राथमिक स्कूल दो प्रकार के थे। पहले प्रकार के स्कूलों को उनका प्रमुख (आर्थिक) सहयोग किसी एक अकेले सम्पन्न परिवार के संरक्षण से प्राप्त होता था, और दूसरे प्रकार के स्कूल उस कस्बे अथवा गाँव के समुदाय के आम सहयोग पर निर्भर करते थे जहाँ वे स्थापित होते थे। उसने अनुमान लगाया था कि उन्नीसवीं सदी की शुरूआत में बंगाल प्रेसीडेंसी में 1,00,000 देशी प्राथमिक स्कूल थे। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि औसतन, स्कूल जाने वाली उम्र के हर 73 बच्चों पर एक, तथा हर 30 या 32 लड़कों पर एक ग्रामीण स्कूल था। रिपोर्ट में लिखा है :

ऐसा लगेगा कि ग्रामीण स्कूलों की व्यवस्था का व्यापक रूप से प्रचलन है, (और यह) कि अपने लड़कों को शिक्षित करने की लालसा दीनतम वर्गों तक के माता–पिता के मन में बहुत गहरे से बसी होगी; और ये वे संस्थाएँ हैं जो लोगों की आदतों और देश की परम्परा के साथ नज़दीकी तौर पर जुड़ी हुई हैं।

कुछ प्रश्न

1. उपनिवेशवाद क्या है? आमतौर पर लोगों पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है?
2. विलियम एडम की रिपोर्ट 1741 के अनुसार शिक्षा के महत्व का उल्लेख कीजिए।
3. एडम रिपोर्ट के अनुसार देशी प्राथमिक स्कूल दो प्रकार के थे, इन स्कूलों को समाज के किन–किन वर्गों से संरक्षण प्राप्त था?

शिक्षा के अन्य केन्द्र

इन प्राथमिक स्कूलों – पाठशालाओं और मदरसों–के अलावा संस्कृत, अरबी और फारसी में ऊँचे दर्ज़े की पढ़ाई के लिए ऐसे कई केन्द्र उपलब्ध थे जो अठारहवीं सदी के दौरान फले–फूले। संस्कृत सीखने के प्रमुख केन्द्र

थे बनारस, उज्जैन, तिरहुत, नदिया, राजशाही, तंजौर और त्रिवेन्द्रम। इस्लामी पढ़ाई के लिए तीन महत्वपूर्ण केन्द्र थे जयपुर, लखनऊ और पटना। ऐडम के अनुसार कलकत्ता में संस्कृत सीखने के लिए 28 शिक्षणालय थे और सन् 1818 में वहाँ 173 विद्यार्थी अध्ययनरत थे; नदिया में सन् 1801 में 31 शिक्षणालय थे जिनमें 747 विद्यार्थी पढ़ते थे। राजशाही में 1834–35 में ऐडम ने पाया कि संस्कृत अध्ययन के 38 कॉलेज, हिन्दू कानून के 19, सामान्य साहित्य के 13, तक्रशास्त्र के 2, तथा वेदान्त, तांत्रिक, पौराणिक और चिकित्सा अध्ययन के 4 कॉलेज थे।

प्रश्न

औपनिवेशिक काल में भारतीय शिक्षा ब्रिटिश शिक्षा से किस प्रकार भिन्न थी?

18 वीं सदी की भारतीय शिक्षा पर धर्मपाल का अध्ययन

इस सन्दर्भ में अठारहवीं सदी के देशी भारतीय शिक्षा पर धर्मपाल द्वारा किया गया अध्ययन काफी प्रासंगिक हो जाता है। वे उन रिपोर्टों/सर्वेक्षणों पर ध्यान केन्द्रित करते हैं जो ब्रिटिश आधिकारियों और कर्मचारियों द्वारा किए गए थे– मुख्यतः बंगाल और बिहार पर ऐडम की रिपोर्ट, मद्रास प्रेसीडेंसी में किया गया मुनरो का सर्वेक्षण और पंजाब में शिक्षा की दशा पर लाइटनर द्वारा हासिल की गई जानकारियाँ। वे तीन बातें कहते हैं–

1. शिक्षा की दशा–वे इस भ्रम का खण्डन करने का प्रयत्न करते हैं कि जब ब्रिटिश लोग भारत को उपनिवेश बनाने के लिए आए तो यहाँ शिक्षा की दशा अत्यन्त दयनीय थी। बल्कि वे दर्शाते हैं कि भारतीय स्कूली शिक्षा कई तरह से इंग्लैण्ड की तात्कालिक स्कूली शिक्षा से बेहतर थी। यह सच है कि इंग्लैण्ड में 16वीं सदी, 17वीं सदी या फिर 18वीं सदी के शुरुआती दौर में शिक्षा की समृद्ध परम्परा थी। ऑक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज और ऐडिनबर्ग विश्वविद्यालय शिक्षा के केन्द्र थे। इसके अलावा, उस समय वहाँ फ्राँसिस बेकन, शेक्सपियर, मिल्टन और न्यूटन जैसे चिन्तक/दार्शनिक भी हुए। और 18वीं सदी के अन्त आते–आते इंग्लैण्ड में लगभग 500 व्याकरण स्कूल थे। फिर भी, जैसा कि धर्मपाल का मानना है कि, यह सारी महत्वपूर्ण पढ़ाई और विद्वता कुछ बेहद चुनिन्दा सम्भ्रान्त लोगों के तबके तक सीमित थी[ष]। और उस समय भारत में क्या हालात थे?

शिक्षा की विषयवस्तु उस समय इंग्लैण्ड में पढ़ाई जा रही विषयवस्तु से बहुत अलग प्रतीत नहीं होती। पढ़ाई की अवधि ज्यादा लम्बी होती थी.... स्कूलों में पढ़ने वालों की संख्या 1800 में इंग्लैण्ड के सभी प्रकार के स्कूलों में पढ़ने वाले लोगों की संख्या से आनुपातिक तौर पर कहीं ज़्यादा थी।

एडम के अनुसार, 1830 के दशक में बंगाल और बिहार में 1,00,000 ग्रामीण स्कूल थे। और मुनरो के अनुसार, मद्रास प्रेसीडेंसी के हर गाँव में स्कूल था। इसके अलावा, जैसा कि ये रिपोर्ट भी सुझाती है, अध्ययन की अवधि न्यूनतम पाँच साल से लेकर अधिकतम 15 साल तक होती थी। इसकी भी पुष्टि की गई कि अपने 13वाँ साल पूरा करने के पहले ही, पढ़ाई की विभिन्न शाखाओं में उनके द्वारा हासिल की गयी उपलब्धियाँ असाधारण रूप से महान होती है। इसके अलावा, स्कूल काफी घण्टों तक चला करता था; आमतौर पर प्रातः 6 बजे शुरू हो जाता था, इसके बाद भोजन इत्यादि के लिए एक या दो छोटे अन्तराल होते थे, और सूर्यास्त या उसके बाद तक भी पढ़ाई चलती रहती थी।

2. शिक्षा की पहुंच– धर्मपाल इस मत के खिलाफ प्रमाण देते हैं कि भारत में शिक्षा हिन्दूओं के बीच मुख्यतः ब्राह्मणों तक, एवं मुसलमानों में शासक वर्ग तक सीमित थी। पर वास्तविक स्थिति काफी अलग थी। कम से कम हिन्दुओं में तो स्थिति अलग थी ही। मद्रास प्रेसीडेंसी के ज़िलों (और वह भी तमिल बोले जाने वाले इलाकों के) तथा बिहार के दो ज़िलों में स्थिति यह थी कि जिन्हें शूद्र कहा जाता था, या जो जातियाँ उनसे भी नीची मानी जाती थीं, उनका ऊपर बताए गए क्षेत्रों में उस समय चल रहे हज़ारों स्कूलों में बोलबाला था'। उदाहरण के लिए एडम की रिपोर्ट का एक आश्चर्यजनक रहस्योद्घाटन था कि बर्द्धमान ज़िले में 61 डोम और 61 चाण्डाल विद्यार्थी थे; उनकी संख्या करीब–करीब वैद्य (वैश्य) छात्रों के बराबर ही थी।

3. शिक्षा की प्रकृति– धर्मपाल चाहते हैं कि हम इस प्रचलित धारणा पर पुनर्विचार करें कि भारत में शिक्षा की प्रकृति अधिकांशतः धार्मिक थी; अर्थात् उसमें व्यावहारिक/तकनीकी शिक्षा की कमी थी। जिन दस्तावेज़ों पर धर्मपाल का शोध आधारित है उनमें ऊँचे दर्ज़े की शिक्षा के मुद्दे पर काफी कुछ दिया गया है, खास तौर पर धर्मशास्त्रों, कानून, चिकित्सा, अन्तरिक्ष विज्ञान और ज्योतिष के बारे में परन्तु भारत में मौजूद तकनीकों और कलाओं के प्रशिक्षण के बारे में बिरले ही चर्चा की गई है। इसका सम्भावित कारण यह हो सकता है कि जिन लोगों ने शिक्षा पर लिखा–चाहे सरकारी प्रशासक हों, यात्री हों या ईसाई मिशनरी हों– उन्हें इस बात में कोई खास दिलचस्पी नहीं थी कि किस तरह ऐसी कलाएँ सिखाई जाती थीं, या फिर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के सुपुर्द की जाती थीं। इसके अलावा जैसा कि धर्मपाल का मानना है, कि अधिकांश कलाएँ घर में ही सीखी जाती थीं, और जिसे ब्रिटेन में एप्रेन्टिसशिप कहा जाता था, वह भारत में सीखने का एक अनौपचारिक तरीका था जहाँ आमतौर पर माता–पिता ही शिक्षक होते थे एवं बच्चे विद्यार्थी। तकनीकी व कलाओं के शिक्षण के बारे में जानकारी में कमी का यह एक और कारण हो सकता है।

धर्मपाल इस बात पर खेद व्यक्त करते हैं कि अधिकांश शिक्षित भारतीय इस बात से अनभिज्ञ हैं कि दो शताब्दी पहले भी भारत के पास शिक्षा के क्षेत्र में देने को क्या कुछ नहीं था। ''इसने (अज्ञान ने) भारत के लोगों के आम जीवन में न सिर्फ आत्मविश्वास की कमी की प्रवृत्ति पैदा की है, बल्कि उन्हें दिशाहीन भी बनाया है।'' यह निश्चित ही दुख की बात है कि उपनिवेशवाद, थॉमस बैबिंगटन मैकॉले जैसे अपने विचारों के साथ, हमारी विरासत की जड़ें खोद सका, हमें हतोत्साहित कर सका और साम्राज्यवादियों की नैतिक/संज्ञानात्मक श्रेष्ठता स्थापित कर सका।

प्रश्न

अठारहवीं सदी के भारतीय शिक्षा पर धर्मपाल के अध्ययन में क्या कहा गया है–

1. शिक्षा की दशा पर?
2. शिक्षा की पहुंच पर?
3. शिक्षा की प्रकृति पर?

ईस्ट इंडिया कम्पनी और देशी स्कूली व्यवस्था

यह सच है कि शुरुआत में ईस्ट इंडिया कम्पनी आधुनिक/यूरोपीय शिक्षा पर प्रसार करने के प्रति उत्सुक नहीं थी। बल्कि, उसने देशी स्कूली व्यवस्था का समर्थन करने और उसे बढ़ावा देने की उत्सुकता दिखाई थी। उदाहरण के लिए 1781 में, वॉरेन हैस्टिंग्ज़ ने कलकत्ता मदरसा स्थापित किया और भारतीय–ईरानी संस्कृति के प्रति अपने आकर्षण को उजागर किया। मदरसे में पढ़ाए जाने वाले पाठ्यक्रमों में प्राकृतिक दर्शनशास्त्र, कुरानी धर्मशास्त्र, कानून, रेखागणित, अंकगणित, तर्कशास्त्र और व्याकरण शामिल थे, और ये सभी इस्लामिक आधार पर पढ़ाए जाते थे। शिक्षा का माध्यम अरबी भाषा थी। इसी तरह, 1784 में सर विलियम जोन्स ने कलकत्ता में एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल की स्थापना की। जैसा कि जोन्स का कहना था, इसके पीछे एशिया को जानने की उत्सुकता थीः ''(जो) विज्ञान की पालक, आनन्ददायी और उपयोगी कलाओं की आविष्कारक, भव्य कार्यों की भूमि, मानवीय मेधा की उपजाऊ उत्पादक, प्राकृतिक आश्चर्यों से भरपूर, और धर्म तथा सरकार के प्रकारों में, कानूनों में, रहन–सहन में, रीति–रिवाज़ों में और व्यक्ति के आकार–प्रकार में असीमित रूप से विविध (थी)'' (घोष 1993:177 में उद्धृत)। यूरोप के लिए भारत को खोलने की वही कहानी आगे बढ़ी जब 1792 में जोनाथन डंकन ने हिन्दुओं के कानूनों व साहित्य को सुरक्षित रखने व संवारने के लिए बनारस में संस्कृत कॉलेज की स्थापना की। ऐलफिंन्सटोन ने भी ठीक यही किया जब उन्होंने 1820 में पूना में एक हिन्दू कॉलेज की स्थापना की।

इस पड़ाव पर हमें एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाने की ज़रूरत हैः इस पूर्वाभिमुखी मार्ग का गहरा अर्थ क्या था? क्या यह केवल प्रेम व सहिष्णुता की भावना से किया गया कार्य था; देशी ज्ञान व्यवस्था को समझने और उसका आदर करने की स्वाभाविक प्रेरणा थी? कुछ लोगों के लिए यह बात स्वीकार्य हो सकती है। फिर भी, असली बात तो यही है कि इस पूर्वाभिमुखी रास्ते को अपनाने के पीछे कई राजनैतिक उद्देश्य थे। ईस्ट इंडिया कम्पनी अभी तक अपने बारे में निश्चिंत नहीं थीं। अतः स्थानीय सम्भ्रान्त लोगों की सद्भावना हासिल करना महत्वपूर्ण था। उन्हें यह विश्वास दिलाना ज़रूरी था कि ब्रिटिश लोग सांस्कृतिक आक्रमणकारी नहीं थे। इसके अलावा, जैसा कि अपर्णा बसु ने दर्शाया है, कि ईस्ट इंडिया कम्पनी के लिए यह ज़रूरी था कि वे देश पर शासन करने में उन्हें मदद कर सकने वाले 'ऐसे भारतीय अफसर ढूँढ़ सकें जो संस्कृत, फारसी व अरबी का अच्छा खासा ज्ञान रखते हों। दूसरे शब्दों में, देशी शिक्षा व्यवस्था में यह संलग्नता भी राजनैतिक तौर पर भारतीय उपमहाद्वीप को नियंत्रित करने के मंसूबे का ही एक हिस्सा थी।

भारतीय शिक्षा पर चार्ल्स ग्रांट के विचार

पूर्वाभिमुखी शिक्षा को प्रोत्साहन देने की नीति से हर व्यक्ति खुश नहीं था। इसके बजाय, यह महसूस किया गया कि इस ''पतनोन्मुख'' सभ्यता को सुधारने के लिये अँग्रेज़ी/आधुनिक शिक्षा को लागू करने की ज़रूरत थी। चार्ल्स ग्रान्ट निश्चित ही एक निर्णायक मोड़ था– आंग्ल नीति को बढ़ावा देने के पीछे मौजूद शक्तिशाली बल। ग्रान्ट, जो लगभग चालीस सालों से कलकत्ता व लन्दन में ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रशासन से जुड़ा हुआ था, ने 1792 में अपना प्रसिद्ध शोध प्रबन्ध (Observations on the state of society among the Asiatic Subjects of Great Britian, particularly is respect to morals, and the means to improve it.) ग्रेट ब्रिटेन के आश्रित एशियाई देशों की सामाजिक दशाओं पर किए गए अवलोकन, खासतौर पर नैतिकचर्या के सम्बन्ध में; तथा उसको सुधारने के तरीके) लिखा। ग्रान्ट के दस्वावेज का एजेण्डा केवल शैक्षिक ही नहीं था; वह मुख्यतः भारतीय संस्कृति और सभ्यता पर दिया गया फैसला था। इसने औपनिवेशक स्वामियों के दम्भ, तथा सांस्कृतिक विजय की उनकी दबाई ना जा सकने वाली तीव्र इच्छा को उजागर किया। ग्रान्ट ने हिन्दुओं पर बेईमान, भ्रष्टाचारी, धोखेबाज, आपसी वैमनस्य रखने वाले तथा अविश्वासी होने का आक्षेप लगाया। ग्रान्ट ने लिखा, ''हिन्दू गलती करते हैं क्योंकि वे अज्ञानी हैं।''

आश्चर्य नहीं है कि पूर्वाभिमुखी शिक्षा को लेकर अपनी समीक्षा में ग्रान्ट का रुख बहुत स्पष्ट था। उसका मानना था कि, ईस्ट इंडिया कम्पनी की कोई मज़बूरी नहीं थी कि वह हिन्दुओं के पंथ की रक्षा करे जो न केवल भयानक था बल्कि ''तर्क, नैतिकता और धर्म के पहले सिद्धान्तों का विनाशक'' भी था। ग्रान्ट के लिए जवाब साफ था। उसका मानना था कि भारत को ईसाईयत, आधुनिक विज्ञान और यूरोपीय साहित्य की आवश्यकता थी। वह चाहता था कि अँग्रेज़ी अधिकारिक भाषा हो, इसके अलावा उसने ''अच्छे नैतिक चरित्र'' वाले शिक्षकों के अधीन अँग्रेज़ी स्कूलों की स्थापना किए जाने की वकालत की। यह मुख्यतः ग्रान्ट की अपील का ही परिणाम था कि ब्रिटिश संसद में एक बिल लाया गया ताकि भारतीयों के निर्णायक बदलाव के लिए धर्म प्रचारकों और स्कूल शिक्षकों को भारत भेजा जा सके। पर फिर, कम्पनी के अधिकारियों को लगा कि इस तरह का कदम उठाने से देश में राजनैतिक अस्थिरता पैदा हो जाएगी। उन्होंने इस बिल की निन्दा की। और संसद के दोनों सदनों में अपने कुछ सम्बन्धों के चलते वे इस बिल को पराजित करने में कामयाब हो गए।

फिर भी, ग्रान्ट के विचार महत्वपूर्ण थे क्योंकि वह बदलते समय की भाषा बोल रहा था। वह ब्रिटेन में उभरते हुए पूँजीवादी वर्ग, व भारत में छिपे उसके आर्थिक हितों से पूरी तरह से वाकिफ था। गान्ट का मानना था कि अँग्रेज़ी शिक्षा स्थानीय लोगों में ब्रिटिश सामानों के प्रति रूचि पैदा कर देगी। दूसरे शब्दों में, वह वाणिज्य तथा शिक्षा में नज़दीक सम्बन्ध देख रहा था। यह समझना भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि ग्रान्ट तर्क के युग का व्यक्ति था जब आधुनिक यूरोप का अपने प्रति, अपनी वैज्ञानिक उपलब्धियों और अपनी तर्कशक्ति के प्रति भरोसा बढ़ता

जा रहा था। इसी भरोसे के चलते इस औपनिवेशिक शक्ति का अपने (दूसरों को) 'सभ्य बनाने' के मिशन के प्रति विश्वास बढ़ाः अपने ज्ञान, तार्किकता और विज्ञान के चलते पश्चिम को यह अधिकार था कि वह बाकी दुनिया को शिक्षित बनाए!

प्रश्न

वाणिज्य तथा शिक्षा में चार्ल्स ग्रांट किस प्रकार के संबंध देखते थे?

चार्ल्स ग्रांट के विचारों का शिक्षा पर प्रभाव

बिल के खारिज हो जाने के बावजूद ईस्ट इंडिया कम्पनी के लिए चार्ल्स ग्रान्ट द्वारा उठाई गई माँगों– अर्थात् शैक्षिक रुपान्तरण और उसके परिणाम स्वरूप भारतीय सभ्यता में होने वाला 'सुधार – को रोक पाना मुश्किल होता जा रहा था।

उदाहरण के लिए 1813 में कम्पनी के चार्टर में एक खण्ड डाला गया जिसके द्वारा गवर्नर जनरल के लिए यह ''बाध्यकारी तो नहीं, लेकिन विधि संगत'' हो गया कि वह शिक्षा के लिए एक लाख रुपए तक की राशि निर्धारित कर सकता था। हालाँकि, यह उल्लेख किया गया था कि यह राशि साहित्य के पुनरुद्धार व सुधार पर तथा शिक्षित भारतीयों को प्रोत्साहित करने पर खर्च की जाएगी, पर साथ ही यह भी तय किया गया कि राशि का एक भाग स्थानीय लोगों के बीच विज्ञान के अध्ययन की शुरुआत करने और उसे बढ़ावा देने पर खर्च किया जाएगा।

मैकाले और आधुनिक/यूरोपीय शिक्षा

यह समय उपयोगितावादियों का भी था। 1817 में कम्पनी के साथ नज़दीकी तौर से जुड़े मशहूर उपयोगितावादी जेम्स मिल ने अपनी कृति ब्रिटिश भारत का इतिहास प्रकाशित किया जिसमें एक पक्के औपनिवेशिक स्वामी की तरह उसने भारतीय सभ्यता, उसकी संस्कृति, धर्म और ज्ञान व्यवस्था की निन्दा की। ईस्ट इंडिया कम्पनी के मामलों में उसके प्रसिद्ध बेटे जॉन स्टुअर्ट मिल–एक और उपयोगितावादी– की उपस्थिति ने भारत में आधुनिक/यूरोपीय शिक्षा के विचार को और बढ़ावा दिया। और थॉमस बैबिंगटन मैकॉले के उद्भव से चीज़ें आमूल रूप से बदल गईं। मैंकॉले उपयोगितावादी था; वह उपयोगितावादी गवर्नर जनरल विलियम बैंटिंक के साथ नजदीकी तौर पर जुड़ा हुआ था। बल्कि, वह बैंटिक की परिषद का कानूनी सदस्य था। आधुनिक/अँग्रेज़ी शिक्षा की श्रेष्ठता में मैकॉले का भरोसा अडिग था। मैकॉले जानता था कि उपनिवेशवाद को कैसे वैधता प्रदान की जाए तथा उसके 'सभ्य बनाने' के मिशन को कैसे उचित ठहराया जाए। वह यह साबित करने के लिए आतुर था कि आधुनिक/अँग्रेज़ी शिक्षा ब्रिटिश सभ्यता की तरफ से एक उपहार होगी; उसके मानवतावाद तथा राजनैतिक परहितवाद की प्रतीक।

10 जुलाई , 1833 को उसने ब्रिटिश संसद में अपना प्रसिद्ध भाषण दिया। उसने कहाः... ऐसी शक्ति का क्या अर्थ जो अवगुणों, अज्ञानता, और दुर्दशा पर आधारित हो? उसका क्या अर्थ, यदि हम उसे केवल उन सर्वाधिाक पवित्र कर्तव्यों का उल्लंघन करके ही बनाए रख सकें, जिनके लिए हम शासकों की हैसियत से शासितों के प्रति उत्तरदायी हैं, और जिनके लिए सामान्य से कहीं ज़्यादा राजनैतिक स्वतंत्रता व बौद्धिक ज्ञान से सम्पन्न लोगों की हैसियत से हम उस जाति के प्रति उत्तरदायी हैं जिसे तीन हज़ार सालों से तानाशाही व पुरोहिती प्रपंचों ने नष्ट किया हुआ है? हमारा स्वतंत्र होना, हमारा सभ्य होना किसी अर्थ का नहीं, यदि हम मानव जाति के किसी भी हिस्से के द्वारा इसी स्तर की स्वतंत्रता और सभ्यता हासिल करने के प्रति अनिच्छा रखते हैं।

प्रश्न

मैकाले का भारत में अंग्रेजी शिक्षा को बढ़ावा देने का क्या उद्देश्य था?

बैंटिंक को पता था कि वह मैकॉले पर निर्भर कर सकता है। 1823 में स्थापित की गई सार्वजनिक शिक्षण की सामान्य समिति, प्राच्यवादियों व आंग्लावादियों में बँटी हुई थी। दोनों समूहों ने जनवरी 1833 में बैंटिंक से अपील की। और, बैंटिंक ने कानूनी सदस्य एवं सार्वजनिक शिक्षण समिति के अध्यक्ष की दोहरी भूमिकाओं में काम कर रहे मैकॉले से अपने विचार बताने को कहा। इसका नतीजा था मैकॉले का प्रसिद्ध 2 फरवरी, 1835 का ब्यौरा।

मैकाले और सांस्कृतिक साम्राज्यवाद

चार्ल्स ग्रान्ट की तरह मैकॉले भी सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का हिमायती था। उसके मन में हमारी संस्कृति, धर्म या ज्ञान के लिए ज़रा सा भी सम्मान नहीं था। वह पूर्वाभिमुखी शिक्षा की संस्थाओं को जारी रखने के खिलाफ था क्योंकि उसके अनुसार ये संस्थाएँ कोई भी उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं करती थीं। उसने वकालत की कि पूर्वाभिमुखी किताबों की छपाई बन्द कर देना चाहिए, दिल्ली और बनारस को छोड़कर सभी जगह के प्राच्यवादी कॉलेजों को बन्द कर देना चाहिए तथा सारी छात्रवृत्तियाँ रोकी जानी चाहिए। मैकॉले अँग्रेज़ी शिक्षा की श्रेष्ठता के बारे में निश्चित था। उसका मानना था कि अँग्रेज़ी को शिक्षा का माध्यम होना चाहिए, क्योंकि.... भारत के इस हिस्से के रहवासियों के बीच आमतौर पर बोली जाने वाली भाषाओं में, न तो साहित्यिक न ही वैज्ञानिक जानकारी होती है, इसके अलावा वे इतनी तुच्छ व असभ्य हैं कि जब तक उन्हें किसी दूसरे स्त्रोत के द्वारा समृद्ध नहीं किया जाता, तब तक उनमें किसी मूल्यवान रचना का अनुवाद करना आसान नहीं होगा।

मैकॉले को न तो संस्कृत का कोई ज्ञान था न ही अरबी का। फिर भी उसने दम्भ से यह कहाः ''एक अच्छे यूरोपीय पुस्तकालय की अलमारी का एक खण्ड उतना ही मूल्यवान है जितना भारत और अरब का पूरा स्थानीय साहित्य''। उसका मानना था कि अँग्रेज़ी शिक्षा एक उपयोगी उद्देश्य पूरा करेगी। यह भारतीयों को सभ्य व शिक्षित बनाएगी; और फिर वे शासकों व शासितों के बीच मध्यस्थ का काम करेंगे और साथ ही जनसाधारण के बीच ज्ञान का प्रसार कर पाएँगे।

मैकॉले के अनुसारः

अभी हमें पूरा प्रयास करना चाहिए कि ऐसा वर्ग तैयार हो सके जो हमारे, एवं हमारे द्वारा शासित लाखों लोगों के बीच मध्यस्थ का काम कर सके, एक ऐसा वर्ग जो रक्त और वर्ण से तो भारतीय हो, पर अपनी पसन्द, राय, आचरण और बुद्धि के हिसाब से अँग्रेज़ हो। और फिर इसी वर्ग के ऊपर हम यह कार्य छोड़ सकते हैं कि वे देश की स्थानीय बोलियों को परिष्कृत करें, पश्चिमी शब्दकोष से लिए गए पदों से इन बोलियों को समृद्ध बनाएँ और धीरे–धीरे उन्हें ऐसे उपयुक्त वाहन प्रदान करें कि वे जनता की विराट आबादी तक ज्ञान पहुँचा सकें।

7 मार्च 1835 का आदेश

कोई शक नहीं कि बैंटिंक उपयोगितावाद में अपने दृढ़ विश्वास के कारण, मैकॉले के ब्यौरे से खुश था। मैकॉले ने लड़ाई जीत ली तथा बैंटिंक ने 7 मार्च, 1835 को आदेश पारित कियाः महामहिम की यह राय है कि ब्रिटिश सरकार का महान उद्देश्य भारत के निवासियों के बीच यूरोपीय साहित्य व विज्ञान को प्रोत्साहन देना होना चाहिए, और शिक्षा के उद्देश्य के लिए निर्धारित की गई राशियों का सबसे बेहतर उपयोग होगा उन्हें अँग्रेज़ी शिक्षा के लिए उपयोग में लाना।

बैंटिंक का आदेश कम्पनी की आर्थिक ज़रूरतों के मुताबिक था। वह जानता था कि ईस्ट इंडिया कम्पनी गम्भीर आर्थिक संकट से गुज़र रही थी। उसका एक प्रमुख दायित्व था बचत करना। और चूँकि व्यय का एक प्रमुख स्त्रोत ब्रिटिश अधिकारियों की ऊँची तनख्वाह थी, उसने न्यायिक/राजस्व शाखाओं में अधीनस्थ कर्मचारियों के रूप में भारतीयों को नियुक्त करने के बारे में सोचा। ऐसे भारतीयों के लिए अँग्रेज़ी जानना आवश्यक था।

मैकॉले की शिक्षा नीति, जैसा कि हम प्रमाणित करना चाहते हैं, एक निर्णायक मोड़ थी। इसने उपनिवेशवाद के 'सभ्य बनाने' के मिशन को वैधता दी, पश्चिम के सांस्कृतिक प्रभुत्व को बढ़ावा दिया और, सर्वोपरि रूप से, एक ऐसी सोच पैदा की जो दास भाव से पश्चिम–उसके मूल्यों, संस्कृति, और धर्म–पर निर्भर करती थी। वास्तव में, लॉर्ड हार्डिंग गलत नहीं था जब 1844 में उसने रानी विक्टोरिया को यह लिखा–

पश्चिमी साहित्य हिन्दुओं के बीच उनके स्कूलों और कॉलेजों में पढ़ा जाने वाला सबसे पसन्दीदा अध्ययन है। वे एकदम बारीकी के साथ ब्रिटिश इतिहास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटनाओं की चर्चा करते हैं। 15 वर्षीय काले रंग के लड़के शेक्सपियर के सबसे पंसदीदा उद्धरण सुना देते हैं, साथ ही अँग्रेज़ और जर्मन टीकाकारों की टिप्पणियाँ भी उद्धृत कर देते हैं।

शिक्षा/अंग्रेजी शिक्षा पर विभिन्न विद्वानों के विचार

यह सच है कि हर व्यक्ति ने मैकॉले द्वारा प्राच्य ज्ञान की निन्दा किए जाने को ठीक नहीं माना। उदाहरण के लिए, हम जानते हैं कि वुड्स डिस्पैच (1854) की क्या राय थीः कि पूर्वाभिमुखी संस्थाएँ ''ऐतिहासिक और पुरातनिक उद्देश्यों'' के लिए ज़रूरी थी। वुड्स डिस्पैच ने हिन्दू और मुस्लिम कानूनों को पढ़ने के लिए प्राच्य भाषाओं की महत्ता पर जोर दिया। हंटर आयोग (1884) भी स्थानीय ज्ञान व्यवस्था के पक्ष में प्रतीत हुआ। फिर भी, इन ''रियायतों'' के बावजूद तथ्य यही था कि आधुनिक/अँग्रेज़ी शिक्षा की संज्ञानात्मक श्रेष्ठता के विचार को कोई चुनौती नहीं थी। वुड्स डिस्पैच ने भी स्पष्ट ढंग से यह कहा कि शिक्षा की प्रकृति ''यूरोप की उन्नत कलाएँ, विज्ञान और साहित्य'' होना चाहिए और यह भी कहा कि पूर्वी प्रणालियाँ गम्भीर त्रुटियों से भरी पड़ी हैं।

वस्तुतः अँग्रेज़ी शिक्षा के प्रलोभन से बच पाना मुश्किल था; शिक्षित भारतीय भी इसे चाहते थे। 'नवजागरण' पुरुष, राजा राममोहन राय अँग्रेज़ी शिक्षा में अन्तर्निहित सम्भावना इन्कार नहीं कर सके। यह नहीं भूलना चाहिए कि 1823 में रॉय ने कलकत्ता में संस्कृत कॉलेज की स्थापना किए जाने की मुखाल्फत की थी। असल में रॉय उस युग की मनोदशा को प्रगट कर रहे थे। उभरते हुए मध्यम वर्ग के लिए अँग्रेज़ी शिक्षा गतिशीलता का स्त्रोत, व आधुनिकता को अनुभव करने का मौका थी।

पोरोमेश आचार्य ने शानदार ढंग से दर्शाया है कि कैसे बंगाली भद्रलोक उन्नीसवीं सदी के बंगाल में आधुनिक/अँग्रेज़ी शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए औपनिवेशिक स्वामियों के साथ गठजोड़ में शामिल थे। भद्रलोक–नए युग के ''वायदों'' से प्रलोभित महत्वाकांक्षी वर्ग– के लिए समाज के व्यापक वर्गों के हितों का कोई मतलब नहीं था। और जैसा कि आचार्य हमें याद दिलाते हैं, कोई आश्चर्य नहीं कि इन लोगों ने गवर्नर जनरल मेयो एवं लेटिनेंट गवर्नर जॉर्ज कैम्पबेल द्वारा जनसाधारण के बीच देशी शिक्षा का प्रसार करने के प्रयासों का भी विरोध किया था। चाहे विद्यासागर हों या राजेन्द्रलाल मित्रा, केशव चन्द्र सेन हों वर्ग हितों के पूर्ति होते देखी। अपने हितों को सुरक्षित रखने के चक्कर में, उन्होने सम्भ्रान्तवादी शिक्षा के नकारात्मक प्रभावों– उसके औपनिवेशिक चरित्र, उसके दम्भ तथा व्यापक समुदाय के अनुभवों के प्रति उसकी उदासीनता को अनदेखा कर दिया। अधिकांश भारतीय युवाओं– खासतौर पर कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में– ने तो इस शिक्षा में विभिन्न ब्रिटिश प्रतिष्ठानों में रोजगार पाने का मौका देखा।

कुछ प्रश्न

1 वुड्स डिस्पेच–1854 तथा हंटर आयोग–1884 में शिक्षा/अंग्रेजी शिक्षा के बारे में क्या कहा गया है?

2 राजा राममोहन राय के अंग्रेजी शिक्षा के प्रति क्या विचार थे?

3 उपनिवेश काल में अधिकांश भारतीय युवा वर्ग अंग्रेजी शिक्षा के बारे में क्या सोचते थे?

तीन बिन्दु ध्यान में रखने लायक हैं:

1. **किताबी चरित्र की अंग्रेजी शिक्षा–** अँग्रेज़ी शिक्षा की चकाचौंध के बावजूद इसके भारतीयों की तथाकथित तकनीकी/वैज्ञानिक ज्ञान हासिल करने में कोई मदद नहीं की जो औद्योगिक विकास परियोजना को पूरा करने के लिए आवश्यक था ऐसा इसलिए क्योंकि अँग्रेज़ी शिक्षा का चरित्र मुख्यतः किताबी था। उदाहरण के लिए, 1832 में हिन्दू कॉलेज, कलकत्ता की प्रथम वर्ष की कक्षा के पाठ्यक्रम में के विषय थेः इतिहास, मुख्यतः यूनान, रोम, इंग्लैण्ड व आधुनिक यूरोप का; गणित तथा भूगोल। इसलिए बार–बार यह कहा गया कि पाठ्यक्रम को हमारी व्यावहारिक ज़रूरतों के हिसाब से ढालने की ज़रूरत है। वुड्स डिस्पैच ने भी शिक्षण के पूर्णतः किताबी चरित्र की कमज़ोरियों की बात की और कानून, चिकित्सा तथा इंजीनियरिंग के क्षेत्र में व्यावसायिक प्रशिक्षण की ज़रूरत पर ज़ोर दिया। हंटर आयोग ने भी व्यावसायिक शिक्षा को बहुत महत्ता दी। इसी तरह, कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग (1917) ने अपने पाठ्यक्रमों में व्यावहारिक विज्ञान व प्रौद्योगिकी को शामिल करने का आग्रह किया। लेकिन, इन अनुशंसाओं के बावजूद उत्पादक गतिविधियों में सार्थक कार्य करने हेतु ज़रूरी तकनीकी–व्यावसायिक कौशल शिक्षित भारतीयों को उपलब्ध नहीं थे। बल्कि, मार्टिन कार्नाय गलत नहीं था जब उसने कहाः

ब्रिटिश हुकूमत ने भारतीय लोगों में अर्थशास्त्र, प्रौद्योगिकी, विज्ञान और राजनीति के बुनियादी सिद्धान्तों की गहरी समझ विकसित करने की कोशिश नहीं की; इसके बजाय वे अपने शिष्यों को अँग्रेज़ी साहित्य, दर्शन शास्त्र व तत्व मीमांसा (मैटाफिजिक्स) की अत्यन्त दासोचित व नकलची ढंग से नकल करने, व उन्हें उद्धृत करने के लिए मज़बूर करके सन्तुष्ट हो जाते थे।

2. **भारतीयों का सरकारी नौकरियों पर निर्भरता–** किताबी शिक्षा को दिए जाने वाले अत्यधिक महत्व के कारण शिक्षित भारतीय सरकारी नौकरियों पर बहुत अधिक निर्भर करते थे, और उनके लिए ज़्यादा विकल्प मौजूद नहीं रह गए थे। इसके अलावा, 1857 में कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में तीन विश्वविद्यालयों की स्थापना के साथ ही उम्मीदवारों की संख्या बढ़ना शुरू हो गई। इसके चलते नौकरियों की कमी हो गई और शिक्षित युवाओं में कुण्ठा पनपने लगी। आश्चर्य नही कि देश के कई हिस्सों में एक आन्दोलन शुरू हो गया जिसका उद्देश्य था भारतीय सिविल सेवा परीक्षाओं में बैठने के पात्र होने की अधिकतम आयु को 21 वर्ष से घटाकर 19 वर्ष कर देने के निर्णय का विरोध करना। कहने की ज़रूरत नहीं कि ब्रिटिश सरकार यह राजनैतिक उठापटक, और शिक्षित भारतीयों के बीच बढ़ रहा असंतोष ठीक नहीं लगा। इसी समय हंटर आयोग ने सुझाया कि सरकार को ऊँचे दर्ज़े की शिक्षा के क्षेत्र से पीछे हट जाना चाहिए। आखिर, हंटर खुद यह मानता था कि वही शिक्षा, जो ब्रिटिश हुकूमत ने भारतीयों को दी थी, अब विपरीत परिणाम देने लगी थी। हंटर को इस बात पर रोष था क्योंकि उसका सोचना था कि भारतीय उन्हीं लोगों के खिलाफ विद्रोह कर रहे थे जिन्होंने उन्हें संसार देखना सिखाया। उसकी दृष्टि में, वे लोग अनुशासन के, धर्म के, और संतोष के सिद्धान्त का विद्रोह कर रहे थे। हम यह बताने की कोशिश कर रहे हैं कि औपनिवेशिक स्वामियों के लिए यह विरोधाभासी स्थिति थी। गान्ट और मैकॉले ने सोचा था कि उनके लिये भारतीयों को 'शिक्षित' करना ज़रूरी है। पर शिक्षित करने के इसी कार्य ने भारतीयों को 'अवज्ञाकारी' बना दिया। यह बोध होने पर उन्होनें शिक्षा पर अपना नियंत्रण और बढ़ा दिया। शिक्षा पर पूरी तरह से नियंत्रण करने के लॉर्ड कर्जन के प्रयास को इसी सन्दर्भ में देखे जाने की ज़रूरत है। कर्जन ने महसूस किया कि यदि ऐसा नहीं किया गया तो भारतीय विश्वविद्यालय ''असन्तुष्ट चरित्रों व कुण्ठित दिमागों की पौध खड़ी करने की जगह'' बन जाएँगे। जैसा कि हमने पहले भी कहा है, हकीकत यह थी कि औपनिवशिक शिक्षा को सत्ता के तर्काधार से कभी अलग नहीं किया जा सकता था। इस शिक्षा का प्राथमिक लक्ष्य स्वतंत्रता व आत्मनिर्भरता का बोध विकसित करना नहीं था। इसका उद्देश्य था भारतीयों के मन को गुलाम बनाना। नतीजतन वह ऐसे सूक्ष्मतम विद्रोह को भी बर्दाश्त नहीं कर सकी।

3. लोक शिक्षण की असफलता– तो कोई आश्चर्य नहीं, कि जहाँ तक लोक शिक्षण का सवाल था, यह व्यवस्था बुरी तरह से असफल हो गई। पर इस परिस्थिति को सम्हालने के लिए अनुशंसाओं की कोई कमी नहीं छोड़ी गई। मैकॉले की षरिसाव नीतिष की समीक्षा करते हुए वुड्स डिस्पैच ने ज़ोर दिया कि लोक शिक्षण को प्रोत्साहन देने के लिये स्थानीय भाषाओं को बढ़ावा दिया जाना ज़रूरी है। डिस्पैच ने यह भी सुझाया कि जनता को अच्छी धर्मनिरपेक्ष शिक्षा व सरकारी निर्देश देने के लिए सभी स्कूलों को मदद दी जाना चाहिए। पर साथ ही सरकार ने छात्रों से शुल्क वसूलने का निर्णय लिया। इसका नतीजा यह हुआ कि ज़्यादा धनी लोग ही अपने बच्चों की स्कूली शिक्षा का शुल्क दे सके। लोक शिक्षण की इस नीति की असफलता को किसी भी तरह से छुपाया नहीं जा सकता था। उदाहरण के लिए हर्टोग समिति (1929) ने बताया कि 1922–23 में कक्षा 1 में दाखिला लेने वाले हर सौ लड़कों में से केवल 19 ही 1925–26 में चौथी कक्षा में पढ़ते हुए पाए गए। असफलता की इसी कहानी के चलते 1944 की सार्गनेट योजना को एक बार फिर हवाई बाते करनी पड़ीः 6 से 14 साल के बच्चों के लिये निशुल्क/अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था होना चाहिए। लोक शिक्षण की इस असफलता ने एक बार फिर उजागर कर दिया कि औपनिवेशिक स्वामी क्या चाहते थे। उनके द्वारा शुरू की गई शिक्षण प्रणाली का उद्देश्य सामूहिक सशक्तिकरण नही था। बार–बार उन्होंने अपने ''सभ्य बनाने'' के मिशन की, तथा भारतीयों को शिक्षित करने के अपने ''कर्तव्य'' की बात की। पर बिरले ही वे अपने व्यावसायिक उद्देश्यों के परे जा सके; वे सर्वव्यापी प्राथमिक शिक्षा के लिए खुद को पूरे मन से समर्पित नहीं कर सके। गोखले को इस कटु सत्य का एहसास तब हुआ जब 1912 में उनका बिल–जो देश भर में प्राथमिक शिक्षा का निशुल्क और अनिवार्य बनाने हेतु उन्होंने विधान परिषद के समक्ष प्रस्तुत किया था– नकार दिया गया।

कुछ प्रश्न

1. 'किताबी चरित्र की अंग्रेजी शिक्षा' से क्या आशय था, 'भारतीयों की सरकारी नौकरियों पर निर्भरता' से इसका किस प्रकार संबंध था?

2. लोक शिक्षण को प्रोत्साहित करने के लिए वुड्स डिस्पेच ने क्या सुझाव दिए?

निष्कर्ष– अन्त में, यह कहा जा सकता है कि औपनिवेशिक शिक्षा ने अँग्रेज़ी की शिक्षा प्राप्त बाबुओं (जो मुख्यतः ऊँची जातियों के थे) का एक छोटा–सा वर्ग तैयार किया, तथा प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में यह बुरी तरह से असफल रही। फिर भी, यह कहा जा सकता है कि औपनिवेशिक शिक्षा के बारे में सब कुछ बुरा ही नहीं था। आखिरकार, पश्चिम–उसकी ज्ञान व्यवस्थाओं– के साथ इस परिचय ने निश्चित ही एक महत्वपूर्ण जागरूकता पैदा की। इसका नतीजा यह हुआ कि भारतीय नेताओं–राममोहन से लेकर नेहरू तक– ने अपने अतीत को देखा, उसकी विकृतियों से लड़े, तर्क के नए युग का स्वागत किया, और अन्त में अँग्रेज़ों से लड़े। पर, यह ध्यान में रखना होगा कि दासता से मुक्ति का यह कार्य कभी पूरा नहीं हुआ। क्योंकि ब्रिटिश साम्राज्यवादिता का विरोध करते हुए भी, इनमें से सारे लोग ऐसे नहीं थे जो अपने मानस को औपनिवेशक अवधारणाओं व मान्यताओं से मुक्त कर सके हों। दूसरे शब्दों में, एक – शिक्षित भारतीय के जीवन में पश्चिम की उपस्थिति स्थायी थी (और है)। तो मार्टिन कार्नाय का यह कथन निश्चित ही कोई अतिरंजना नहीं हैः

आज भी भारतीयों के लिए इस ढाँचे को तोड़ पाना बहुत मुश्किल है। वे खुद को ब्रिटिश प्राध्यापकों के ज़्यादा नज़दीक पाते हैं बनिस्बत हिन्दू किसानों के, जिनके साथ तो वे बात तक नहीं कर पाते।

हकीकत यह है कि अँग्रेज़ी शिक्षा ने हमारे सामूहिक मानस को गम्भीर क्षति पहुँचाई। हमारा अपने आप से विश्वास उठ गया; हममें से कई लोग हमारे अपने सांस्कृतिक संसाधनों को काम में नहीं ला पाए। जैसा कि कृष्णकुमार ने कहा है, औपनिवेशिक नागरिक हमारा शैक्षिक आदर्श बन गया। हम भी उसी की भाषा बोलने लगे। बल्कि, कृष्णकुमार के अनुसारः

शिक्षा एक नए प्रकार की धर्मनिरपेक्ष नस्ल का प्रतीक बन गई।

इसका मतलब था 'उद्धार' और 'मुक्ति'। इसका मतलब था 'अज्ञानी' जनसाधारण के विशाल समूह से अलग सम्भ्रान्त लोगों के विशिष्ट क्लब में प्रवेश। चलिए हम नज़र डालते हैं कि व्योमेशचन्द्र बनर्जी ने 1856 में इंग्लैण्ड से क्या लिखा थाः ''मैंने जाति से जुड़ी सभी बातों को त्याग दिया है। मैं अपने देशवासियों के सभी हतोत्साहित करने वाले सिद्धान्तों से नफरत करने लगा हूँ। मैं पूरी तरह से बदला हुआ व्यक्ति बन गया हूँ।''

यह नतीजा निकला! दम्भ, आधुनिक/पश्चिमी शिक्षा का एक सह–उत्पाद बन गया है। औपनिवेशिक स्वामी की तरह, शिक्षित भारतीय भी यह सोचने लगा कि उसके देशवासी अज्ञानी और अन्धविश्वासी थे, तथा यह ज़रूरी था कि वह पश्चिमी ज्ञान के साथ उन्हें ''सभ्य बनाए'' तथा समाज में 'व्यवस्था' को पुनः कायम करे। मैकॉले केवल ऐतिहासिक याद नहीं बना रहा। वह हमारी आत्माओं में प्रवेश कर गया। हमने खुद पर आक्रमण होने दिया। हमने अपने आदर्शों को भुला दिया।, यह विडम्बना थी कि इस पूरी प्रक्रिया को शिक्षा का नाम दिया गया।

उपनिवेशवाद और पुनर्जागरण की प्रतिक्रिया

औपनिवेशिक शिक्षा के एजेंडे से सारे लोग तो सन्तुष्ट नहीं रह सके। इसमें कोई शंका नहीं, कि इसके विरोधी भी थे। पर इस असन्तोष के बारे में और अधिक जानने से पहले, यह ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है कि औपनिवेशिक शिक्षा, उसकी दम्भी प्रकृति, और उसके सांस्कृतिक प्रभुत्व की समालोचना विकसित होने के दौर में, किसी प्रकार के पुनर्जागरण की सम्भावना हमेशा मौजूद रही। जैसा कि हम जानते हैं, अक्सर पुनर्जागरण का अर्थ होता था हिन्दुओं के अतीत एवं हिन्दू आदर्शों का महिमामण्डन करना ताकि हिन्दू की ''वास्तविक'' पहचान को पुनः स्थापित किया जा सके जो, ऐसा डर था, कि औपनिवेशिक आक्रमण के कारण नष्ट हो जाएगी। हमारे जैसे बहुधार्मिक समाज में पुनरोत्थान हमेशा बेहद प्रभुत्ववादी होगा; वह अल्पसंख्यक समुदायों की पहचान को मिटा देना चाहेगा। दूसरे शब्दों में, यह समाज के दमित तथा हाशिए पर जी रहे वर्गों की स्वतंत्रता को नष्ट कर सकता है।

यह आशंका एकदम गलत भी नहीं थी, क्योंकि वाकई 'राष्ट्रीय' उद्देश्यों में पुनर्जागरणवादी धारा मौजूद थी। इसके अलावा, निचली/दमित जातियाँ अपना उद्धार चाहती थीं जो, शायद उन्हें ऐसा लगा हो, कि एक मददगार औपनिवेशिक राज्य (जिसके पास आधुनिक कानूनी व्यवस्था थी व उदार मूल्य थे) में हो सकता था, बनिस्बत राष्ट्रवादी सम्भ्रान्त लोगों के नेतृत्व में। इसलिए आश्चर्य नहीं, कि औपनिवेशिक शिक्षा को लेकर नीची जातियों की प्रतिक्रिया मिश्रित थी। औपनिवेशिक शिक्षा को पराया न मानते हुए इन लोगों ने इसमें खुद के, अर्थात् भारत की हाशिए पर जीने वाली जातियो के उद्धार के लिए बड़ी सम्भावनाएँ तलाशीं।

शिक्षा के क्षेत्र में ज्योतिबा फूले के प्रयास

शिक्षा के क्षेत्र में ज्योतिराव फुले के हस्तक्षेप को ध्यान से देखने पर हम इस जटिलता को समझ सकते हैं। फुले के जीवनी लेख हमें बताते है कि वे अपने निकटतम पूर्वजों द्वारा झेले गए अनुभवों–पेशवाओं के शासन से असन्तोष–को भूल नहीं पाए थे। इस घोर निरंकुश शासन में न्याय और गरिमा के लिए कोई जगह नहीं थी। इसके अलावा, अपने बहुत से अपराधों के लिए ब्राह्मण विधि के द्वारा नियत सज़ा की तुलना में बहुत हल्की सज़ा पाकर छूट जाते थे। इसलिए अचरज नहीं कि ज्योतिराव ने ब्रिटिश शासन में प्रगतिवादी सम्भावना देखी। कम से कम पेशवा शासन की कुप्रथाओं से तो छुटकारा मिल ही गया था। इसके अलावा, ब्रिटिश शासन में जाति के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाता था जो, उन्हें लगा, कि सभी मनुष्यों की समानता के सिद्धान्त के अनुकूल था। इसके अतिरिक्त वे स्वतंत्रता ओर समानता के आधुनिक/उदारवादी/पश्चिमी मूल्यों से बेहद प्रभावित थे

और जैसा कि एम.एस. गोरे लिखते हैं, स्कॉटिश मिशन सेकेण्डरी स्कूल में विद्यार्थी की तरह से प्राप्त अपने अनुभवों के द्वारा फुले विज्ञान और धर्म के नए विचारों से अवगत हुए। ईसाई मिशनरियों ने कई बातों को लेकर हिन्दू धर्म की आलोचना की, जैसे मूर्तिपूजा, असंख्य देवी–देवता, सभी मनुष्यों को धार्मिक समानता प्रदान न करना, अन्धविश्वास के अत्याचार, और रोज़मर्रा के कर्मकाण्ड। यह सम्भव है कि ज्योतिराव ने इस समालोचना को काफी गम्भीरता से लिया हो। इसके अलावा उन्होंने थॉमस पेन का ''एज ऑफ रीज़न'' भी पढ़ा जिसने उनकी चेतना को दिशा दी (दरअसल, बाद में उन्होंने अपनी एक किताब थॉमस पेन को समर्पित भी की)।

इसलिए, पेशवा शासन की कुप्रथाओं व भ्रष्टाचार की तुलना में उन्होंने ब्रिटिश शासन की प्रगतिवादी सम्भावनाओं को चुना। ज्योतिराव के 1857 के विद्रोह को समर्थन न देने के पीछे भी यही कारण हो सकता है। इसके बजाय, उन्होनें ब्रिटिश सरकार की विजय का स्वागत किया।

यदि विद्रोह में ब्रिटिश सरकार हार गई होती, तो इतिहास अपने को दोहरा जाता। ब्राह्मणों का पेशवा शासन पुनर्जीवित हो उठता। धर्मग्रन्थों, स्मृतियों तथा पुराणों वाली हिन्दू संस्कृति को बढ़ावा मिलता और शूद्र तथा अति–शूद्र लोगों का उद्धार करने की आशा–जो ब्रिटिश सरकार के आगमन स्वरूप पैदा हुई थी– हमेशा के लिए धूमिल हो जाती।

फुले को यकीन था कि आधुनिक शिक्षा की मदद से आम आदमी ब्रिटिश सरकार की कानूनी व्यवस्था और वैज्ञानिक सुधारों से लाभ ले सकेगा और अपना पुनरोद्धार कर सकेगा। इस आशा के साथ फुले ने औपनिवेशिक राज्य से बार–बार अपील की। उदाहरण के लिए, 1882 में हंटर आयोग के सामने प्रस्तुति में उन्होने अपना पक्ष रखते हुए कहा कि सरकार को यह गलतफहमी नहीं होना चाहिए कि ऊँची जातियों के लोग नीची जातियों के बीच शिक्षा का प्रसार करेंगे। उन्होंने औपनिवेशिक राज्य से अपील की कि नीची जातियों से शिक्षकों की नियुक्ति की जाए क्योंकि उन्हें यह लगता था कि ब्राह्मण शिक्षकों के धार्मिक पूर्वाग्रह उन्हें नीची जातियों के बच्चों के साथ धुलने–मिलने नहीं देंगे।

पर, फुले केवल अपीलों से ही सन्तुष्ट नहीं थे। वे बातों के बजाय कुछ करने में यकीन रखते थे। वे शिक्षा के क्षेत्र में कूद पड़े और अपने खुद के स्कूल खोले। उन्होंने महसूस किया कि सच्चे या उदारवादी एजेंडे के लिए, आधुनिक शिक्षा, और शूद्रों तथा हिन्दू समुदाय की स्त्रियों, दोनों की प्रबुद्ध बनाया जाना, ज़रूरी मुद्दे थे। इस दृढ़ विश्वास के साथ उन्होंने अपनी पत्नी को शिक्षा प्राप्त करने के लिए सफलतापूर्वक राजी किया, और अन्त की लड़कियों के लिए भी खुला हुआ था। यह वही समय था जब पूणे, खासतौर पर, अति–रूढ़िवादी हिन्दू विचारधारा का गढ़ था। फुले के प्रयास को शास्त्रों, धर्म और समाज के खिलाफ अपराध के रूप में देखा गया। पर फुले का संकल्प इतना दृढ़ था कि वे विभिन्न क्षेत्रों से आने वाली कठिनाइयों व रूकावटों (यहाँ तक उनके पिता ने भी उनके इस कार्य को पसन्द नहीं किया) को भी पार कर गए। नतीजतन, शिक्षा के क्षेत्र में उनके नए–नए कार्य जारी रहे। उन्होंने 1851 में दूसरा स्कूल खोला; और 1859 में तीसरा। पाठ्यक्रम में वाचन, व्याकरण, अंकगणित, भूगोल, इतिहास, नक्शा पढ़ना इत्यादि शामिल था।

ज्योतिराव के स्कूल बदलाव ला रहे थे। वे नई पीढ़ी के विद्यार्थियों की चेतना को आकार दे रहे थे। उदाहरण के लिए, अछूतों के लिए खोले गए उनके एक स्कूल की एक चौदह वर्षीय लड़की ने एक निबन्ध लिखा जिसमें उसने कहाः

''ब्राह्मण कहते हैं कि दूसरी जातियों को वेद नहीं पढ़ना चाहिए; इस वजह से हमारे पास कोई धर्मग्रन्थ नहीं रह जाता। तो क्या हमारे पास धर्म भी नहीं है? हे भगवान, कृपया हमें बताइए, हमारा धर्म क्या है? भगवान, आपकी कृपा हैं। ब्रिटिश लोगों के आगमन से पूर्व ऊँची जातियों के लोगों के खिलाफ अपराध कर देने पर महारों और मंगों का सिर कलम कर दिया जाता था। पहले, हमें सुल्तेकड़ी के बाज़ार में स्वतंत्रता से घूमने की अनुमति नहीं थी, पर अब हम ऐसा कर सकते हैं।''

यह ज़रूर ध्यान में रखना होगा कि फुले का उद्देश्य केवल ब्रिटिश शासन के सकारात्मक/प्रगतिवादी लक्षणों को देखना ही नहीं था। उनकी दृष्टि कहीं गहरी थी। अपने सार्वजनिक सत्यधर्म के द्वारा उन्होंने एक नया समाज बनाना चाहा; ऐसा समाज जो गुणात्मक तौर पर पारम्परिक/ब्राह्मणवादी/ऊँच–नीच वाले समाज से अलग हो; ऐसा समाज जो धार्मिक मान्यताओं और क्रियाकलापों के बजाय आधुनिक/वैज्ञानिक ज्ञान का स्वागत करे; ऐसा समाज जहाँ सभी महिलाओं व पुरुषों का समान अधिकार प्राप्त हों, और खेती, कारीगारी और मज़दूरी जैसे पेशों को अपनाने वाले लोगों को गरिमाहीन नहीं माना जाए।

ज्योतिराव फुले के प्रयास दर्शाते हैं कि उपनिवेशवाद के प्रति लोगों ने विविध प्रकार की प्रतिक्रियाएँ दीं, और राष्ट्रवादी; योजना के लिए लोग पूरी तरह से एकमत नहीं थे। यह ध्यान में रखना भी ज़रूरी है कि ब्रिटिश शासन के प्रति नीची जातियों की प्रतिक्रिया का यह मतलब नहीं कि उन्होंने हमेशा औपनिवेशिक राज्य के प्रगतिवादी लक्षणों को ही देखा। बल्कि, उनका ब्रिटिश शासन के साथ एक जटिल सम्बन्ध रहा। उदाहरण के लिए, बी.आर. अम्बेडकर ने बार–बार यह उजागर किया कि कैसे ब्रिटिश हुकूमत नीची जातियों की शिक्षा के प्रति उदासीन बनी रही। यद्यपि, उन्हें लगता था कि ब्रिटिश शासन के आगमन से समाज के दबे–कुचले वर्गों में बड़ी आशाएँ जगी थीं, क्योंकि ब्रिटेन एक लोकतंत्र था जो, उन्हें लगता था कि, समानता के सिद्धान्त में विश्वास करता है।

अभ्यास कार्य

1 'सभ्य बनाने के मिशन' से अंग्रेजों का क्या आशय था ?

2 ज्योति राव फुले ने ब्रिटिश शासन में प्रगतिवादी सम्भावना देखी। स्पष्ट कीजिए

3 उपयोगितावाद के अनुसार समाज में शिक्षा का क्या उपयोग है? उन्होंने भारत और ब्रिटेन में किस तरह की शिक्षा प्रचलित करनें का प्रयास किया।

4 अंग्रेजी शासन काल में भारत में शिक्षा की नजरिया हमेशा एक जैसे रहा या उसमें बदलाव आते रहे? किस तरह के बदलाव आये?

6 औपनिवेशिक शिक्षा का वर्तमान समय में किस–किस तरह के प्रभाव दिखाई देता है? उदाहरण देकर समझाइये।

9 उपनिवेशवाद से किसी भी देश की संस्कृति एवं शिक्षा पर क्या प्रभाव पड़ता है?

10 शुरूआत में ईस्ट इंडिया कम्पनी भारत में आधुनिक शिक्षा के प्रसार प्रति उत्सुक क्यों नहीं थी?

।।।।।।।।।

अध्याय – 18
समानता की खोज में

कृष्ण कुमार

गुलामी की शिक्षा और राष्ट्रवाद, ग्रंथ शिल्पी नई दिल्ली, 2006
(Political Agenda of Education, Sage publication, New Delhi 2005, pp 97.122) पर आधारित

अध्याय की रूपरेखा

- सामान्य परिचय
- अध्याय के उद्देश्य
  - सार्वजनिक शिक्षा के संदर्भ में अंग्रेजी शासन की नीति
  - अम्बेडकर और गॉधी
  - आरक्षण या सकारात्मक पक्षपात की नीति
- अभ्यास

ज्योतिराव फुले

बाबा अम्बेडकर

सामान्य परिचय

अँग्रेज़ी शिक्षा के विस्तार के कारण दलित व निम्नतर जातियों के बीच शिक्षा का प्रसार 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में होने लगा था। हालाँकि यह नई शिक्षा बहुत कम लोगों तक पहुँच पाई थी, फिर भी दलित जातियों में एक छोटा सा शिक्षित वर्ग तैयार हो पाया। यह शिक्षित वर्ग सदियों पुराने दलितों के संघर्ष को आगे बढ़ाने में जुट गया। उस वर्ग ने अंग्रेज़ी शासन में एक मददगार तत्व पाया। इस कारण हमेशा अंग्रेज़ी शासन के प्रति उनका नजरिया दोहरा रहा, एक तरफ वे उसके आलोचक थे और दूसरी ओर, उससे अपने संघर्ष में एक सकारात्मक योगदान की अपेक्षा भी करते थे।

प्रस्तुत सामग्री में सार्वजनिक शिक्षा के संदर्भ में अंग्रेजी शासन की नीति, समानता और न्याय के लिए शिक्षा का महत्व तथा आरक्षण की नीति पर विचार करेंगे।

अध्याय के उद्देश्य

1 सार्वजनिक शिक्षा के संदर्भ में अंग्रेजी शासन की नीतियों को जानना।

2 समानता के लिए शिक्षा के प्रसार का ज्योतिराव फुले के प्रयास को जानना

3 समानता के लिए अम्बेडकर और गांधी के विचारों को जानना।

4 समानता तक पहुंचने के लिए आरक्षण की नीति की आवश्यकता को समझना।

सार्वजनिक शिक्षा के सन्दर्भ में अंग्रेज़ी शासन की नीति

सार्वजनिक शिक्षा के सन्दर्भ में अंग्रेज़ी शासन की नीति यह थी कि पहले समाज के उच्च स्तर पर आधुनिक शिक्षा का प्रसार हो

और अन्य निचले तबकों पर धीरे–धीरे उसका असर पड़े। महाराष्ट्र में निम्न जातियों के बीच शिक्षा का प्रसार कर रहे ज्योतिराव फुले ने इस शासकीय नीति की आलोचना की। अँग्रेज़ शासन द्वारा शिक्षा के विषय पर स्थापित हंटर आयोग के समक्ष फुले का कहना था कि अगर शासन आम लोगों का कल्याण चाहता है तो उसे उन तक सीधे शिक्षा पहुँचाने का काम करना चाहिए। न इन लोगों के पास सम्पत्ति है न सामाजिक हैसियत। लेकिन पूरा समाज इनकी मेहनत पर टिका हुआ है। ऐसे तबकों को शिक्षा से वंचित रखने से तमाम शासकीय पदों को उनसे दूर रखा जा रहा है।

फुले ने यहाँ अंग्रेज़ी शासन का उपयोग सदियों पुरानी निम्न जातीय संघर्ष को आगे बढ़ाने के लिए किया। उन्होंने शासन पर दबाव डाला कि वह अपनी कल्याणकारी भूमिका को प्रमाणित करने के लिए निम्न जातियों में शिक्षा का प्रसार करे।

प्रश्न

''सार्वजनिक शिक्षा के सन्दर्भ में अंग्रेज़ी शासन की नीति यह थी कि पहले समाज के उच्च स्तर पर आधुनिक शिक्षा का प्रसार हो और अन्य निचले तबकों पर धीरे–धीरे उसका असर पड़े।'' इससे आप किस हद तक सहमत हैं?

हंटर आयोग को जो ज्ञापन फुले ने दिया उसमें शिक्षा व्यवस्था के व्यापक मुद्दों से लेकर कक्षा में हो रही प्रक्रियाओं तक पर उनकी चिन्ता दिखती है–

वर्तमान में प्राथमिक शालाओं में जो शिक्षक नियुक्त हुए हैं वे सभी प्रायः ब्राह्मण हैं – इनमें से कुछ ही प्रशिक्षण कॉलेजों के स्नातक हैं, ज़्यादातर अप्रशिक्षित हैं। उनका तनख्वाह बहुत ही कम है (दस रुपए से भी कम) और उनकी योग्यता भी कम हैं। वे ज़्यादातर आलसी व निष्क्रिय लोग होते हैं जो अपनी निष्क्रियता को अपने छात्रों तक पहुँचाते हैं।.... मैं समझता हूँ कि जहाँ तक सम्भव हो प्राथमिक शाला के शिक्षक प्रशिक्षित हों व खेतिहर समूहों से होना चाहिए। ऐसे व्यक्ति ही निम्न तबके के बच्चों के बीच घुलमिल सकते हैं, उनकी ज़रूरतों व भावनाओं को समझ सकते हैं वनिस्पद उन ब्राह्मण शिक्षकों के जो निम्न तबके से अलग थलग रहते हैं। ऐसे शिक्षक ज़रूरत पड़ने पर हल या छैनी पकड़ने से भी नहीं कतराएँगे। **(हंटर कमीशन 1884)**

फुले अंग्रेज़ों के उदारवादी सिद्धान्तों से तो प्रभावित थे ही और उन्होंने अंग्रेज़ी शासन का स्वागत भी किया। उनका मानना था कि वह शासन राजनैतिक रूप से निम्न तबकों के लिए लाभकारी है। उनके लिए सबसे अहम संघर्ष ब्राह्मणवादी सत्ता के खिलाफ दलित जातियों का था। वे मानते थे कि शिक्षा के माध्यम से प्राप्त शासकीय नौकरियाँ व वकालत आदि पेशे से ही दलितों का उद्धार सम्भव है। इसी कारण वे इन नौकरी–पेशों पर उच्च वर्णों के वर्चस्व से क्षुब्ध थे। वे इस बात से आशंकित थे कि अंग्रेज़ों के जाने के बाद यही उच्च वर्ण निम्न तबकों पर शासन जारी रखेंगे।लेकिन दलित उन्नति के ये व्यापक विचार धीरे–धीरे संकुचित होते गए और नौकरियाँ पाने की रणनीति में सिमटते चले गए। इसका एक बड़ा कारण यह रहा कि उच्च वर्ण के लोगों पर आधारित राष्ट्रीय आन्दोलन में सामाजिक पुनर्गठन के लिए स्थान कम था और सामाजिक पुनर्गठन और राष्ट्रवाद दो अलग दिशा में बहते गए।

गैर–ब्राह्मण मध्यम जाति के लोग जो विभिन्न रूप में ज़मीन पर हक रखते थे, ने नौकरियों पर ब्राह्मणों के एकाधिकार का विरोध करने लगे। वे विभिन्न प्रान्तों में अपने संगठन बनाकर माँग करने लगे कि ब्राह्मणों के अलावा अन्य जातियों के लिए नौकरियों में आरक्षण हो। साथ ही वे अंग्रेज़ी शासन के प्रति वफादारी भी दिखाना चाहते थे। अंग्रेज़ी शासन ने इन माँगों के प्रति सकारात्मक रवैया अपनाया क्योंकि वे ब्राह्मण नेतृत्व वाले राष्ट्रवाद का प्रतिरोध करने के लिए इन मध्यम जातियों का सहारा लेना चाहते थे। इस प्रक्रिया में मध्यम ज़मीनदार जातियों को अधिक फायदा हुआ और उनका प्रयास दलितों तक पहुँचना भी नहीं था। फिर भी मद्रास जैसे प्रान्तों में इसका

दलित शिक्षा पर भी काफी सकारात्मक असर पड़ा। दलित बच्चों के लिए विशेष स्कूलों की संख्या तेजी से बढ़ी, दलित छात्रों की संख्या भी बढ़ा और उन पर शासकीय खर्च भी बढ़ा।

कुछ प्रश्न

1 ज्योतिराव फुले ने ऐसा क्यों सोचा कि शिक्षा के माध्यम से दलितों का उद्धार सम्भव है? क्या सचमूच ऐसा हो पाया?

2 'अन्य जातियों के लिए नौकरियों में आरक्षण' पर अंग्रेजी शासन का रवैया किस प्रकार का था?

अम्बेडकर और गाँधी

महाराष्ट्र में आत्म सम्मान और न्याय के लिए दलितों के संघर्ष ने विकसित आकार ले लिया। वहाँ इस आन्दोलन को अम्बेडकर जैसे उदारवादी व राष्ट्रवादी का नेतृत्व मिला। भीमराव अम्बेडकर खुद दलित जाति के थे और वे दलित मुक्ति के लिए आधुनिक शिक्षा के महत्व को बखूबी समझते थे। उनका मानना था कि अँग्रेज़ी और उच्च शिक्षा और धर्मान्तरण के मदद से दलित आत्मसम्मान और न्याय पा सकते थे। दूसरी ओर, गाँधी यह मानते थे कि दलित मुक्ति को सम्भव बनाने के लिए दलितों के आन्दोलन व शिक्षा के साथ–साथ उच्च वर्णों की सोच व व्यवहार में भी बदलाव ज़रूरी है। यह बदलाव बाहरी या कानूनी दबाव से नहीं बल्कि उनकी अन्तरात्मा में बदलाव से ही होगा। सवर्णों को स्वेच्छा से सदियों से चले आ रहे अन्याय को खत्म करके दलितों का आत्मसात करना चाहिए।

प्रश्न

दलितों के आत्म सम्मान व न्याय प्राप्ति के लिए अम्बेडकर एवं गाँधी जी के विचारों को लिखिए। वर्तमान संदर्भ में ये कितने प्रासंगिक हैं?

आरक्षण या सकारात्मक पक्षपात की नीति

1947 से पहले की शताब्दी में जो भारतीय बुद्धिजीवियों का चिन्तन था वह काफी हद तक इंग्लैण्ड के पूँजीवादी उदारवाद से प्रेरित था जो खासकर जेर्मी बेन्थम और जान स्टूअर्ट मिल के सिद्धान्तों से प्रभावित था। इन सिद्धान्तों में लोकतंत्र व शासन की भूमिका संरक्षात्मक था और समाज में संसाधन व उत्पादन का वितरण बाज़ार पर छोड़ दिया गया। यह माना गया कि राजनैतिक स्वतंत्रता के होते बाज़ार हर व्यक्ति को उसके परिश्रम और क्षमता के आधार पर आगे बढ़ने के मौके देगा। समाज में ऊँचा दर्जा प्राप्त करने की वैयक्तिक सम्भावना इस विचार का आधार था। लेकिन भारत जैसे देशों में जहाँ व्यक्तिगत स्वतंत्रता बहुत सीमित थी, जहाँ विशाल जन समूहों को सम्पत्ति का अधिकार ही नहीं था, जहाँ जातिगत विभेद सर्वोपरि था, वहाँ यह सिद्धान्त अपनी सीमा पर पहुँच जाता है। इस सिद्धान्त और उसकी सीमाओं को हम आरक्षण की नीति में देख सकते हैं।

निम्न जाति के लोगों के लिए शासकीय पदों में आरक्षण मद्रास प्रान्त और मैसूर राज्य में 1920 के दशक में ही लागू कर दिया गया था। लेकिन एक व्यापक व स्वीकृत नीति जिसमें अनुसूचित जाति व जनजातियों के लिए आरक्षण का प्रावधान था, अम्बेडकर के आन्दोलन के परिणामस्वरूप 1943 से लागू हुआ। इस नीति की विवेचना समाजशास्त्रीय, कानूनी व राजनैतिक दृष्टि से कई विद्वानों ने किया है। लेकिन इसकी शैक्षिक दृष्टि से इसकी विवेचना करना रह गया है।

निम्न तबकों के लिए आरक्षण की नीति भारतीय सन्दर्भ में समान अवसर सिद्धान्त पर आधारित है। आम तौर पर यह माना जाता है कि समाज में समानता लाने के सन्दर्भ में शासन की भूमिका को समान अवसर सुनिश्चित करने तक ही देखा गया है। लेकिन समान अवसर वाले सिद्धान्त की जड़ में एक स्पर्धात्मक समाज

की कल्पना है जहाँ विभिन्न व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं व वंचित चीज़ों की सर्वाधिक प्राप्ति के लिए बाज़ार में सतत स्पर्धा करते हैं। ऐसे में शासकीय हस्तक्षेप यह सुनिश्चत करने की कोशिश करता है कि निम्न तबकों के कुछ व्यक्तियों को उस स्पर्धा में भाग लेने की अर्हता मिले। लेकिन इससे बाकी व्यवस्था उतना ही असमान बनी रहती है और बाज़ार की ताकत और सुदृढ़ होती है। इससे निम्न तबकों के केवल कुछ व्यक्तियों को आगे बढ़ने का मौका मिलता है और बाकी लोगों को कमज़ोर बनाए रखने की व्यवस्था पूर्ववत चलती रहती है। कुछ लोगों को यह आशा दिलाकर कि वे भी तरक्की कर सकते हैं, वह उस असमान व्यवस्था में उनकी आस्था को बनाए रखने में मदद करता है।

इन चिन्तकों के विचार में बाज़ार एक समतामूलक यंत्र है। लेकिन भारत जैसे जाति आधारित समाज में बाज़ार समतामूलक नहीं रह सका और विकृत रहा। आरक्षण पर ध्यान केन्द्रित करने से हम आम तौर पर नौकरी या उच्च तकनीकी शिक्षा में भर्ती जैसी शिक्षा के बाहर के मुद्दों को अधिक तवज्जों देने लगते हैं। लेकिन कक्षा के अन्दर दलित बच्चों के साथ होने वाला व्यवहार या पाठ्यक्रम व पुस्तकों में दलित एवं आदिवासी समाज की चिन्ताओं व प्रतीकों के अभाव पर भी उतना ही गौर करने की ज़रूरत है।

अभ्यास

''निम्न तबकों के लिए आरक्षण की नीति भारतीय संदर्भ में 'समान अवसर सिद्धांत' पर आधारित है।'' इस कथन की विवेचना कीजिए।

|||||||||

इकाई 5

अध्याय – 19
शिक्षा के विषय पर महात्मा गाँधी के विचार

Krishna Kumar, UNESCO, Vol. 23-10, 3/4, 1993, P. 507-517.

अध्याय की रूपरेखा

- सामान्य परिचय
- अध्याय के उद्देश्य
- स्वराज और स्वदेशी
- ग्राम व्यवस्था
- शिक्षा
- औद्योगीकरण के प्रति विचार
- अभ्यास

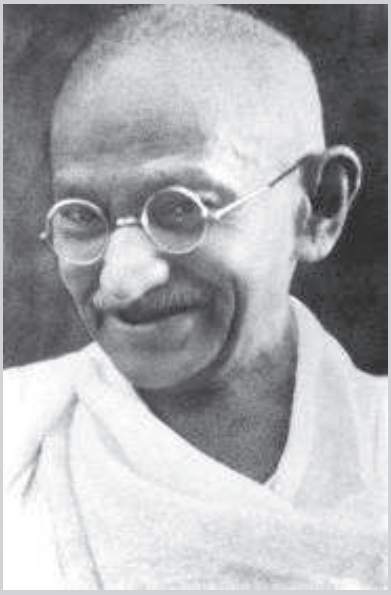

सामान्य परिचय

शिक्षा के विषय पर महात्मा गाँधी के विचारों को समझने के लिए उनके ही एक कथन पर गौर करते हैं– ''वास्तविक समस्या यह है कि लोगों को इस बात का आभास नहीं है कि असली शिक्षा क्या है। हम शिक्षा के मूल्य को इसी तरह आँकते हैं जिस तरह ज़मीन और स्टॉक एक्सचेंज में शेयरों के मूल्य को आँकते हैं। हम केवल वही शिक्षा देना चाहते हैं जिससे छात्र अधिक से अधिक पैसा कमा सकें। शिक्षा के चरित्र में सुधार के लिए शायद ही हम कोई प्रयास करते हैं। लड़कियाँ, जिन्हें हम कहते हैं कि उन्हें कमाना नहीं, तो उन्हें क्यों शिक्षा दी जाएँ? जब तक ऐसे विचार समाज में बने रहेंगे तब तक शिक्षा का सच्चा मूल्य जानने की कोई उम्मीद नहीं है।'' (एम.के. गाँधी)

कुछ वर्षों पहले छपे एक लेख में, कृष्ण कुमार ने लिखा था कि गाँधी को छोड़कर किसी ने भी इतनी तीक्ष्णता से, इतनी पूर्णता से, औपनिवेशिक शिक्षा का बहिष्कार नहीं किया, न किसी ने इतना मौलिक विकल्प ही सामने रखा जैसा गाँधी ने प्रस्तुत किया। पाश्चात्य शिक्षा विशेष तौर पर अँग्रेज़ी की आलोचना गाँधी द्वारा की गई पश्चिमी सभ्यता की आलोचना का ही एक भाग थी। एक कहानी है कि प्रसिद्ध हो जाने के बाद जब गाँधी एक बार ब्रिटेन गए, किसी ने उनसे पूछा, श्रीमान गाँधी, आप इंग्लैण्ड की सभ्यता के बारे में क्या सोचते हैं? जिसके जवाब में उन्होंने कहा ''मुझे लगता है इसे आजमा कर देखा जा सकता है।''

अध्याय के उद्देश्य

1. गांधी जी के स्वराज और स्वदेशी के विचारों को जानना।
2. औपनिवेशिक शिक्षा के पृष्ठभूमि में गांधी जी की बुनियादी शिक्षा से अवगत होना।
3. शिक्षकों के बारे में गांधी जी के विचारों को जानना।

प्रारम्भिक जीवन

मोहनदास करमचन्द गाँधी का जन्म भारत के पश्चिमी इलाके में 1869 में पोरबन्दर नामक स्थान पर हुआ था। उनका लालन–पालन एक मध्यमवर्गीय परिवार में रूढ़िवादी रीति–रिवाजों के अनुसार हुआ। उनके पिताजी करमचन्द गाँधी पोरबन्दर के दीवान थे। इसके बाद वे राजकोट में प्रमुख सलाहकार हो गए। वे अपने बेटे को भी अपने नक्शेकदम पर चलाना चाहते थे। गाँधी स्कूल गए, परन्तु कुछ विशेष न करके, उन्होंने वो सब सीख लिया जिसकी उम्मीद की जाती थी। उनका विवाह तेरह साल की उम्र में सन् 1881 में हो गया। उनकी पत्नी, कस्तुरबा बाई माकनजी भी तेरह साल की थीं। वे एक स्थानीय व्यापारी की बेटी थी। जिनका चुनाव गाँधीजी के लिए किया गया था। (बाद में गाँधीजी ने बाल विवाह प्रथा का कड़ा विरोध किया)। अपनी औपचारिक स्कूली शिक्षा की समाप्ति के बाद उन्होंने वकील बनने का निश्चय किया, जिसके लिए उन्हें इंग्लैण्ड जाना पड़ा। 1891 की गर्मियों में उन्हें बार में शामिल होने दिया गया। भारत लौटने के बाद उन्होंने पाया कि यहाँ एक वकील के रूप में ज्यादा सफल भविष्य नहीं बना पाएँगे, इसलिए 1893 में वे दक्षिण अफ्रीका चले गए। दक्षिण अफ्रीका के अनुभवों ने उनका जीवन ही बदल दिया। वहाँ उनका सामना उस नस्लवाद और तिरस्कार से हुआ जो उन्होंने कभी भारत में नहीं देखा था। अधिकारियों के हाथों जिस बदसलूकी/बेईज्जती को झेलना पड़ा, उसने उन्हें एक शान्त व्यक्ति से प्रतिबद्ध राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में बदल दिया। वे वास्तव में दक्षिण अफ्रीका केवल एक वर्ष के करार पर किसी भारतीय लॉ फर्म के लिए नेटाल प्रान्त में काम करने के लिए गए थे। वहाँ उन्होंने भारतीय समुदायों की समस्याओं को उठाया और धीरे–धीरे पहले उनके वकील के नाते नागरिक अधिकार के मुद्दों को लेकर लड़े और अन्ततः वे दक्षिणी अफ्रीकी भारतीयों के अधिकारों और नस्ली भेदभावों के खिलाफ चलाए गए राजनीतिक आन्दोलनों के नेता बन गए। उनके तरीके असाधारण थे। उन्होंने सत्ता के खिलाफ एक संघर्ष शुरू किया जो उनके कट्टर हिन्दू विश्वास, अहिंसा पर आधारित था। जिसका अर्थ था एक गैर–हिंसात्मक विरोध – कुछ कानूनों का शान्तिपूर्ण भंग, सामूहिक गिरफ्तारियाँ, अधिकारियों का असहयोग, बहिष्कार व विशाल पदयात्राएँ।

ये तरीके बाद में भारत को ब्रिटिश साम्राज्य से स्वतंत्रता दिलाने के आंदोलन में और परिपूर्ण हुए। गाँधीजी के विचार दक्षिण अफ्रीका के अनुभवों के परिणामस्वरूप धीरे–धीरे प्रभावी होते चले गए। जिन विचारों को उन्होंनें दक्षिण अफ्रीका में पहले कुछ वर्षों में ही स्थापित किया, उनका विकास वे जीवन पर्यन्त भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ने के लिए करते गए। हालाँकि वे विचार एक बृहत वैश्विक सन्दर्भ में आधुनिक सभ्यता के पूर्ण बहिष्कार में स्थित थे। उनका तथाकथित आधुनिक या पाश्चात्य सभ्यता का बहिष्कार परिपूर्ण था। उन्होंने उसे एक शैतान का साम्राज्य बताया, जो छूते ही किसी को भी प्रदूषित कर रहा है। औद्योगीकरण, मशीनें, संसदीय/पार्लियामेंटरी सरकार, ब्रिटिश साम्राज्य का विकास और वे बहुत सी बातें जिन्हें लोग प्रगति/तरक्की बता रहे थे, गाँधी ने इस तरह के आधुनिकवाद का विरोध किया। आधुनिक सभ्यता के विरोध में उन्होंने प्राचीन सभ्यता को प्रस्तुत किया जिसमें आत्म–निर्भर और आत्म–शासित ग्रामीण समुदायों पर विशेष ज़ोर दिखाई देता था। उन्हें पश्चिमी सभ्यता के भारत पर कसते शिकंजे की बड़ी चिन्ता थी। जिन भौतिक मूल्यों को ब्रिटिश राज ने भारत पर थोपा उनका विरोध प्राचीन भारतीय आध्यात्म से ही किया जा सकता था। बार–बार उन्होंने अपने जीवन काल में अपनी वैभवशाली सभ्यता, जो कि हर उस चीज़ से महान थी जो एक आधुनिक समाज दे सकता है, की ओर लौटने का अह्वान किया।

कुछ प्रश्न

1. गांधी जी के प्रारम्भिक जीवन मे दक्षिण आफ्रीका में घटित उस घटना का उल्लेख कीजिए जिससे वे राजनैतिक आन्दोलनों के नेता बनने के लिए प्रेरित हुए।

2. गांधी जी ने आधुनिकवाद के विरोध में किस तरह के प्रचीन सभ्यता पर जोर दिया?

स्वराज एवं स्वदेशी

गाँधी का उददेश्य जैसा कि उन्होंने कहा स्वराज और स्वदेशी था। ये दोनों ही शब्द गाँधीजी के सपनों के समाज का प्रतिनिधित्व करते थे। स्वराज का एक बुरा अनुवाद स्वतंत्रता/स्वायत्तता/स्वशासन/देशी शासन के रूप में किया जा सकता है। स्वदेशी को आत्म निर्भरता या आत्म सम्पन्नता (self sufficiency or self reliance) के रूप में भी अनुवादित किया जा सकता है।

स्वराज से गाँधीजी का तात्पर्य भारत से अँग्रेज़ों को बाहर निकालकर स्वतंत्रता घोषित करना नहीं था। उनका अभिप्राय एक पूर्णतः नया समाज स्थापित करना था। उनका इरादा अँग्रेज़ों के स्थान पर ऐसे भारतीयों को लाना नहीं था जो अँग्रेज़ों जैसा काम कर रहे थे। अगर ऐसा ही हुआ तो सच्ची स्वतंत्रता की प्राप्ति हुई है, ऐसा नहीं कहा जा सकता है। बस फरक इतना है कि लोग बदल गए हैं, सरकार वही है। गाँधी ब्रिटिश राज के मूल्यों व जीवनशैली को एक सरल, ज़्यादा आध्यात्मिक और सामुदायिक जीवन शैली में बदल देना चाहते थे। ये नया समाज पूर्व–औपनिवेशिक काल के पुराने मूल्यों को प्रस्थापित करता था, गाँवों पर आधारित था। उनका कहना थाः–

''आज़ादी सबसे नीचे से शुरू होनी चाहिए। इसलिए हरेक गाँव एक गणतंत्र होगा.... जिसके पास सभी शक्तियाँ होंगी। इसलिए हर गाँव को आत्म पोषित होना होगा जो अपने सभी कार्यों के प्रबन्धन में सक्षम होंगे। और अन्ततः प्रत्येक व्यक्ति इकाई होगा। मगर इसमें पड़ोसियों से व दुनिया से स्वैच्छिक मदद और उन पर निर्भरता को अलग नहीं किया जाएगा। इस ढाँचे में, जिसमें असंख्य गाँव होंगे, अनवरत फैलाने वाले वृत्त होगें, एक दूसरे के ऊपर चढ़ते हुए वृत्त नहीं। जीवन कोई पिरामिड नहीं होगा जिसके शिखर का भार उसके आधार पर पड़ा करे।''

नए भारत में गाँधीजी की सोच में हर धर्म को बराबर और पूरा स्थान प्राप्त था (वे विभाजन के सख्त खिलाफ थे)। साथ ही, उसमें ऐसी मशीनों के लिए कोई स्थान नहीं था जो मानव श्रम को विस्थापित करें और ताकत को केवल कुछ हाथों में सौंप दें।

ग्राम व्यवस्था

गाँधीजी के संकलित लेखन में, 1942 में लिखा एक अंश पढ़ने को मिलता है, जिसमें गाँवों की भूमिका के बारे में उन्होंने कहा कि ''स्वराज से मेरा अभिप्राय सम्पूर्ण गणतंत्र से है, जो अपनी आवश्यक ज़रूरतों की पूर्ति के लिए अपने पड़ोसी पर निर्भर नहीं होगा, लेकिन साथ ही जहाँ निर्भरता भी ज़रूरी है वहाँ परस्पर निर्भर भी है।''

वे आगे कहते हैं :–

इसलिए प्रत्येक गाँव की पहली चिन्ता अपने लिए खाना और कपड़े के लिए सूत पैदा करना होगी। उनमें अपने पशुओं के लिए जगह होगी और बच्चे और युवाओं के लिए खेल के मैदान हों और फिर अगर कोई अतिरिक्त भूमि उपलब्ध हो तो वहाँ उपयोगी नकदी फसलें उगाई जाएँ, जिसमें गाँजा, तम्बाकू, अफीम आदि को एकदम बाहर किया जाए। गाँवों में एक थियेटर होगा, स्कूल और पंचायत घर होंगे। गाँवों में अपने पीने योग्य पानी की सुविधा हेतु व्यवस्था होगी। ये सब नियंत्रित कुओं और तालाबों के ज़रिए होगा। शिक्षा बुनियादी पाठ्यक्रम तक अनिवार्य होगी। जहाँ तक सम्भव होगा सभी गतिविधियाँ सहयोग की भावना पर आधारित होगी। जिनमें कोई जात नहीं होगी, जैसा कि आज हमारे बीच में छुआ–छूत के साथ मौजूद है। असहयोग की नीति के साथ–साथ अहिंसा ही गाँव के समुदाय का कानून होगी। गाँव में नियमित रूप से एक चौकीदार की व्यवस्था होगी। यह काम बारी–बारी से गाँव के लोगों को ही करना होगा। गाँव की सरकार पंचायत (पाँच पंचों) द्वारा चलाई जाएगी

जिनका चुनाव गाँव के वयस्क महिला–पुरुषों द्वारा, जिनको न्यूनतम योग्यता हासिल होगी, किया जाएगा। इनके पास सभी आवश्यक न्यायिक अधिकार व सत्ता होगी। आमतौर पर सज़ा की जो समझ है ऐसी कोई व्यवस्था इन गाँवों में नहीं होगी, इसलिए पंचायत में ही उसकी समयावधि के लिए सभी वैधानिक, न्यायिक, और कार्यकारी अधिकार होंगे।

कुछ प्रश्न

1. उपरोक्त पैराग्राफों में किस तरह के समाज की बात कही गयी है?

2. ऐसा समाज बनाने के लिए शिक्षा व्यवस्था और स्कूली पाठ्यक्रम किस प्रकार की होगी? अपने विचार लिखिए।

शिक्षा

सही अर्थों में एक सभ्य और स्वतंत्र भारत की अपनी दृष्टि और मूल्यों के चलते, यह स्वाभाविक ही था कि शिक्षा के बारे में गाँधीजी के दृढ़ विचार थे। शिक्षा न केवल नई पीढ़ी को ढालने का काम करती है, बल्कि समाज में अपने बारे में निहित मान्यताएँ प्रदर्शित करती है। दक्षिण अफ्रीका में उनके अनुभवों ने न केवल राजनीति के प्रति उनके दृष्टिकोण को बदला, बल्कि संघर्ष के लिए शिक्षा के महत्व को समझने में मदद की। वे इस बात से सचेत थे कि उन्हें पश्चिमी शिक्षा का लाभ मिल रहा है और जब वे दक्षिण अफ्रीका में थे उन्होंने भारतीयों पर भी इसका लाभ लेने के लिए दबाव बनाया। तथापि 20 वीं सदी के शुरुआती वर्षों तक, जबकि वो अपनी उम्र के तीसरे दशक के मध्य में थे, वे अँग्रेज़ी के इतने विरोधी नहीं थे कि वे इस शिक्षा की संड़ाँध के बारे में लिखें और लिखें कि लाखों लोगों को अँग्रेज़ी की शिक्षा देना उन्हें दास बनाना है, या कि अँग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त करके हम अपने देश को गुलाम बना रहे हैं। वे इस बात से खफा थे कि उन्हें स्वतंत्रता या होमरूल की बात एक विदेशी भाषा में करनी पड़ी, या उन्हें अदालत में अपनी मातृभाषा में काम नहीं करने दिया जाता या फिर सभी दस्तावेज़ अँग्रेज़ी में उपलब्ध हैं, सभी अच्छे अखबार अँग्रेज़ी में मिलते हैं, व कुछ चुनें हुए लोगों के लिए अँग्रेज़ी में शिक्षा उपलब्ध होती है। उन्होंनें इसके लिए औपनिवेशिक सत्ता को ज़िम्मेदार नहीं माना। उन्होंनें माना कि यह बिल्कुल तार्किक है कि अँग्रेज़ यह चाहें कि कुछ सम्भ्रान्त भारतीय, मूल्य और व्यवहार, में अँग्रेज़ी शासकों की तरह ही हो जाएँ। इसी तरह से साम्राज्य को संगठित किया जा सकता है। गाँधी ने अपने साथी भारतीयों को इस स्थिति को अपनाने के लिए ज़िम्मेदार माना। बाद में अपने जीवन में उन्होंने घोषणा की कि सच्ची स्वतंत्रता तभी मिल सकती है जबकि हम पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव से अपने आपको मुक्त कर सकें, पश्चिमी सभ्यता, संस्कृति और पाश्चात्य जीवन शैली, जो हमारे अन्दर बस चुकी है, से मुक्ति ही सच्ची स्वतंत्रता है।

जैसा कि हमने देखा गाँधी ने न केवल औपनिवेशिक शिक्षा की भर्त्सना की बल्कि एक आमूल विकल्प भी सामने रखा। यह विकल्प क्या था और उसमें आमूल परिवर्तनकारी क्या था?

औद्योगीकरण के प्रति गांधी जी के विचार

सबसे पहले मैं औद्योगीकरण के प्रति गाँधीजी के व्यवहार के बारे में कुछ शब्द कहना चाहूँगा। वास्तव में गाँधी आधुनिक मशीनरी के सख्त खिलाफ थे। उनके संकलित लेखों में यह जिक्र मिलता है कि मशीनों ने कैसे भारत को गरीब बनाया, कैसे उस नुकसान का अन्दाजा लगाना मुश्किल है जो मैनचैस्टर ने भारत को मशीन के बने कपड़े पहुँचाकर किया है, जिसने बदले में हाथकरघा से बने कपड़े का घरेलू बाज़ार समाप्त कर दिया। तथापि एक बार फिर, गाँधी इसके लिए मैनचैस्टर या मिल मालिकों को दोषी नहीं ठहराते हैं। ''हम मैनचैस्टर को कैसे दोषी ठहरा सकते हैं?'' वे लिखते हैं, ष्हम मैनचैस्टर के कपड़े पहनते हैं इसलिए मैनचैस्टर इन्हें तैयार करता है।ष हालाँकि उन्होंने गौर किया कि भारत में जहाँ कपड़ा मिल का पदार्पण नहीं हुआ है जैसे कि बंगाल वहाँ हथकरघा उद्योग फल–फूल रहा है। और जहाँ मिल है जैसे बम्बई, वहाँ श्रमिक गुलाम बन गए हैं। बम्बई

की मिलों में महिलाओं की स्थिति देखकर वे हैरान थे और कहा कि मिलों के आने से पहले ये महिलाएँ भूखी नहीं मरती थीं। उन्होंने माना, अगर भारत में मिल की लत बढ़ती है तो ये एक दुखभरी जगह बन जाएगी। वे चाहते थे कि भारतीय लोग केवल कपड़ों का ही नहीं बल्कि मशीन की बनी हर वस्तु का बहिष्कार करें।

गाँधीजी पूरी तरह स्पष्ट हैं जब वे पूछते हैं कि यह सब निर्मित माल आने से पहले भारतवासी क्या करते थे? और जवाब में वे कहते हैं कि ''आज भी वही करना चाहिए।'' जब तक हम मशीन के बगैर पिन नहीं बना पाते हैं, तब तक हम पिनों के बिना काम करेंगे। हमें काँच की बनी तड़क–भड़क वाली चीज़ों की कोई ज़रूरत नहीं है। घर की पैदा की गई रूई से हम बतीया बनाएँगे जैसे पहले बनाते थे, और हाथ से बने हुए दीए तथा कटोरों का प्रयोग करेंगे। और इसी तरह से करते हुए हम अपनी आँखें और अपना पैसा दोनों बचाएँगे और स्वदेशी को भी बढ़ावा देंगे, और इसी तरह हम स्वराज भी प्राप्त कर लेंगे।

प्रश्न

गांधी जी ने स्वदेशी और स्वराज के बीच किस तरह का अन्तरसंबंध देखा?

मशीन रहित समाज की ज़रूरत के सन्दर्भ में गाँधी ने शिक्षा के ऊपर अपने विचार विकसित किए। उनका प्रस्ताव था उत्पादक हस्तशिल्प को स्कूली पाठ्यक्रम का केन्द्र बिन्दु बनाना। और यह विचार केवल हस्तशिल्प को स्कूल का विषय मात्र बनाना नहीं था बल्कि शिल्पकला के अध्ययन को सम्पूर्ण शिक्षण कार्यक्रम का केन्द्रीय तत्व बनाना था। जहाँ हस्तशिल्प जातीय व्यवस्था की श्रेणीबद्धता में सबसे निचले समूह के लोगों का पेशा है, ऐसे में यह विचार स्कूली ज्ञान के समाजशास्त्र में एक आमूल–चूल ढाँचागत बदलाव का अन्देशा देता है। बुनाई, कताई, चमड़े का काम, बर्तन बनाना, धातु कार्य, टोकरी बनाना, जिल्दसाजी जैसी उत्पाद प्रक्रिया का ज्ञान इन हस्तशिल्पों में निहित होता है। साथ ही कुछ खास जातीय समूहों का एकाधिकार भी इन कामों पर होता था विशेष तौर पर उनका जो सामाजिक श्रेणीबद्धता में निचले पायदान पर हैं, जिनमें से कई ''अछूत'' हैं। भारतीय पारम्परिक शिक्षा व्यवस्था भी औपनिवेशिक शिक्षा व्यवस्था की ही तरह साक्षरता और उस तरह के ज्ञान की प्राप्ति पर ज़ोर देती थी जिस पर सवर्णों का एकाधिकार था।

गाँधी के प्रस्ताव ने शिक्षा व्यवस्था को सर के बल खड़ा कर दिया। गाँधी की ''बुनियादी शिक्षा'' का दर्शन और पाठ्यक्रम समाज के निचले तबके के बच्चों का पक्षधर था। इस तरह यह सामाजिक परिवर्तन का कार्यक्रम था। इसका उद्देश्य शिक्षा के प्रतीकात्मक अर्थ को बदलना और शिक्षा के अवसरों के स्थापित ढाँचे को बदलना था।

प्रश्न

गांधी की बुनियादी शिक्षा पाठ्यक्रम के केन्द्र में किस–किस तरह के कामों का समावेश था। यह सामाजिक परिवर्तन का कार्यक्रम कैसे था?

गाँधीजी द्वारा स्कूल में हस्तशिल्प को लाने का प्रस्ताव इतना अतिवादी नहीं था जितना की दिखता है। उनकी इच्छा, जितना सम्भव हो सके, स्कूलों को आत्मनिर्भर बनाने की थी। इसके दो कारण थे। पहला भारत जैसे गरीब देश में सभी बच्चों को शिक्षा देना सम्भव नहीं है अगर स्कूल स्वयं आत्मनिर्भर नहीं होंगे। दूसरा, स्कूल जितने आर्थिक तौर पर आत्मनिर्भर होंगे, उतने ही वे राजनैतिक रूप से स्वतंत्र होंगे। गाँधी राज्य पर निर्भरता से बचना चाहते थे, क्योंकि उन्हें लगता था कि यह सीधे–सीधे केन्द्र का हस्तक्षेप होगा। गाँधी आत्मनिर्भरता एवं स्वायत्तता को सबसे ज़्यादा महत्व देते थे। यह उनके सपनों के भारत, जो कि सम्प्रभु ग्रामीण समुदायों से मिलकर बना था, के अस्तित्व के लिए अति आवश्यक बात थी। 'स्वराज' और 'स्वदेशी' का मिश्रण शिक्षा व्यवस्था से भी जुड़ा था। जहाँ तक गाँधी का मानना था स्वतंत्र भारत में राज्य संचालित शिक्षा व्यवस्था अपने आप में एक पूरी तरह विरोधाभासी बात होती।

उनका यह मानना था कि शारीरिक कार्य को मानसिक कार्य की तुलना में कमतर नहीं मानना चाहिए। उन्होंने माना कि ''अच्छे जीवन'' के लिए एक दस्तकार और श्रमिक का काम एक आदर्श होना चाहिए। जो स्कूल ऐसे उत्पादन कार्यों में लगे थे जिनसे सभी का फायदे होता था, ऐसी शिक्षा दे सकते थे जो व्यक्ति के लिए पूर्ण शिक्षा हो – मन–शरीर और आत्मा की।

गाँधी की शिक्षा योजना में दैनिक पाठ्यक्रम के सन्दर्भ में स्वयत्तता का जो अधिकार एक शिक्षक को दिया गया वो टॉल्सटाय के लिबर्टेरियन सिद्धान्तों से बहुत समानता रखता था। गाँधी भारतीय शिक्षकों को बाहरी हस्तक्षेप से मुक्त रखना चाहते थे, खास तौर से सरकार और राजकीय नौकरशाही से औपनिवेशिक शासन के अर्न्तगत शिक्षक के पास एक निश्चित काम था जो इस बात पर आधारित था कि शासन बच्चों को क्या सिखाना चाहता है। पाठ्यपुस्तकें अनिवार्य थीं इसलिए गाँधी ने पाया कि शिक्षक के जीवित शब्द बच्चों के लिए खास मायने नहीं रखते हैं। एक शिक्षक जो पाठ्यपुस्तक को पढ़ाता है वह बच्चों को मौलिक ज्ञान नहीं दे पाता है। गाँधीजी की योजना पुस्तकों और पाठ्यक्रम के समक्ष शिक्षक की कमज़ोर स्थिति को समाप्त करना चाहती थी। यह सीखने की एक ऐसी अवधारणा को प्रस्तुत करती थी जो केवल पाठ्यपुस्तकों की मदद से ही लागू नहीं की जा सकती थी। पाठ्यक्रम के मामले में शिक्षक की स्वतंत्रता, अगर ज़्यादा नही तो बराबर महत्व रखती थी। उसमें राज्य को यह तय करने का अधिकार नहीं था कि शिक्षक कक्षा में क्या पढ़ाएँ और क्या करें। इसमें शिक्षक को अधिकार थे, मगर मूलतः यह स्कूली शिक्षा के प्रति एक लिबर्टेरियन नज़रिया था जिसमें शक्ति राज्य से गाँवों को सौंपी गई थी।

गाँधी की बुनियादी शिक्षा वास्तव में उनके आदर्श समाज की छवि को साकार करती है जो छोटे, आत्मनिर्भर समुदायों से बना है, और जिसके आदर्श नागरिक उद्यम, आत्म सम्मान और उदारता के गुणों से परिपूर्ण हैं और छोटे सहकारी समुदायों में रहते हैं।

कुछ प्रश्न

1. ''गाँधी की बुनियादी शिक्षा वास्तव में उनके आदर्श समाज की छवि को साकार करती है।'' इस कथन में किस प्रकार के आदर्श समाज की कल्पना है?
2. गांधी जी स्कूलों की आत्मनिर्भरता तथा शिक्षकों की स्वायत्तता के पक्ष में क्यों थे?

एक अनौपचारिक शिक्षक के लिए हम इससे कई उपयोगी सुझाव ले सकते हैं। जैसे कि गाँधी का स्वायत्तता और आत्म–नियंत्रण पर ज़ोर देना अनौपचारिक शिक्षा के माहौल में भी झलकता है। गाँधीजी की बुनियादी शिक्षा की अवधारणा रोज़मर्रा की ज़िन्दगी से सीखे ज्ञान से जुड़ती थी, जिसको आधार बनाकर ही अनौपाचारिक शिक्षक काम करते हैं। यह एक ऐसी शिक्षा है जिसमें व्यक्ति को ध्यान में रखा गया है मगर यह व्यक्तियों के बीच सहयोग पर निर्भर है। इसमें शिक्षक और छात्र के बीच के रिश्तों की एक चिरपरिचित तस्वीर भी पेश की गई है।

''एक शिक्षक जो बच्चों के साथ तादात्म्य बनाता है, घुल मिल जाता है, वह उन्हें सिखाने की बजाय उनसे कहीं ज़्यादा सीखता है। जो अपने शिष्यों से कुछ नहीं सीखता है वह बेकार है। जब भी मैं किसी से बात करता हूँ तो उससे कुछ न कुछ सीखता हूँ। मैं उसे देने से ज़्यादा उससे लेता हूँ। इस तरह एक सच्चा शिक्षक स्वयं को अपने शिष्य का शिष्य ही मानता है। अगर तुम इस भाव के साथ विद्यार्थियों को पढ़ाओगे, उनसे तुम्हें बहुत लाभ मिलेगा।''

अन्त में यह एक ऐसी शिक्षा थी जो सम्पूर्ण व्यक्तित्व को शिक्षा देती थी, बजाय उसके किसी एक पहलू पर ध्यान केन्द्रित करने के। यह एक बहुत ही नैतिक गतिविधि थी।

अभ्यास

1 गांधी जी के आत्मनिर्भर स्कूल तथा स्वायत्तता प्राप्त शिक्षक के विचार आज कितने प्रासंगिक है? तर्क दीजिए।

2 गांधी जी की बुनियादी शिक्षा कैसे उनके स्वराज और स्वदेशी के विचार को पुष्ट करता है? तर्क दीजिए।

| | | | | | | | |

अध्याय – 20

टैगोर और गाँधी के शैक्षिक आदर्शों का तुलनात्मक अध्ययन

देशज शिक्षा औपनिवेशिक विरासत और जातीय विकल्प, परमेश आचार्य, अनुवाद–अनिल राजिमवाले, ग्रन्थ शिल्पी प्रकाशन, नई प्रथम हिन्दी संस्करण दिल्ली, पृष्ठ 162–175.

अध्याय की रूपरेखा

- सामान्य परिचय
- अध्याय के उद्देश्य
- किताबी शिक्षा प्रणाली
- आत्मशक्ति और स्वराज
- ग्राम आधारित अर्थतंत्र और कार्य आधारित शिक्षा
- गांधी जी का स्वराज
- मनुष्य और प्रकृति के बीच आध्यात्मिक एकता
- बुनियादी शिक्षा
- घर और स्कूलों के बीच संबंध और बच्चों की आत्मनिर्भरता
- मशीन सभ्यता पर टैगोर और गांधी के विचार
- आतमनिर्भर शिक्षा और शैक्षिक प्रयोग
- कृषि समाज की संस्कृति और आत्मनिर्भर शिक्षा
- अभ्यास

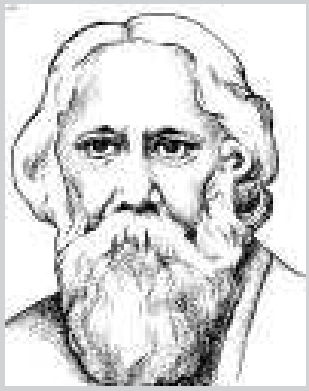

सामान्य परिचय

यह लेख दो महानतम भारतीय शिक्षाविदों रवींद्रनाथ टैगोर और मोहनदास करमचन्द गाँधी के शैक्षिक आदर्शों को समझने की मात्र एक साधारण सी कोशिश भर है। वर्तमान बदलते भारतीय अर्थतंत्र के परिप्रेक्ष्य में इन दोनों का तुलनात्मक अध्ययन बड़ा दिलचस्प होगा। इससे हमें यह समझने का मौका मिलेगा कि हमारी शिक्षा प्रणाली हमारे शिक्षकों के आदर्शों से कितनी अलग है। आदर्श और वास्तविकता के बीच की दूरी हमें निराश करती है। लेकिन हमें पूरी तरह निराश नहीं होना चाहिए। हमें शैक्षिक विचारों के इतिहास से समझना होगा कि किसी भी देश में शिक्षा का विकास आखिरकार महान शिक्षाविदों के विचारों से नहीं बल्कि आवश्यकता अर्थात् बाज़ार की ताकतों से तय होता है। इसका अर्थ यह नहीं कि शिक्षा प्रणाली निर्णित करने में महान शिक्षाविदों की भूमिका है ही नहीं। उनके विचारों का प्रभाव शिक्षा प्रणाली पर देखा जा सकता है। कोई भी विचार बिना प्रभाव छोड़े नहीं रहता। लेकिन साथ ही यह भी सच है कि किसी भी देश ने रूसो, डीवी, टैगोर और गाँधी सरीखे महान शिक्षकों के शैक्षिक विचारों को मुख्य शिक्षा प्रणाली के अंग के रूप में नहीं अपनाया।

अध्याय के उद्देश्य

1. टैगोर और गांधी के शैक्षिक आदर्शों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. वर्तमान परिपेक्ष्य में इन शैक्षिक आदर्शों पर चिन्तन करना।

शिक्षा सम्बन्धी वर्तमान विचारों के सन्दर्भ में टैगोर और गाँधी के शैक्षिक आदर्शों का वस्तुगत अध्ययन मुझे कठिन दिखाई देता है। टैगोर मुझे गाँधी से अधिक कठिन दिखाई देते हैं, शायद लिखने

की उनकी मोहक शैली के कारण। उनकी शैली विश्लेषणात्मक से अधिक सांकेतिक है। इसलिए वह दिमाग की बजाय दिल को अधिक अपील करती है। आखिर वे एक कवि हैं इसलिए उनके शैक्षिक विचार एक कवि के दिमाग की उपज है जिनमें स्वाभाविक है अलग–अलग किस्म के विचार मिले–जुले हैं। इसीलिए उन पर विभिन्न प्रकार की इतनी टिप्पणियाँ पाई जाती हैं। दूसरी ओर, गाँधी नैतिक राजनीति से जुड़े हुए थे। उनकी सोच–समझ आम जनता की इच्छाओं–ज़रूरतों से पूरी तरह मेल खाती थी। वे जनता की भाषा में सोचा करते। उन्हें शिक्षा सम्बन्धी विवेचना में कोई दुविधा नहीं थी। उनकी शिक्षा नैतिकता पर आधारित राजनीतिक कार्यक्रम से जुड़ी हुई थी। यह कहा जा सकता है कि उनसे पहले किसी भी शिक्षाविद या राजनीतिज्ञ ने शिक्षा की राजनीति पर इस तरह विचार नहीं किया। शायद यही टैगोर और गाँधी में महत्वपूर्ण अन्तर था। साथ ही, उनके शैक्षिक विचारों में समानता भी थी, खासकर दार्शनिक स्तर पर। लेकिन यदि हम उनके बीच अन्तर की उपेक्षा करेंगे तो बेसिक शिक्षा के मूल कारणों की ही उपेक्षा करेंगे। वास्तव में, उन दोनों ने स्वयं ही कई बार अपने मतभेद खुलकर प्रकट किए।

प्रश्न

उपरोक्त पैराग्राफ में गांधी और टैगोर के विचारों में किस प्रकार के अन्तर का उल्लेख है?

किताबी शिक्षा प्रणाली

शायद यह सही है कि अब तक जिन्होंने इस विषय का अध्ययन किया है, उन्होंने इन दो व्यक्तियों के बीच अन्तर की बजाय समानताओं पर अधिक ज़ोर दिया है। 1947 में द विश्व भारती क्वार्टरली ने ''मुक्त भारत'' में शिक्षा की चुनौतियों पर विचार करते हुए एक विशेष शिक्षा अंक प्रकाशित किया। इसका उद्देश्य था 'उत्तर देने की बजाय प्रश्न खड़े करना...।' इसमें टैगोर और गाँधी के शैक्षिक विचारों और प्रयोगों के बारे में भारत के प्रमुख विद्वानों के महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित किए गए। मेरे विचार में यह विचार–विमर्श काफी गहरा था। उसे राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली विकसित करने के हित में आगे जारी रखा जाना चाहिए था। दुर्भाग्यवश भारत में शिक्षा–सम्बन्धी विवेचना नेहरूवादी आधुनिकीकरण कार्यक्रम के तहत परिवर्तित हो गया। राष्ट्रीय बहस में गाँधी और टैगोर दोनों का ही महत्व कम हो गया। दोनों को सड़कों एवं भवनों के नामों के द्वारा अधिक जाना जाने लगा। हमारे शहरों की सड़कों एवं भवनों के नामों में गाँधी और टैगोर अवश्य पाए जाते हैं। इस बीच राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली औपनिवेशिक व्यवस्था की विरासत बनी हुई है। वह अधिकाधिक अलग–अलग किस्म की और किताबी बनती जा रही है।

आत्मशक्ति और स्वराज

19वीं सदी का अन्त आते–आते भद्रलोक के लिए अँग्रेज़ी शिक्षा उतनी मोहक नहीं रह गई थी जितनी कि वह उस सदी की शुरुआत में थी। भारतीय भद्रलोक अँग्रेज़ी शिक्षा की शिक्षाप्रद भूमिका और समाज के मोहजाल से मुक्त हो रहे थे, हालाँकि पूरी तरह नहीं। वास्तव में उस सदी के मोड़ तक भारत में शिक्षा–सम्बन्धी बहस ने अलग रास्ता पकड़ लिया। मैकाले का अब भारतीय मानस पर प्रभाव नहीं रह गया था। उसका स्थान भारतीय गर्व ने ले लिया। अब शैक्षिक विवेचना में मातृभाषा और राष्ट्रीय संस्कृति को महत्व का स्थान मिला। इसमें कोई अचरज नहीं कि टैगोर और गाँधी दोनों ही ने शिक्षा के बारे में बहस की शुरुआत औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली की आलोचना से की। राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली विकसित करने की उनकी इच्छा से उनके शैक्षिक आदर्श विकसित हुए। शिक्षा और समाज के बारे में उनकी रचनाओं से यह स्पष्ट हो जाता है जैसे, टैगोर ने अपना लेख 'स्वदेशी समाज' (1905) में लिखा और गाँधी ने 'हिन्द स्वराज' (1908) में। दोनों ही ने 'आत्मशक्ति' को 'स्वराज' का सार बताया। दोनों ने अँग्रेज़ी शिक्षा तथा मातृभाषा की उपेक्षा के बुरे प्रभावों की ओर ध्यान दिलाया। टैगोर मूल रूप से कवि थे। जैसा कि हम बाद में देखेंगे, वे राष्ट्रवाद का पूरी तरह त्याग करके राष्ट्रीय सीमाओं से आगे बढ़ जाते हैं। दूसरी ओर गाँधी एक राजनीतिक व्यक्ति थे जिन्होंने अपना जीवन मानवीय जीवन के नैतिक सार को हासिल करने में लगा दिया। उनका विश्वास था कि भारतीय सन्दर्भ में राष्ट्रवाद की ऐतिहासिक भूमिका की मान्यता इसकी सीमा पर विजय पाएगी। यह याद रखा जाना चाहिए कि दोनों ही महापुरुष राष्ट्रीय जागरण के

दौरान प्रसिद्धि की ऊँचाइयाँ छूने लगे। और अचरज की बात यह है कि आज़ादी के बाद दोनों ही को अजायबघर की शब्दहीन वस्तुएँ बना दिया गया है।

टैगोर ने शिक्षा पर 100 से अधिक रचनाएँ लिखीं। इसके अलावा उनकी कई अन्य रचनाओं में भी शिक्षा सम्बन्धी विचार पाए जाते हैं। उनकी कुछ रचनाओं में रूसो और डिवी सरीखे महान शिक्षाविदों के विचारों का कुछ प्रतिबिम्ब भी पाया जा सकता है। फिर भी वे अलग किस्म के थे। उनके अपने अलग विचार थे और उन्होंने शैक्षिक विचारों एवं आदर्शों की दुनिया में अपना अलग ही स्थान बना लिया। इस छोटे से लेख में शिक्षा सम्बन्धी उनके सारे विचारों को छू पाना भी सम्भव नहीं। इसलिए मैं केवल उन बिन्दुओं पर ही विचार करूँगा जो मेरी समझ में उनके शैक्षिक आदर्शों को समझने और इस सम्बन्ध में गाँधी के साथ उनकी तुलना करने में मददगार हैं।

प्रश्न

टैगोर ने 'स्वदेशी समाज' और गांधी ने 'हिन्द स्वराज' में जो लेख लिखा उनमे दो महत्वपूर्ण समानताएं क्या थी?

शिक्षा सम्बन्धी टैगोर की रचनाएँ तीन व्यापक श्रेणियों में बाँटी जा सकती हैं। पहली श्रेणी में हम वे रचनाएँ शामिल कर सकते हैं जिसमें उन्होंने आलोचना निर्मित की और भारत में अँग्रेज़ी औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली की सीमाएँ दर्शाईं। ऐसे कुछ लेख थे, ''शिक्षार हेर फेर'' (1893), ''शिक्षार बाहान'' (1915), 1933 का ''शिक्षार दिकिसष पर कलकत्ता विश्वविद्यालय में भाषण, 'शिक्षार स्वांगीकरन' पर 1936 में न्यू एजूकेशन फेलोशिप का भाषण, तथा कुछ अन्य रचनाएँ। इन लेखों में वे मुख्यतः शिक्षा के माध्यम पर विचार करते हैं, खासकर सार्वत्रकता तथा औपनिवेशिक व्यवस्था की सीमाओं के सन्दर्भ में। उन्होंने मातृभाषा की बजाय माध्यम के रूप में अँग्रेज़ी के प्रयोग की आलोचना की। उन्होंने भावविह्वल होकर मातृभाषा का समर्थन किया। वे लिखते हैं, 'शिक्षाए मातृभाषाए मातृदुग्ध' (शिक्षा में मातृभाषा माता के दूध के समान है।) वे तो शिक्षा के उच्चतम चरण तक मातृभाषा लागू करने के हक में थे। यहाँ तक कि वे मातृभाषा में ही अँग्रेज़ी पढ़ाना चाहते थे। इस उद्देश्य के लिए उन्होंने एक प्राइमर 'इंग्राजी सोपान' लिखा। कई विद्वानों के विचार में यह तरीका बांग्ला भाषा–भाषी बच्चों के लिए सबसे उपयुक्त था। बंगाली विश्वविद्यालय उनका सपना था। उनके विचार में वर्तमान शिक्षा प्रणाली गहन अन्धेरे में से गुजरती ट्रेन के प्रकाशित डिब्बों के समान थी। कुछ विशेष लोग ही पढ़ पा रहे थे और भारी संख्या में जनता पीछे छूटती जा रही थी। उनकी दृष्टि में जब तक मातृभाषा माध्यम न बने, तब तक शिक्षा का प्रसार नहीं हो सकता। उनका दृढ़ मत था कि यह काम अँग्रेज़ी माध्यम के सहारे नहीं हो सकता था। वे परीक्षोन्मुख किताबी शिक्षा के भी खिलाफ थे, जो रटकर पढ़ने को प्रेरित करता है। रटने और पुस्तकों से नकल करने के बीच बहुत कम अन्तर था क्योंकि रटने वाले भी जो कुछ किताबों में है उसे ही ज्यों का त्यों रख देते।

प्रश्न

''वर्तमान शिक्षा प्रणाली गहन अन्धेरे में से गुजरती ट्रेन के प्रकाशित डिब्बों के समान थी। कुछ विशेष लोग ही पढ़ पा रहे थे और भारी संख्या में जनता पीछे छूटती जा रही थी।'' इसका क्या आशय है?

शिक्षा का माध्यम

यह जानना समीचीन होगा कि अधिकतर उपरोक्त मुद्दों पर गाँधी के विचार मिलते–जुलते थे। वे भी किताबी पढ़ाई, परीक्षा की ओर झुकाव और रटने के खिलाफ थे। उन्होंने बहुत अधिक किताबों न रखने की सलाह दी। उनके विचार में हमारे जैसे गरीब देश में किताबें सोच–समझकर ही रखवानी चाहिए और उनकी संख्या कम होनी चाहिए। अन्यथा गरीब बच्चे पढ़ाई से वंचित हो जाएँगी। टैगोर के समान उनका भी विचार था कि मातृभाषा उच्चतम स्तर तक पढ़ाई का माध्यम होनी चाहिए। लेकिन स्कूल में अँग्रेज़ी के स्थान के बारे में दोनों के विचारों में बड़ा अन्तर था। गाँधी के अनुसार बच्चे को तब तक अँग्रेज़ी नहीं पढ़ाई जानी चाहिए। जब तक वह 14 वर्ष की आयु का न हो जाए। बाद में भी सबों को पढ़ना जरूरी नहीं था। वास्तव में ''नई तालीम'' नामक उनकी शिक्षा प्रणाली में अँग्रेज़ी के लिए कोई जगह नहीं थी। दूसरी ओर, टैगोर शुरू से ही अँग्रेज़ी पढ़ाने के पक्ष में

थे। शान्तिनिकेतन में ग्रामीण बच्चों के एक स्कूल 'शिक्षा सत्र' में कक्षा एक से ही अँग्रेज़ी पढ़ाई जाती थी। यह उन्होंने ''शिक्षार स्वांगीकरन'' में जो कुछ कहा, उसके विपरीत है। वहाँ उन्होंने कहा था, ''शिक्षा में मातृभाषा माता के दूध के समान है।'' अन्य स्थानों पर अपने बचपन के अनुभव का उदाहरण देते हुए वे कहते हैं कि अपनी मातृभाषा में कुछ क्षमता हासिल कर लेने के बाद बच्चे को अँग्रेज़ी से परिचित कराना चाहिए। टैगोर जब 12 वर्ष के थे और बांग्ला में अच्छी प्रगति कर चुके थे, तभी उनका परिचय अँग्रेज़ी से कराया गया था।

प्रश्न

मातृभाषा और अंग्रेजी शिक्षा के बारे में टैगोर और गांधी के विचारों में क्या समानताएं और क्या असमानताएं थी?

लेकिन गाँधी के विचार इस सम्बन्ध में बड़े ही मूलगामी थे। वे माध्यम या अनिवार्य विषय के रूप में अँग्रेज़ी के दृढ़ विरोधी थे। वे लिखते हैं, ''भारत में जितने अन्धविश्वास हैं, उनमें सबसे बड़ा यह है कि आज़ादी के विचार और सही विचार अपनाने के लिए अँग्रेज़ी भाषा का ज्ञान निहायत ज़रूरी है।'' यदि हम राष्ट्रीय आत्महत्या नहीं करना चाहते तो अँग्रेज़ी को विचारों का माध्यम नहीं बनाया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में नवजागरण वाले बंगाली भद्रलोक और गाँधी के बीच दिलचस्प अन्तर है। प्रसिद्ध विद्वान और इस भद्रलोक के कबीले के सच्चे प्रतिनिधि राजेन्द्रलाल मित्र ने एक बार कहा था कि ष्यदि अँग्रेज़ी में न सोचना होता और अँग्रेज़ी में अपने विचार न प्रकट करने पड़ते तो राममोहन राय अधिक बड़े सुधारक होते और लोकमान्य तिलक आधिक बड़े विद्वान।.... इसमें शक नहीं कि उन दोनों ने अँग्रेज़ी साहित्य की विपुल राशि से काफी ज्ञान हासिल किया। लेकिन यह ज्ञान उन्हें अपनी मातृभाषाओं में मिलना चाहिए था। कोई भी देश अनुवादक पैदा कर राष्ट्र नहीं बन सकता। गाँधी और टैगोर के बीच यह अन्तर 1921 के असहयोग आन्दोलन के दौरान बढ़ता गया। टैगोर गाँधी द्वारा अँग्रेज़ी शिक्षा के सम्पूर्ण विरोध और शिक्षा की औपनिवेशक प्रणाली के साथ असहयोग की नीति से सहमत नहीं थे। यहाँ तक कि टैगोर ने जगदानन्द राय को लिखे एक पत्र में राष्ट्रवाद को एक ''भौगोलिक भूत'' बताया। वे लिखते है,''..... अब इस भूत से सारा विश्व आतंकित हो गया है। अब इससे मुक्ति पाने का समय आ चुका है। इसी सन्दर्भ में उन्होंने अपना प्रसिद्ध लेख ''शिक्षार मिलन'' लिखा। इसमें उन्होंने पूर्व और पश्चिम के बीच आपसी लेनदेन पर ज़ोर दिया। यही 'विश्वभारती' के उनके विचार का केन्द्र था।

टैगोर पश्चिम से आधुनिक विज्ञान और टेक्नॉलॉजी का ज्ञान लेना चाहते थे। जबकि पश्चिम को पूर्व के आध्यात्मिक और आत्मोत्सर्ग के विचारों से धनी बनाना चाहते थे। वे पश्चिम का उपभोक्तावाद पसन्द नहीं करते थे। वे गाँधी द्वारा असहयोग का आह्वान, खासकर अँग्रेज़ी शिक्षा का त्याग, एक पीछे ले जाने वाला कदम मानते थे। इससे हमारे घर में ताजा हवा आनी बन्द हो जाएगी और हमारा राष्ट्रीय जीवन एक कैदखाने में बदल जाएगा। गाँधी ने जवाब दिया, ष्मैं अपने घर के चारों ओर दीवार खड़ी नहीं करना चाहता। मैं अपनी खिड़कियाँ बन्द नहीं करना चाहता। मैं चाहता हूँ कि सभी देशों की संस्कृति पूरी आज़ादी से मेरे घर में घूमे। लेकिन मैं उनमें से किसी से भी धक्का खाना नहीं चाहता।'' उन्होंने स्पष्ट किया कि वे अँग्रेज़ी सीखने के खिलाफ नहीं है लेकिन वे इसे हमारी शिक्षा–व्यवस्था पर हावी नहीं होने देना चाहते। वे न अँग्रेज़ी को माध्यम बनाना चाहते हैं, और न ही इसे सबके लिए अनिवार्य विषय।

उस वक्त टैगोर के ''शिक्षार मिलन'' ने विवाद पैदा कर दिया। दूसरों ने भी इसमें भाग लिया। उपन्यासकार शरतचन्द्र चटट्ोपाध्याय ने जवाब में 'शिक्षार विरोध' लिखा। इसका मुख्य मुद्दा यह था कि पूर्व और पश्चिम के बीच पास्परिक लेनदेन सम्भव नहीं था। पश्चिम कभी भी न्यूनतम विज्ञान और टेक्नॉलॉजी नहीं देगा और न ही वह पूर्व का आध्यात्म और उत्सर्ग भावना अपनाएगा। उल्टे वे चाहेंगे कि हम हमेशा उन पर निर्भर रहें ताकि वे हमारा शोषण करते रहें। उन्होंने औपनिवेशिक शिक्षा से असहयोग करने के गाँधी के आवाहन का समर्थन किया, और कहा, ''कई बार स्कूलों में भर्ती होने कि बजाय उनका बायकॉट करना अधिक शिक्षाप्रद होता है।'' यह हमें ईवान इलिच के 'डीस्कूलिंग सोसाइटी' की याद दिलाता है।

सत्येन्द्रनाथ राय ने टैगोर की शैक्षिक रचनाओं की पुस्तक का सम्पादन किया है। उनके अनुसार शरतचन्द्र और टैगोर, दोनों ही अपने–अपने सन्दर्भों में सही है। उनके अनुसार टैगोर के विचार दार्शनिक स्तर पर विकसित हुए जबकि शरतचन्द के सामने तात्कालिक राजनीतिक सन्दर्भ था। लेकिन यह कोई विश्वस्त करने वाला तर्क नहीं है। एक अर्थ में ''शिक्षार मिलन'' उस वक्त की ताजा राजनीतिक समस्याओं के प्रति प्रतिक्रिया थी। भारतीय अर्थतंत्र का वर्तमान रुझान 'शिक्षार विरोध' में शरतचन्द्र के विचारों की पुष्टि करता है। सत्येद्रनाथ राय ने भी स्वीकार किया कि हमारा फौरी अनुभव शरतचन्द्र की आशंकाओं की पुष्टि करता है। आज़ादी के बाद से भारत सांस्कृतिक एवं शैक्षिक जीवन के सभी क्षेत्रों में निर्भरता की मानसिकता से ग्रसित है। इसलिए यह कोई अचरज़ की बात नहीं कि दूसरे सूक्ष्म इलेक्ट्रानिक उत्पादों की बात तो छोड़ ही दीजिए, भारत शेविंग ब्लेड बनाने की टेक्नॉलॉजी भी विकसित नहीं कर सका। भूमण्डलीकरण के नाम पर भारत को अमरीका तथा यूरोप के तथाकथित विकसित देशों का स्थायी उपनिवेश बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। इलेक्ट्रानिक माध्यम हमारी राष्ट्रीय संस्कृति को बर्बाद करने में सफल हो गए हैं। साथ ही उन्होंने तथाकथित विकसित देशों की अति असभ्य पूँजीवादी संस्कृति को आगे बढ़ाया है।

ग्राम–आधारित अर्थतंत्र और कार्य–आधारित शिक्षा

शायद गाँधी ही एकमात्र ऐसे भारतीय नेता थे जिन्होंने ऐसे रास्ते के खतरे को पहचाना कि उन पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं रह सकेगा। आधुनिकीकरण के सिद्धान्त पर आधारित विकासवाद के रास्ते पर चलने के नतीजे पहचानने की उनमें दूरदृष्टि थी। विकास की निरन्तर प्रक्रिया की गलती के प्रति वे सचेत थे। यूरोप और अमरीका में अपनाए गए आधुनिकीकरण प्रक्रिया की अपर्याप्तता और दमनकारी चरित्र को वे पहले ही समझ गए थे। साथ ही, शायद वे ही एकमात्र नेता थे जिन्होंने इन देशों की अन्धी नकल करने की बजाय विकल्प के बारे में सोचा। मानवता के भविष्य के लिए विकल्प के हिस्से के रूप में उन्होंने ग्राम–आधारित अर्थतंत्र और कार्य–आधारित शिक्षा की कल्पना की। गाँधी के लिए शिक्षा वास्तव में उनके सम्पूर्ण राजनीतिक कार्यक्रम का हिस्सा थी। गाँधी का विश्वास था कि राजनीति एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य मानव मूल्यों को मुक्त करना होना चाहिए।

गांधी जी का स्वराज

गाँधी के लिए स्वराज का अर्थ सिर्फ राजनैतिक आज़ादी नहीं था। स्वराज से उनका मतलब ''जनता के अर्थों में आत्मशासन'' था। देशभक्ति से उनका मतलब ''सम्पूर्ण जनता की भलाई'' था। उनके विचार में शोषक समाज में स्वराज हासिल नहीं किया जा सकता। उनकी दृष्टि में जनता का स्वराज हासिल करने के लिए जनता की शिक्षा का राष्ट्रीय कार्यक्रम होना ज़रूरी था। उनके अपने शब्दों में, ''स्वराज की तीर्थयात्रा एक दुखदाई यात्रा है। इसमें सभी विस्तृत बातों पर ध्यान देना पड़ता है। इसका अर्थ व्यापक संगठन क्षमता है, इसका अर्थ गाँवों में, मात्र गाँव वालों की सेवा के लिए काम करना है। दूसरे शब्दों में राष्ट्रीय शिक्षा के लिए जनता के लिए शिक्षा है। इसका अर्थ जनता के बीच राष्ट्रीय चेतना जगाना है।'' स्वराज के गाँधी के सिद्धान्त में उनके शैक्षिक आदर्श निहित हैं।

टैगोर भी गाँवों की मुक्ति चाहते थे और ग्रामीणों की आत्मशक्ति जगाना चाहते थे। वास्तव में उन्होंने सृजनात्मक कार्य और ग्राम कल्याण को बड़ा महत्व दिया। उन्होंने आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता पर ज़ोर दिया। टैगोर ने अपने शैक्षिक प्रयोग प्रकृति की गोद में और आधुनिक शहरी इलाकों से दूर बोलपुर में शुरू किए। इससे उनकी प्राथमिकता का पता चलता है। टैगोर शिक्षा सम्बन्धी विचारों को अपनी रचनाओं की दूसरी श्रेणी में विकसित करते हैं। उनकी कुछ रचनाएँ हैं: 1909 में लिखा गया 'तपोवन', 1924 की रचना ''ए पोएट्स स्कूल'' (एक कवि का स्कूल), ''आश्रमेर शिक्षा'' (1936), ''आश्रमेर रूप–ओ–विकाश'' जो उनके मृत्यु के वर्ष 1941 में प्रकाशित हुई, और विश्वभारती नामक पुस्तिका में शामिल किए गए भाषण। रचनाओं की तीसरी श्रेणी में वे रचनाएँ आती हैं जो शान्तिनिकेतन विद्यालये शिक्षादर्श नामक पुस्तक में शामिल की गई हैं। साथ ही, कई अन्य पत्र हैं जो आश्रमवासियों, मित्रों और सम्बन्धियों को इस प्रश्न पर लिखे गए कि शान्तिनिकेतन आश्रम कैसे चलाया जाए।

मनुष्य और प्रकृति के बीच आध्यात्मिक एकता–

मेरे विचार में शिक्षा सम्बन्धी टैगोर के मूल विचार उनके लेख ''तपोवन'' में पाए जाते हैं। उनके शैक्षिक आदर्शों का निर्माण मूलतः दार्शनिक विचारों, खासकर उपनिषदों द्वारा हुए थे। इसमें कोई शक नहीं कि टैगोर पर प्राचीन ब्राह्मणवादी पढ़ने–पढ़ाने का गहरा प्रभाव था। यह तरीका संस्कृत साहित्य, विशेषकर कालिदास के काव्य में प्रकट होता है। उनके विचारों की झलक 'तपोवन', 'तपस्या', 'आश्रम', 'संगम', आदि जैसे महत्वपूर्ण शब्दों के प्रयोग में मिलती है। इनका प्रयोग उन्होंने बिना अर्थ नहीं बल्कि एक विशेष उद्देश्य के साथ किया। उनके शैक्षिक सिद्धान्त का सार मनुष्य और प्रकृति के बीच आध्यात्मिक एकता है। टैगोर की कल्पना थी कि बच्चों का विकास नैसिर्गिक रूप से प्रकृति की गोद में होना चाहिए। उन पर रूसो और अँग्रेज़ी रोमांटिक कवियों, जैसे शेली और वड्र्सवर्थ का प्रभाव देखा जा सकता है। रूसो और गाँधी के समान टैगोर का भी विश्वास था कि शहर के मुकाबले गाँव शिक्षा के उद्देश्य के लिए अधिक उपयुक्त है। इस अर्थ में वे पूरी तरह कल्पनावादी थे। वे कहा करते थे कि शिक्षा फैक्टरी में काम की दक्षता हासिल करने के लिए नहीं थी और न ही स्कूल और कालेजों में परीक्षाएँ पास करने के लिए थी। सच्ची शिक्षा तपोवन में, प्रकृति के साथ एकता में ही हासिल की जा सकती है, तपस्या के जरिए शुद्ध होकर ही। उन्होंने आगे कहा,... ''हमारे स्कूल में यह सिर्फ ज्ञानेन्द्रियों की शिक्षा नहीं होगी, सिर्फ ज्ञान के लिए नहीं, बल्कि 'बोध' के लिए भी।'' वे लिखते हैं, ''मेरे स्कूल की स्थापना का मूल स्वतंत्रता की इच्छा की उस याद में है... सम्पूर्ण मुक्ति विश्व में सम्बन्धों के सम्पूर्ण समन्वय में है– इसे जानकर नहीं बल्कि उसका हिस्सा बनकर।'' अपने शैक्षिक उद्देश्य के बारे में कवि ने कहा, ''मैनें अपनी संस्था एक सुन्दर जगह में बनाई, शहर से दूर, जहाँ बच्चों को पुरातन पेड़ों की छाँव तले अधिकतम आज़ादी थी और चारों ओर खेत–खलिहान क्षितिज तक फैले हुए थे.... शुरू से ही मैंने ऐसा वातावरण निर्मित करने की कोशिश की जो कक्षा में पढ़ाई से अधिक महत्व की थी।''

लेकिन टैगोर शान्तिनिकेतन से निराश हो गए। वे समझते थे कि इसमें उनके विचारों पर अमल नहीं किया गया। वे कहते हैं, ''अभिभावकों की अवसरवादिता परीक्षा की प्रणाली लागू करने के लिए ज़िम्मेदार है। इसने एक प्रकार से आज़ादी और स्वतः स्फूर्तता का वातावरण खराब कर दिया है।'' वित्त की समस्या हल करने के लिए उन्हें धनी परिवारों के बच्चे भर्ती करने पर मजबूर होना पड़ा। अभिभावक अपने बच्चों के भविष्य के बारे में चिन्तित थे और इसलिए उन्होंने परीक्षा लागू करने पर जोर दिया। अपना प्रयोग जारी रखने के लिए टैगोर ने 1924 में एक और स्कूल स्थापित किया। इसमें ऐसे बच्चे शामिल किए गए जो अनाथ थे या जिनके माता–पिता इतने गरीब थे कि वे उन्हें किसी भी स्कूल में नहीं भेज सकते थे। पैसों की कमी के कारण शुरू में टैगोर ने ज़्यादा बच्चे भर्ती नहीं किए। उन्हें स्कूल से बड़ी आशाएँ थीं। वास्तव में, टैगोर ने एमहर्स्ट को 19 दिसंबर 1937 को लिखे एक पत्र में ''शान्तिनिकेतन के स्कूलों और कालेजों की बजाय शिक्षा सत्र की शैक्षिक सम्भावनाओं को अधिक महत्व दिया। शान्तिनिकेतन के स्कूलों और कालेज तो हर दिन अधिकाधिक देश के दूसरे स्कूलों और कालेजों के समान होते जा रहे हैंः बन्द पिंजड़ों के समान जो छात्रों के दिमागों को कैद पंछी की तरह लेते हैं, जिनका मानवीय महत्व इस बात से मापा जाता है कि वे पाठों को यंत्रवत दोहराते हैं या नहीं, जिसे इस धरती के लिए विदेशी झुकाव वालों ने तय किया है।'' टैगोर समझते थे कि शिक्षा सत्र शिक्षा सम्बन्धी उनके विचारों की पुष्टि करेगा। दुर्भाग्यवश, जैसी अपेक्षा वे कर रहे थे, वैसा हुआ नहीं।

सुनीलचन्द्र सरकिर के अनुसार, ''(श्रीनिकेतन स्कूल में) अलग बात यह हुई कि व्यावहारिक काम को अधिक महत्व दिया गया जिसके सहारे यह अपेक्षा की जाती थी कि छात्रों को आसपास की दुनिया का अधिक ज्ञान होगा।'' यह ध्यान देने योग्य है कि एल. के. हमहर्स्ट ने पहले ही ''स्कूल आफ एग्रीकल्चर'' नामक संस्था के निदेशक के रूप में ग्रामीण पुनगर्ठन कार्यक्रम शुरू किया था। टैगोर इस संस्था के अध्यक्ष थे। श्रीनिकेतन प्रयोग के दौरान ग्रामीण समाज की विशेष ज़रूरत के आधार पर विकसित आत्मसहायता और सहयोग के जरिए सामुदायिक विकास पर ध्यान दिया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि टैगोर डिवी के विचारों और प्रयोगों से अवगत थे। हो सकता है ऐसा एमहर्स्ट के ज़रिए हुआ हो, जो डिवी के स्कूल के छात्र थे। श्रीनिकेतन प्रयोग के पीछे

यदि टैगोर प्रोत्साहन के स्त्रोत थे तो एमहर्स्ट मस्तिष्क थे। यह जानना दिलचस्प होगा कि श्रीनिकेतन प्रयोग के बावजूद 'तपोवन' में प्रकट किए गए शिक्षा सम्बन्धी उनके विचार बाद में भी नहीं बदले। इन दोनों लेखों के बीच बहुत कम ही अन्तर है– 1909 में रचित 'तपोवन' और 1936 में लिखित 'आश्रमेर शिक्षा'। इसमें भी कोई अचरज नहीं कि श्रीनिकेतन को टैगोर के प्रमुख शैक्षिक प्रयोग का मुख्य अवयव नहीं माना गया है। इसे लोगों ने एक सहायक अध्याय भर माना है।

यह दिलचस्प तथ्य है कि ब्रह्मचर्य विद्यालय की स्थापना बोलपुर में 1901 में की गई थी। उस वक्त टैगोर ''नैवेद्य'' नामक कविताएँ लिख रहे थे जिनमें उपनिषदों की भावना का काफी हद तक समावेश किया गया था। इसी वक्त 1902 में ब्रह्मबांधव उपाध्याय ने टैगोर को 'गुरूदेव' कहा और वे अन्त तक गुरूदेव बने रहे। उस समय टैगोर स्कूल के नियमों में 'संहिता' की परम्पराओं का उपयोग करना चाहते थे। मनोरंजन बंदोपाध्याय को एक पत्र में उन्होंने स्पष्ट कहा कि जो कुछ हिन्दू धार्मिक नियमों के खिलाफ हो, उसे आश्रम स्कूल में जगह नहीं मिलनी चाहिए। वे आगे लिखते हैं, ''संहिता के नियमों के अनुसार छात्रों को अपने ब्राह्मण शिक्षकों के पैर छूकर प्रणाम करना चाहिए जबकि गैर–ब्राह्मण शिक्षकों को सिर्फ हाथ जोड़कर प्रणाम करना चाहिए।'' टैगोर ने 1909 में ''तपोवन'' लिखा जिसमें उन्होंने शिक्षा सम्बन्धी विचारों का विकास किया। बिना शक उपनिषद की भावना इस लेख का सार है। इससे कुछ वर्ष पूर्व 1904 में उन्होंने अपने लेख 'स्वदेशी समाज' में अपना सामाजिक दर्शन पेश किया। उन्होंने ग्रामीण जीवन के बिखराव पर चिन्ता व्यक्त करते हुए इसका कारण खोज निकालने की कोशिश की साथ ही उन्होंने ग्रामीण पुनर्गठन के ठोस सुझाव भी पेश किए।

लेकिन 1911 में लिखे गए उनके नाटक अचलायतन से ब्राह्मणवाद की रूढ़ियों की ओर उनके रूख में परिवर्तन दिखाई देता है। इसमें धर्म की सच्ची भावना की कीमत पर कठोर पुरोहितों द्वारा पालन किए जा रहे कर्मकाण्डों की आलोचना की गई। उनके बारे में कहीं गलतफहमी न पैदा हो जाए, इसलिए उन्होंने ललित कुमार बंदोपाध्याय द्वारा आलोचना के जवाब में स्पष्टीकरण दिया। टैगोर ने कहा कि उनके बारे में यह गलतफहमी नहीं होनी चाहिए कि वे मंत्रों और कर्मकाण्डों के खिलाफ हैं। ज्ञानार्जन और बौद्धिक कार्य में बाधा पहुँचाने वाले रीति–रिवाज़ों की सचमुच आलोचना की जानी चाहिए, लेकिन ऐसे रीति–रिवाज प्रशंसनीय हैं जो मानसिक क्षितिज बढ़ाते हैं और ज्ञान में सहायक होते हैं। यह रुझान 1916 में 'बालक' के काल में लिखी गई कविताओं में अधिक स्पष्ट हो जाती है। 'बालक' में वे युवाओं और दुस्साहसिक कार्यों के लिए गाते हैं, भौगोलिक भूत के रूप में राष्ट्रवाद का त्याग करते हैं और सार्वत्रिक मानवतावाद का समर्थन करते हैं। साथ ही वे पश्चिमी संस्कृति की संकुचित भावना स्वीकार नहीं करते और उपनिषदों की भावना से अलग नहीं होते।

यह और भी दिलचस्प है कि 1920 के दशक के मध्य में उन्होंने दो प्रसिद्ध नाटक उस समय लिखे जब श्रीनिकेतन प्रयोग चल रहा था। ये थे 1922 में मुक्तोधारा और 1924 में रक्तकरबी। इनमें मशीनी सभ्यता के प्रति उनकी आपत्ति दीख पड़ती है। दोनों ही में वे प्रकृति पर मशीनी टेक्नॉलॉजी के प्रभुत्व से चिन्तित हैं। तकनीकी प्रभुत्व वाले समाज के शोषण के चरित्र के प्रति तिरस्कार की उनकी भावना स्पष्ट है। वे 1930 में रूस गए और फिर दो प्रसिद्ध लेख लिखे–1933 में 'शिक्षार बिकिरन' और 1936 में 'शिक्षार स्वांगीकरन'। 'शिक्षार स्वांगीकरन' में उन्होंने अपने पहले के कई विचार दोहराए जो उनके विचार में अभी भी प्रासंगिक थे। वास्तव में, शोधकर्ता अधिकतर उद्धरण इन्हीं दो लेखों से देते हैं। इससे पहले के उनके लेख 'शिक्षार हेरफेर' ओर इन दोनों में कोई मूल अन्तर नहीं हैं। उसी प्रकार उनकी प्रसिद्ध रचना 'तपोवन' और 1941 में लिखे 'आश्रमेर शिक्षा' में कोई मूल अन्तर नहीं है। 'टैगोर की शिक्षा सम्बन्धी विचार प्रक्रिया में कोई मूलभूत दार्शनिक परिवर्तन' खोज पाना मुश्किल है, जैसा कि विश्वभारती के एक भूतपूर्व उपाचार्य कहते हैं। लेकिन यह सम्भव है कि शिक्षा सम्बन्धी उनके विचारों में विकास के साथ इस या उस पहलू पर जोर सन्दर्भ की माँग के अनुसार बढ़ गया।

बुनियादी शिक्षा

विश्वभारती क्वार्टरली के 1947 के विशेषांक में टैगोर और गाँधी के शिक्षा सम्बन्धी विचारों एवं प्रयोगों के बारे में दो लेख छपे। इन्हें अनाथनाथ बसु और सुनीलचन्द्र सारकिर ने लिखा था। ये दोनों ही लेख शिक्षाप्रद हैं

लेकिन गाँधी और टैगोर के बीच अन्तर को कम करके पेश किया गया है। सारकिर लिखते हैं, दोनों की प्रणालियों की तुलना से पता चलता है कि उनमें खून के रिश्तों जैसे सम्बन्ध हैं, और जो अन्तर हैं उन्हें हल किया जा सकता है.....। बसु ने अन्तर के मुख्य मुद्दों को इस प्रकार हल करने की कोशिश की, ''जहाँ तक व्यवहार के सिद्धान्त का प्रश्न है, दोनों दर्शन एकमत हैं। लेकिन जहाँ व्यावहारिक सिद्धान्त अधिक सचेत तरीके से प्रयुक्त हुआ है और पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया गया है, वहाँ टैगोर इसकी विस्तृत व्याख्या नही करते और न ही इसके गिर्द स्पष्ट पाठ्यक्रम निर्मित करते हैं.... यहाँ अन्तर शायद इस कारण से है कि टैगोर शिक्षा का दर्शन पेश कर रहे थे, न कि पाठ्यक्रम बनाने का सिद्धान्त।'' यह तर्क विश्वस्त करने वाला बिलकुल नहीं है। गाँधी के लिए यह सिर्फ व्यावहारिकता का सिद्धान्त या इस पर आधारित पाठ्यक्रम निर्मित करने की बात नहीं थी। बात इससे कहीं अधिक थी। गाँधी मुनाफा देने वाले उत्पादक कार्य के जरिए शिक्षा प्रदान करना चाहते थे। उनके अनुसार मुख्य प्रश्न आत्मसन्तुष्टि का था। गाँधी के अनुसार, ''शारीरिक काम की ट्रेंनिग का उद्देश्य स्कूल म्यूजियम के लिए वस्तुएँ बनाना या खिलौने बनाना नहीं होगा, जिसका कोई मूल्य न हो। इसका उद्देश्य ऐसी वस्तुएँ बनाना होना चाहिए। जो बेंची जा सकें। बच्चे इसे फैक्टरी के शुरुआती दिनों की तरह नहीं करेंगे जब वे चाबुक के डर से काम किया करते हैं। वे इसलिए काम करेंगे कि इससे उनका मनोरंजन होता है और बौद्धिक प्रेरणा मिलती है।'' गाँधी के लिए बेसिक शिक्षा उनके राजनीतिक कार्यक्रम का एक अवयव थी। उनके अनुसार वर्तमान शिक्षा में तीन त्रृटियाँ थीं; एक, यह विदेशी संस्कृति पर निर्भर था, जिसने स्थानीय संस्कृति लगभग समाप्त कर दी थी; दूसरा, यह दिल और हाथ की संस्कृति की उपेक्षा करके पूरी तरह दिमाग तक ही सीमित रहता है; और तीसरा, विदेशी माध्यम में असली शिक्षा असम्भव है। उन्होंने 1921 में यंग इंडिया में लिखा कि उनकी कल्पना की शिक्षा ''तीन उद्देश्य पूरा करेगी : शिक्षा को आत्मनिर्भर बनाना; बच्चों के शरीर एवं दिमाग दोनों ही का विकास करना और विदेशी धागे और कपड़ों के पूर्ण बहिष्कार का रास्ता खोलना, इस प्रकार बच्चों को आत्मनिर्भर एवं स्वतंत्र बनने के लिए तैयार करना।'' उन्होंने आगे कहा, ''ऐसे स्कूलों में बच्चों का खेल हल जोतना होगा। यह विचार कि यदि हमारे लड़के और नौजवान फुटबाल, क्रिकेट और इसी प्रकार के अन्य खेल नहीं खेलेंगे तो उनका जीवन नीरस हो जाएगा, बिलकुल गलत है।'' गाँधी ने लिखा, मेरी योजना है कि धागा बुनने और कार्डिंग, इत्यादि जैसे ग्रामीण हस्तशिल्प के जरिए प्राइमरी शिक्षा प्रदान की जाए और उन्हें दूरगामी शान्त सामाजिक क्रान्ति का मुख्य ज़रिया बनाया जाए जिसके गहरे नतीजे होंगे।

कुछ प्रश्न

1 गांधी जी की बुनियादी शिक्षा क्या है?

2 गांधी जी के अनुसार तात्कालीन शिक्षा के तीन त्रुटियां क्या–क्या थी?

लेकिन टैगोर गाँधी द्वारा आत्मनिर्भर स्कूल पर मूल ज़ोर से सहमत नहीं थे। उन्होंने 29 दिसम्बर 1937 को कलकत्ता विश्वविद्यालय के सीनेट हाऊस में हुई न्यू एजुकेशन फेलोशिप की एक बैठक को लिखे एक सन्देश में यह विचार अस्वीकार कर दिया। उनके विचार में बेसिक शिक्षा की योजना का अधिक जोर व्यक्तिगत विकास के बजाए भौतिक ज़रूरतों पर था। वे ऐसी शिक्षा का समर्थन करने को तैयार नहीं थे। जिसमें खेलों का स्थान उत्पादक कार्य ले ले और बच्चों की मेहनत से अर्जित आय का एक हिस्सा शिक्षकों को दे दिया जाए। गाँधी और टैगोर के बीच जीवन तथा कार्य के प्रति रूख में मूलभूत अन्तर था। यह जानना और भी दिलचस्प है कि वर्धा सम्मेलन में जाकिर हुसैन ने भी अपने भाषण में शंका प्रकट की, ''इसके फलस्वरूप शिक्षक गुलामी ढोने वाले लोग बन जाएँगे और गरीब लड़कों की मेहनत का शोषण करेंगे। यदि ऐसा हुआ तो तकली किताबों से भी बुरी साबित होगी। और हम अपने देश में एक छिपी गुलामी की व्यवस्था के आधार के निर्माण में लग जाएँगे।'' के. टी. शाह ने भी कहा, ''.....रहने की वर्तमान बुराई का स्थान एक ऐसी बुराई ले लेगी जिसमें छात्रों से अधिक कार्य कराया जाएगा और उनके श्रम का अनुचित शोषण होगा। यह चुपचाप लेकिन अवश्यंभावी रूप से होगा और शिक्षा का असली उद्देश्य पीछे चला जाएगा।'' वास्तव में वे दोनों ही आर्थिक विकास के रास्ते के विषय में गाँधी

से मतभेद रखते थे। शाह ने लिखा कि, ''शारीरिक कार्य पर ज़ोर देना अपनी जगह पर है, लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हम मशीनी युग में रहते हैं। इसलिए यदि आप हाथ से काम पर बहुत ज़्यादा जोर देते हैं और मशीन को दूर रखते हैं तो यह देश के आर्थिक विकास के लिए हानिकारक होगा।'' इसमें आश्चर्य नहीं कि वर्धा कमेटी रिपोर्ट ने आत्मनिर्भर शिक्षा के गाँधी के सिद्धान्त को हल्का बना दिया। ऐसा गाँधी की इस चेतावनी के बावजूद किया गया, ''यदि आप समझते हैं कि मशीनें सचमुच अनिवार्य हैं तो आपको मेरी स्कीम अस्वीकार कर देनी चाहिए और नई स्कीम का सुझाव देना चाहिए।''

प्रश्न

रविन्द्रनाथ टैगोर गांधी जी के बुनियादी शिक्षा से किन–किन मुद्दों पर असहमत थे?

घर और स्कूल के बीच संबंध और बच्चों की आत्मनिर्भरता

गाँधी की योजना का महत्व समझने के लिए आत्मनिर्भर शिक्षा के बारे में कुछ शब्द कहना ज़रूरी होगा। सभी भारतीय नेताओं में गाँधी और सिर्फ गाँधी ही ने शिक्षा को श्रमिकों की दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया। गाँधी और अन्य में यही अन्तर है। गाँधी का यह विश्वास सही था कि श्रमिक परिवारों के बच्चे अपने माता–पिता की मदद के लिए अपनी इच्छा से काम करते हैं। वे जानते हैं कि काम नहीं होने का मतलब खाना भी नहीं। यदि ''मुनाफा देने वाले उत्पादक श्रम'' पर आधारित गाँधी की योजना सार्वत्रिक रूप से लागू की जाती तो इससे कृषि समाज में बालश्रम अवश्य ही समाप्त हो जाता। इससे उत्पादन सम्बन्धों में खेतिहर मज़दूरों की स्थिति मज़बूत हो जाती। भूस्वामियों के खिलाफ अपने संघर्ष के दौरान समर्थन के लिए इससे एक आर्थिक आधार तैयार किया जा सकता था। लेकिन गाँधी ने इस पहलू को स्पष्ट नहीं किया, शायद इसलिए कि अहिंसा का उनका सिद्धांत वर्ग संघर्ष तेज करने की इजाजत नहीं देता। लेकिन उन्होंने माना कि ''इस प्रकार शिक्षित बच्चे आत्मनिर्भर हो जाएँगे। इससे घर और स्कूल के बीच निरन्तरता का सम्बन्ध कायम रहेगा।''

मशीन सभ्यता पर गांधी और टैगोर के विचार

मशीनी सभ्यता का गाँधी द्वारा विरोध व्यावहारिक नहीं था, हालाँकि समझ में आने वाली बात अवश्य थी। गाँधी इस समस्या के प्रति सचेत थे, जैसा कि उनकी कई रचनाओं से स्पष्ट था। वे मशीन के सीमित उपयोग से भी सहमत थे, जैसे सिलाई मशीन, जो बिना श्रमिक को हटाए श्रम की उत्पादकता बढ़ाए या जो श्रम को अपना गौण अंग न बना दे। वे मानव श्रम तथा प्राकृतिक शक्तियों पर मशीन के प्रभुत्व के खिलाफ थे। यह शायद सही है कि टैगोर को भी मशीनी सभ्यता के प्रति कुछ आपतियाँ थीं, जैसा कि उनके नाटक मुक्तोधारा ओर रक्तकरबी में स्पष्ट होता है। दार्शनिक दृष्टि से दोनों ही मशीनी सभ्यता के खिलाफ थे, खासकर इसके शोषण और उपभोक्तावादी चरित्र के। शायद टैगोर आवश्यकता के प्रति अधिक संवेदी थे, और इसलिए आधुनिकीकरण से सहमत थे लेकिन सीमित अर्थों में ही। आखिर थे तो वे एक कवि, और राजनीति उनका क्षेत्र नहीं था। दूसरी ओर गाँधी ने शारीरिक श्रम की नैतिकता पर आधारित राजनीतिक दर्शन का विकास किया। इसे उपनिवेशवाद के आर्थिक और सांस्कृतिक प्रभुत्ववादी शोषण के विकल्प के रूप में विकसित किया गया। गाँधी स्वतः–स्फूर्त संवेदी तरीके से श्रमिकों की मानसिक दुनिया से जुड़े हुए थे। वे अपना राजनीतिक दर्शन ग्रामीण समाज में श्रमिकों की आवश्यकता और आकांक्षाओं की लय के साथ विकसित करना चाहते थे। शारीरिक श्रम पर उनका ज़ोर बड़े महत्व का है क्योंकि श्रमिकों के पास यही एकमात्र पूँजी होती है। बड़े पैमाने के उद्योगों का निर्माण आगे और बढ़ाने के लिए दूसरों का श्रम छीनकर किया जाता है। श्रम का विमानवीय किया जाता है और उसे खरीद–बिक्री की वस्तु बना दिया जाता है।

आत्मनिर्भर शिक्षा और शैक्षिक प्रयोग

गाँधी के विचार में आधुनिक मशीनी सभ्यता अनैतिक थी और आखिर विनाश की ओर ले जाएगी। इस सम्बन्ध में सभी गाँधी से सहमत नहीं होंगे। लेकिन औद्योगिक रूप से विकसित समाजों में मानव मूल्यों का ह्रास

और सांस्कृतिक पतन स्पष्ट है। इसे नज़रअन्दाज नहीं किया जा सकता। यदि हम अधिक व्यापक प्रश्नों को छोड़ भी दें तो इतिहास और हाल की घटनाओं ने हमारे जैसे देश में आत्मनिर्भर शिक्षा की आवश्यकता की पुष्टि की है। अपने शान्तिनिकेतन प्रयोग में टैगोर की विफलता का मुख्य कारण उन धनी माता–पिताओं की अनुचित माँगों के आगे झुकना था जिनके बच्चों को आर्थिक कारणों से भर्ती करना पड़ा था। दिलचस्प बात यह है कि श्रीनिकेतन प्रयोग आरम्भ करने के लिए उन्हें विदेश से एमहर्स्ट द्वारा लाई गई वित्तीय सहायता पर निर्भर होना पड़ा था। सी.एफ. एंड्रयूज ने इसका अनुमोदन नहीं किया। लेकिन इस प्रयोग की विफलता के कारणों पर विद्वानों ने अभी ठीक से विचार नहीं किया। बिना शक, ग्रामीण पुनर्गठन श्रीनिकेतन प्रयोग का मुख्य उद्देश्य था। टैगोर के शब्दों में, 'स्वदेशी समाज' शीर्षक से अपने लेख में मैने कहा है कि हमें गाँव को केन्द्र में रखकर अपना राष्ट्रीय जीवन पुनर्गठित करना है। लेकिन अपनी डेरी, मुर्गी–पालन और कृषि सुधार स्कीमों के बावजूद श्रीनिकेतन आत्मनिर्भर नहीं हो सकता। टैगोर का दूसरा शैक्षिक प्रयोग 'शिक्षा सत्र' थोड़े ही समय में सामान्य स्कूल में बदल गया। टैगोर की अपेक्षा के विपरीत, शान्तिनिकेतन स्कूल ने अपना अनुसन्धानकारी प्रयोगवादी चरित्र काफी पहले खोते हुए भी कुछ आर्कषण बनाए रखा। शायद यह कुलीन (इसे कलकत्ता पढ़िए) सम्पर्कों के कारण था, जबकि 'शिक्षा सत्र' भुला दिया गया।

कृषि समाज की कार्य–संस्कृति और आत्मनिर्भर शिक्षा

इस सन्दर्भ में आत्मनिर्भर शिक्षा के गाँधी के विचारों पर संक्षिप्त विचार प्रासंगिक होगा। उत्पादक कार्य के ज़रिए पढ़ते वक्त एक छात्र कितना कमा लेगा, इसका हिसाब लगाने की कोशिश की गई। यह पाया गया कि दूसरे वर्ष से एक छात्र काम करके एक आना प्रति घण्टे कमा सकता है। इसका अर्थ हुआ कि एक महीने में 26 दिन चार घण्टे प्रतिदिन के हिसाब से काम करके वह महीने में कुल छह रूपए आठ आने कमा सकता है। बेसिक शिक्षा स्कीम में एक शिक्षक का मासिक वेतन 25 रुपए तय किया गया था। यदि 25 छात्र अपनी मासिक आय में से प्रति व्यक्ति (छात्र) दो रु. देते हैं तो दो शिक्षक रखे जा सकते हैं। फिर भी उनके पास प्रति माह चार रुपए आठ आने बच रहेंगे। 1930 के दशक में बंगाल में एक खेतिहर मज़दूर 20 रुपए प्रति माह कमाया करता। जूट की खेती के सीजन के उच्च बिन्दु पर सबसे अधिक वेतन 11 आना प्रतिदिन था। सीजन खत्म होते–होते यह तीन आना प्रति दिन पर आ जाया करता। खेतिहर मजदूर को सूर्योदय से सूर्योस्त तक काम करना पड़ता था जिसके बीच आधे से एक घण्टा खाने की छुटटी हुआ करती। उस वक्त पूर्वी बंगाल में चावल सात सेर प्रति रुपए के हिसाब से मिला करता और बर्दवान में 11 सेर प्रति रुपए के। तो यह कहा जा सकता है कि एक छात्र आसानी से प्रति माह एक मन (38 किलो) चावल कमा सकता था। एक खेतिहर मज़दूर के परिवार के लिए बिना शक यह बहुत बड़ी मदद होती। यदि इतना चावल मिल जाए तो इन परिवारों के बच्चे माड़ पसारा हुआ चावल (पंथा) खाकर स्कूल जा सकते हैं। जो लोग ग्रामीण बंगाल के जीवन से अवगत हैं वे इस प्रकार की कमाई का महत्व समझेंगे। मेहतनकश परिवारों के बच्चों को यदि खाने को उचित मात्रा में भोजन मिल जाए तो वे खुशी–खुशी काम करेंगे। वे काम करने से हिचकिचाते नहीं, बल्कि उन्हें इसकी आदत होती है। कृषि समाज में श्रम जीवन का तरीका होता है, सिर्फ कमाने का ज़रिया नहीं। कृषि समाज की कार्य–संस्कृति को समझे बगैर गाँधी की शिक्षा–स्कीम को समझना सम्भव नहीं।

खेल और साहसिक कार्य और काम

मेरे विचार में खेल और साहसिक कार्य टैगोर की शिक्षा के महत्वपूर्ण अवयव थे, जबकि गाँधी के लिए काम में ही खेल की भावना निहित थी। टैगोर की शिक्षा प्रणाली में प्रकृति और संगीत, ड्रामा, पेंटिंग, नृत्य इत्यादि का महत्वपूर्ण स्थान था। गाँधी भी संगीत और कलाकारी को महत्वपूर्ण स्थान देते थे, लेकिन वे शारीरिक दक्षता और उत्पादक कार्य में सौन्दर्य की खोज करते थे। उनकी विचार प्रक्रिया में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रश्न हमेशा ही आपस में गुंथे रहते थे। टैगोर अपन झुकाव के अनुरूप आराम की संस्कृति की वकालत किया, करते, जबकि गाँधी अपने स्वभाव के अनुसार कार्य की संस्कृति पर जोर देते। इस सम्बन्ध में उन दोनों के बीच मूलभूत अन्तर था। लेकिन दोनों ही प्रेम और आजादी को बड़ा महत्व देते। दोनों ने पश्चिमी उपभोक्तावाद को अस्वीकार

कर दिया। सादा जीवन और शारीरिक श्रम गाँधी के मानवीय मूल्यों के मूल अवयव थे। टैगोर भी सादा जीवन और श्रम के सम्मान की प्रशंसा किया करते, लेकिन आराम अर्थपूर्ण जीवन के उनके विचार का केन्द्र था। जैसा कि एक विद्वान ने कहा है कि टैगोर शायद ''भक्ति मार्ग'' पर चल रहे थे जबकि गाँधी 'कर्म मार्ग' पर।

अभ्यास

1 महात्मा गांधी और रवीन्द्रनाथ टैगोर के शिक्षा दर्शन की तुलना/ तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कीजिए।

2 'शिक्षा का माध्यम' पर टैगोर और गांधी के विचारों को लिखिए।

3 टैगोर द्वारा स्थापित 'शान्तिनिकेतन' और 'शिक्षा सत्र' के उद्देश्यों, सफलता–असफलता के बारे में एक समीक्षात्मक नोट लिखिए।

|||||||||

स्वामी दयानंद सरस्वती

अध्याय – 21

आर्य समाज सुधार आंदोलन का शिक्षा दर्शन/शिक्षा में योगदान

अध्याय की रूपरेखा

- सामान्य परिचय
- अध्याय के उद्देश्य
- वेद शिक्षण
- अंग्रेजी का महत्व
- शिक्षा का उद्देश्य
- बालिका शिक्षा
- अभ्यास

सामान्य परिचय

रविन्द्रनाथ टैगोर तथा महात्मा गांधी के शिक्षा दर्शन से अवगत होने के बाद आइये अब हम आर्य समाजियों के शिक्षा दर्शन से एक संक्षिप्त परिचय प्राप्त करें। आर्य समाज सुधार आंदोलन स्वामी दयानन्द सरस्वती के विचारो से प्रेरित था। स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार कोई भी व्यक्ति बिना वेदो को समझे ईश्वर, ध र्म और विज्ञान को नही समझ सकता क्योंकि उनके अनुसार वेद सभी विज्ञानों का आधार है। वेद समझे बगैर सच्चा ज्ञान प्राप्त करना सम्भव नही। आर्य समाज सुधार आन्दोलन के तहत बालिका शिक्षा के लिए किए गए प्रयासों से भी आप अवगत होंगे।

अध्याय के उद्देश्य

1. आर्य समाज का शिक्षा में योगदान को समझना।

2. बालिका शिक्षा के लिए आर्य समाज द्वारा किए प्रयासों को जानना।

आर्य समाज सुधार आंदोलन स्वामी दयानन्द सरस्वती के विचारो से प्रेरित था। स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार कोई भी व्यक्ति बिना वेदो को समझे ईश्वर, धर्म और विज्ञान को नही समझ सकता क्योंकि उनके अनुसार वेद सभी विज्ञानों का आधार है। वेद समझे बगैर सच्चा ज्ञान प्राप्त करना सम्भव नही।

वेद शिक्षण

(अक्टूबर 1883) स्वामी दयानन्द की मृत्यु के पश्चात दयानंद एग्लो– वैदिक कालेज की स्थापना की गई। जहां अंग्रेजी भाषा के साथ–साथ वेदों को भी पढ़ाया जाता था। कई स्कूलों की स्थापना की गई जिनमें सुधारे/परिष्कृत हिन्दूवाद को पढ़ाया जाता था। उन्होंने वैदिक स्कूलों को उन सभी बुराईयों को दूर करने का उपाय माना जो बाल–विवाह, विधवा विवाह पर पाबंदी, विवाहों पर होने वाले अत्यधिक खर्च से उत्पन्न होती है। पर इनका यह विश्वास भी था कि अगर हमारे बच्चें वेदों से परिचित होंगे तो कभी दूसरे धर्म के तरफ नही झुकेंगे। न ही वे शराबी और व्याभीचारी बनेंगें।

अंग्रेजी का महत्व

आर्य समाजियों ने नए दौर में अंग्रेजी के महत्व को भी समझा और इंग्लिश पढ़ाने को वैदिक स्कूलो के लिए एक अत्यधिक लाभ के रूप में देखा क्योंकि इससे छात्रों को आकर्षित करना आसान था और वेदों के अध्ययन की सुविधा इन स्कूलों को एक विशेष आकर्षण प्रदान करती थी। क्योंकि अंग्रेजी भाषा का ज्ञान न केवल विज्ञान

को सुलभ कराऐगा साथ ही छात्रों को आधुनिक युग के उत्तम राष्ट्र के विचारो से भी अवगत कराऐगा।

इन उद्देश्यों से अंग्रेजी व संस्कृत भाषाओं को एंग्लों–आर्य स्कूल में पढ़ाया जाता था। लेकिन अरबी और फारसी का विरोध किया गया। संस्कृत का पुनरूत्थान फारसी के त्याग का कारण बना और अंग्रेजी को भविष्य का एक आधुनिक युगद्वार के रूप में देखा गया जबकि संस्कृत को वैदिक युग को समझने की कुंजी माना गया। संस्कृत का ज्ञान वैदिक जानकारियों को प्राप्त करने और उनके आधार पर रूढ़िवादी ब्राहम्णों को शास्त्रार्थ में पराजित करने के काम भी आया और सार्वजनिक शास्त्रार्थ के लिए रूढ़िवादी ब्राहमणों को चुनौतिया दी जाने लगी।

संस्कृत, देवनागरी लिपी और हिन्दी की मांग का समर्थन, ब्राहमण समाज और रूढ़िवादी नेताओं ने भी किया। हिन्दू समुदाय में आर्य समाज के शैक्षणिक प्रयोगों को आम सहमति मिली।

शिक्षा का उद्देश्य

आर्य समाजियों में कुछ का प्रयास था कि शिक्षा का उददेश्य विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग और आम जनता के बीच की खाई को दूर करना भी होना चाहिए जिससे एक संगठित हिन्दू समुदाय का पुनुरूत्थान होगा। इसलिए शिक्षा का प्राथमिक उददेश्य शिक्षित और अशिक्षित वर्ग को साथ लाना होना चाहिए। जिसके लिए राष्ट्रीय भाषाओं व बोलियों का अध्ययन होना चाहिए। और नैतिक और आध्यात्मिक ज्ञान के लिए संस्कृत का अध्ययन करना चाहिए व देश की तरक्की के लिए भौतिक विज्ञान व अन्य का व्यवहारिक विज्ञान को भी पढ़ा जाना चाहिए। साथ ही अंग्रेजी का अध्ययन विश्व के साथ तालमेल बनाने के लिए। आर्य समाजियों का शिक्षा को लेकर यह एक सूत्र रहा।

बालिका शिक्षा

1890 में बालिका शिक्षा पर आर्य समाज में प्रयास शुरू कर दिए थे। आर्य कन्या पाठशाला का विस्तार किया गया। छात्रावास, कन्या आश्रम खोले गए। जिनमें पंजाब से लेकर पूना की छात्राएं आने लगी। और इन स्कूलों को मिली सफलता ने कन्या महाविद्यालय स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित किया। 1896 में लाला देवराज और मुंशीराम दो आर्य समाजियों ने कन्या महाविद्यालय की स्थापना की। कन्या आश्रम में विवाहित, अविवाहित और विधवाओं सभी को प्रवेश पाने का प्रावधान था। बालिका शिक्षा में साक्षरता के साथ–साथ लड़किया सिलाई, कढ़ाई, चित्रकला, खाना बनाना, संगीत, कविता, खेल, गणित, स्वच्छता और समाज के धार्मिक साहित्य को पढ़ना भी सीखती थी। कुछ छात्राए बीच में ही पढ़ाई छोड़ देती थी परन्तु कुछ अपनी पढ़ाई पूरी करती थी और फिर दूसरे स्कूलों में शिक्षिका का काम करने लगती थी। बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए कन्या महाविद्यालय का अपने स्नातकों से आग्रह था कि वें अपने घरो में स्कूल खोले और लड़कियों को पढ़ाएं।

1898 में पंचाल पंडिता नामक हिन्दी मासिक पत्रिका शुरू किया गया। जिसका उददेश्य महिला शिक्षा का प्रचार प्रसार करना था। इसके अलावा कन्या महाविद्यालय ने कई तरह पठन सांमग्री प्रकाशित की और ये एक महत्वपूर्ण प्रयास था जो महिला की पारम्परिक छवि को बदलने के लिए किया गया था । महाविद्यालय नें अपनी छात्राओं, शिक्षिकाओं और प्रकाशन के माध्यम से शिक्षिका बालिका को एक वास्तविकता में तबदील कर दिया।

अभ्यास कार्य

1 आर्य समाज के शिक्षा के उद्देश्यों तथा महत्व पर प्रकाश डालिए।

2 आर्य समाज ने वैदिक स्कूलों के लिए अंग्रेजी पढ़ाना क्यों आवश्यक समझा?

3 आर्य समाजियों के द्वारा बालिका शिक्षा के लिए किए गए प्रयासों को लिखिए।

स्वामी दयानंद सरस्वती

अध्याय – 21

आर्य समाज सुधार आंदोलन का शिक्षा दर्शन/शिक्षा में योगदान

अध्याय की रूपरेखा

- सामान्य परिचय
- अध्याय के उद्देश्य
- वेद शिक्षण
- अंग्रेजी का महत्व
- शिक्षा का उद्देश्य
- बालिका शिक्षा
- अभ्यास

सामान्य परिचय

रविन्द्रनाथ टैगोर तथा महात्मा गांधी के शिक्षा दर्शन से अवगत होने के बाद आइये अब हम आर्य समाजियों के शिक्षा दर्शन से एक संक्षिप्त परिचय प्राप्त करें। आर्य समाज सुधार आंदोलन स्वामी दयानन्द सरस्वती के विचारो से प्रेरित था। स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार कोई भी व्यक्ति बिना वेदो को समझे ईश्वर, ध र्म और विज्ञान को नही समझ सकता क्योंकि उनके अनुसार वेद सभी विज्ञानों का आधार है। वेद समझे बगैर सच्चा ज्ञान प्राप्त करना सम्भव नही। आर्य समाज सुधार आन्दोलन के तहत बालिका शिक्षा के लिए किए गए प्रयासों से भी आप अवगत होंगे।

अध्याय के उद्देश्य

1. आर्य समाज का शिक्षा में योगदान को समझना।

2. बालिका शिक्षा के लिए आर्य समाज द्वारा किए प्रयासों को जानना।

आर्य समाज सुधार आंदोलन स्वामी दयानन्द सरस्वती के विचारो से प्रेरित था। स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार कोई भी व्यक्ति बिना वेदो को समझे ईश्वर, धर्म और विज्ञान को नही समझ सकता क्योंकि उनके अनुसार वेद सभी विज्ञानों का आधार है। वेद समझे बगैर सच्चा ज्ञान प्राप्त करना सम्भव नही।

वेद शिक्षण

(अक्टूबर 1883) स्वामी दयानन्द की मृत्यु के पश्चात दयानंद एग्लो– वैदिक कालेज की स्थापना की गई। जहां अंग्रेजी भाषा के साथ–साथ वेदों को भी पढ़ाया जाता था। कई स्कूलों की स्थापना की गई जिनमें सुधारे/परिष्कृत हिन्दूवाद को पढ़ाया जाता था। उन्होंने वैदिक स्कूलों को उन सभी बुराईयों को दूर करने का उपाय माना जो बाल–विवाह, विधवा विवाह पर पाबंदी, विवाहों पर होने वाले अत्यधिक खर्च से उत्पन्न होती है। पर इनका यह विश्वास भी था कि अगर हमारे बच्चें वेदों से परिचित होंगे तो कभी दूसरे धर्म के तरफ नही झुकेंगे। न ही वे शराबी और व्याभीचारी बनेंगें।

अंग्रेजी का महत्व

आर्य समाजियों ने नए दौर में अंग्रेजी के महत्व को भी समझा और इंग्लिश पढ़ाने को वैदिक स्कूलो के लिए एक अत्यधिक लाभ के रूप में देखा क्योंकि इससे छात्रों को आकर्षित करना आसान था और वेदों के अध्ययन

की सुविधा इन स्कूलों को एक विशेष आकर्षण प्रदान करती थी। क्योंकि अंग्रेजी भाषा का ज्ञान न केवल विज्ञान को सुलभ कराऐगा साथ ही छात्रों को आधुनिक युग के उत्तम राष्ट्र के विचारो से भी अवगत कराऐगा।

इन उद्देश्यों से अंग्रेजी व संस्कृत भाषाओं को एंग्लों–आर्य स्कूल में पढ़ाया जाता था। लेकिन अरबी और फारसी का विरोध किया गया। संस्कृत का पुनरूत्थान फारसी के त्याग का कारण बना और अंग्रेजी को भविष्य का एक आधुनिक युगद्वार के रूप में देखा गया जबकि संस्कृत को वैदिक युग को समझने की कुंजी माना गया। संस्कृत का ज्ञान वैदिक जानकारियों को प्राप्त करने और उनके आधार पर रूढ़िवादी ब्राहम्णों को शास्त्रार्थ में पराजित करने के काम भी आया और सार्वजनिक शास्त्रार्थ के लिए रूढ़िवादी ब्राहमणों को चुनौतिया दी जाने लगी।

संस्कृत, देवनागरी लिपी और हिन्दी की मांग का समर्थन, ब्राहमण समाज और रूढ़िवादी नेताओं ने भी किया। हिन्दू समुदाय में आर्य समाज के शैक्षणिक प्रयोगों को आम सहमति मिली।

शिक्षा का उद्देश्य

आर्य समाजियों में कुछ का प्रयास था कि शिक्षा का उददेश्य विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग और आम जनता के बीच की खाई को दूर करना भी होना चाहिए जिससे एक संगठित हिन्दू समुदाय का पुनुरूत्थान होगा। इसलिए शिक्षा का प्राथमिक उददेश्य शिक्षित और अशिक्षित वर्ग को साथ लाना होना चाहिए। जिसके लिए राष्ट्रीय भाषाओं व बोलियों का अध्ययन होना चाहिए। और नैतिक और आध्यात्मिक ज्ञान के लिए संस्कृत का अध्ययन करना चाहिए व देश की तरक्की के लिए भौतिक विज्ञान व अन्य का व्यवहारिक विज्ञान को भी पढ़ा जाना चाहिए। साथ ही अंग्रेजी का अध्ययन विश्व के साथ तालमेल बनाने के लिए। आर्य समाजियों का शिक्षा को लेकर यह एक सूत्र रहा।

बालिका शिक्षा

1890 में बालिका शिक्षा पर आर्य समाज में प्रयास शुरू कर दिए थे। आर्य कन्या पाठशाला का विस्तार किया गया। छात्रावास, कन्या आश्रम खोले गए। जिनमें पंजाब से लेकर पूना की छात्राएं आने लगी। और इन स्कूलों को मिली सफलता ने कन्या महाविद्यालय स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित किया। 1896 में लाला देवराज और मुंशीराम दो आर्य समाजियों ने कन्या महाविद्यालय की स्थापना की। कन्या आश्रम में विवाहित, अविवाहित और विधवाओं सभी को प्रवेश पाने का प्रावधान था। बालिका शिक्षा में साक्षरता के साथ–साथ लड़किया सिलाई, कढ़ाई, चित्रकला, खाना बनाना, संगीत, कविता, खेल, गणित, स्वच्छता और समाज के धार्मिक साहित्य को पढ़ना भी सीखती थी। कुछ छात्राए बीच में ही पढ़ाई छोड़ देती थी परन्तु कुछ अपनी पढ़ाई पूरी करती थी और फिर दूसरे स्कूलों में शिक्षिका का काम करने लगती थी। बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए कन्या महाविद्यालय का अपने स्नातकों से आग्रह था कि वें अपने घरो में स्कूल खोले और लड़कियों को पढ़ाएं।

1898 में पंचाल पंडिता नामक हिन्दी मासिक पत्रिका शुरू किया गया। जिसका उददेश्य महिला शिक्षा का प्रचार प्रसार करना था। इसके अलावा कन्या महाविद्यालय ने कई तरह पठन सांमग्री प्रकाशित की और ये एक महत्वपूर्ण प्रयास था जो महिला की पारम्परिक छवि को बदलने के लिए किया गया था । महाविद्यालय नें अपनी छात्राओं, शिक्षिकाओं और प्रकाशन के माध्यम से शिक्षिका बालिका को एक वास्तविकता में तबदील कर दिया।

अभ्यास कार्य

1 आर्य समाज के शिक्षा के उद्देश्यों तथा महत्व पर प्रकाश डालिए।

2 आर्य समाज ने वैदिक स्कूलों के लिए अंग्रेजी पढ़ाना क्यों आवश्यक समझा?

3 आर्य समाजियों के द्वारा बालिका शिक्षा के लिए किए गए प्रयासों को लिखिए।

इकाई 6

अध्याय – 22

वर्तमान छत्तीसगढ़ में पालक शिक्षक संघ (पी.टी.ए.) की भूमिका शालेय प्रबन्धन एवं विकास में सामुदायिक सहभागिता

छत्तीसगढ़ शासन/स्कूल शिक्षा विभाग/स्कूल शिक्षा विभाग मंत्रालय/F6-30/08/20 क्रमांक 807/20/2008 रायपुर, दिनाँक 15.5.08 के अनुसार। वर्तमान में प्रारंभिक स्तर की शालाओं के लिए शिक्षा के अधिकार अधिनियम 2009 के अनुसार शाला प्रबंधन समिति के गठन एवं दायित्व के संबंध में पृथक से आदेश जारी किये गए हैं। जिसे द्वितीय वर्ष के पाठ्यक्रम में पढ़ेगें।

अध्याय की रूपरेखा

- सामान्य परिचय
- अध्याय के उद्देश्य
- समितियां
  - कक्षावार मूल्यांकन एवं गुणवत्ता विकास समिति
  - पालक शिक्षक संघ
  - शाला प्रबंधन एवं विकास समिति
- अभ्यास कार्य
- परियोजना कार्य

सामान्य परिचय

वर्तमान छत्तीसगढ़ में पालक शिक्षक संघ की भूमिका तथा शालेय प्रबंधन एवं विकास में सामुदायिक सहभागिता की वर्तमान व्यवस्था को समझने के लिए छत्तीसगढ़ शासन/स्कूल शिक्षा विभाग/स्कूल शिक्षा विभाग मंत्रालय/F6-30/08/20 क्रमांक 807/20/2008 रायपुर, दिनाँक 15.5.08 के पत्र का का विस्तार से अध्ययन करेंगे। यहां यह उल्लेखनीय है कि छत्तीसगढ़ राज्य ने शिक्षा के सार्वजनीकरण के लिए शासन की नीति अनुसार सभी गाँव, मंजरों तथा टोलों में प्रारम्भिक स्कूल की व्यवस्था कर दी है। अब केवल जनसंख्या वृद्धि के कारण आवश्यकतानुसार प्रारम्भिक स्तर की शालाएँ खोली जाएँगी। कई जगह हाई तथा हायर सेकण्डरी स्कूल अभी भी खोलने की आवश्यकता है। इसके लिए शासन योजनाबद्ध तरीके से निश्चित समय में स्कूल की व्यवस्था करने हेतु कार्यरत है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद के अध्ययन के अनुसार छत्तीसगढ़ राज्य का औसत अधिगम सभी कक्षा और सभी विषयों में राष्ट्रीय औसत से लगभग 10 प्रतिशत पीछे है। डाईस 2006–07 के अनुसार उच्च प्राथमिक स्तर पर शालात्याग दर 50 प्रतिशत से अधिक है। बच्चों की अनुपस्थिति चिन्ताजनक विषय है। विभागीय समीक्षा तथा शिक्षकों से चर्चा के अनुसार समुदाय तथा विशेषकर पालकों के बीच शिक्षा के प्रति जागरूकता की कमी तथा अनास्था के कारण यह स्थिति बनी हुई है।

एक ओर अधिकांश गाँवों में यह स्थिति है तो दूसरी ओर कई गाँवों में समुदाय तथा पालकों ने सहभागिता में कमाल किया है। शिक्षक तथा वरिष्ठ अधिकारियों की पहल से समाज आगे आया है। स्कूल की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु दान दिए हैं। गुणवत्ता वृद्धि हेतु सुविधाएँ बढ़ाई हैं तथा शाला प्रबन्धन में महत्वपूर्ण भूमिका

निभाई है। इसका असर बच्चों की उपस्थिति पर पड़ा है। कुछ तो ऐसे गाँव हैं जहाँ 6–14 वर्ष के सभी बच्चे शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। आने वाले कुछ वर्षों में इन स्कूलों की गुणवत्ता भी अवश्य सुधरी हुई नजर आएगी। आइये देखें कि इसके लिए छत्तीसगढ़ राज्य में किस–किस तरह के प्रावधान किए गये हैं।

अध्याय के उद्देश्य

1 शाला प्रबंधन एवं विकास के लिए शालाओं में गठित विभिन्न समितियों की जानकारी रखना।

2 यह समझना कि ये समितियां किस प्रकार बच्चों के हित में कार्य करती हैं।

3 यह समझना कि ये समितियां वर्तमान में शाला और समुदाय के संबंधों को मजबूत करने में कितना सक्षम है तथा इसे और भी सुदृढ़ करने के लिए किस तरह के प्रयास करने की आवश्यकता है।

सफलता की कहानियों की पुनरावृत्ति सम्पूर्ण राज्य में हो इसलिए जन भागीदारी एवं विकास समिति की संरचना एवं कार्य विधि में व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता है। यदि बच्चों को गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा नहीं मिली तो उसकी हानि बच्चों के पालकों व परिवारों को उठानी पड़ती है। इसलिए सभी समितियों में पालकों को ही प्राथमिकता दी जाना आवश्यक है। उसी प्रकार गाँव स्तर पर ग्राम पंचायत वैधानिक संस्था है। अतः सरपंच तथा पंचों को समितियों में शीर्ष भूमिका देना नियमानुकूल होगा। इससे गाँवों में मतभेद भी कम होंगे तथा आवश्यकतानुसार शाला विकास हेतु ग्राम पंचायत बड़े पैमाने पर निधि निवेश भी करेगा।

कियाकलाप

शाला में तथा कक्षा में बनने वाली समितियों के नामों की सूची बनाइये।

इन समितियों के अध्यक्ष कौन होते हैं?

किस–किस समिति में कितने सदस्य होते हैं?

इस समितियों के क्या–क्या कार्य होते है?

इनकी बैठकें कब–कब होती है? इसी तरह की अन्य जानकारी जो आपको पता चले। एकत्र करें।

अब आपकी जानकारी का मिलान शासन द्वारा जारी निम्नांकित आदेश से कीजिए–

(1) समिति के नाम – प्रत्येक शाला में तीन प्रकार की समितियाँ होंगी –(माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक शालाओं के लिए)

1. कक्षावार मूल्यांकन एवं गुणवत्ता विकास समिति या कक्षा समिति।
2. पालक–शिक्षक संघ
3. शाला प्रबन्धन एवं विकास समिति (School Management and Development Committee) या प्रमुख समिति

(2) उद्देश्य

1. शाला के प्रबन्धन एवं विकास में सामुदायिक सहभागिता बढ़ाना।
2. स्कूल के शैक्षिक गुणवत्ता के विकास हेतु समयबद्ध कार्ययोजना बनाना, उसका क्रियान्वयन तथा मॉनीटरिंग करना व शिक्षा की गुणवत्ता सुधार हेतु आवश्यकतानुसार सभी क्रियाकलाप करना।

3. शिक्षा प्रशासन के साथ मिलकर स्कूल के व्यवस्था एवं अनुशासन में सुधार करना।

(3) व्यापकता –

1. प्रत्येक शाला हेतु अलग–अलग समितियाँ होंगी।
2. ये समितियाँ प्राथमिक, उच्च प्राथमिक, हाई तथा हायर सेकण्डरी स्कूलों के लिए होंगी।
3. संलग्न स्कूलों में केवल एक ही समिति होगी।

(4) सदस्यता – समितियों की सदस्यता निम्नानुसार होगी।

कक्षावार मूल्यांकन एवं गुणवत्ता विकास समिति

1. प्रत्येक कक्षा के पालकों की समितियाँ होंगी।
2. कक्षा शिक्षक द्वारा बच्चों को प्रदर्शन के आधार पर अ तथा ब वर्गों में बाँटा जाएगा। प्रत्येक वर्ग के बच्चों के पालक समिति के सदस्य नियुक्त किए जाएँगे। कक्षा में 20 से कम विद्यार्थी होने पर 2 अन्यथा 3 पालकों की नियुक्ति की जाएगी।
3. प्रत्येक वर्ग के पालकों का मनोनयन सरपंच तथा प्रधान पाठक द्वारा किया जाएगा।
4. मनोनीत सदस्यों में कम से कम आधी संख्या महिलाओं की होंगी।
5. कक्षा में अनुसूचित जनजाति/ अनुसूचित जाति तथा अल्पसंख्यक समुदाय के बच्चे होने पर इन प्रवर्गों के पालकों का मनोनयन अनिवार्य होगा।
6. समिति के सदस्यों द्वारा अध्यक्ष का चयन किया जाएगा।
7. कक्षा शिक्षक इस समिति के सदस्य सचिव होंगे।
8. पहली कक्षा की समिति प्रत्येक वर्ष सितम्बर माह के पूर्व गठित करना अनिवार्य होगा।
9. कक्षा समिति हर वर्ष बदली जाएगी।
10. कक्षा समिति की बैठक प्रत्येक माह होगी।
11. कक्षा समिति के कार्यों का मूल्यांकन प्रमुख समिति करेगी एवं आवश्यकतानुसार सदस्य बदलने का कार्य करेगी।
12. कक्षा के बच्चों का मूल्यांकन वर्ष में कम से कम 3 बार किया जाना है। यह मूल्यांकन इस समिति के देख –रेख में किया जाएगा।
13. मूल्यांकन उपरान्त परिणामों पर कक्षा समिति में चर्चा होगी तथा प्रत्येक बच्चे की गुणवत्ता सुधार हेतु कार्य योजना निम्न सारणी में बनाई जाएगी।
14. कार्य योजना का क्रियान्वयन कक्षा समिति द्वारा किया जाएगा।

कियाकलाप

कक्षावार मूल्यांकन एवं गुणवत्ता विकास समिति को प्रभावी बनाने के लिए जो प्रावधान बिन्दु क्र. 1 से 14 तक किए गए हैं उन सभी बिन्दुओं के बारे में अपनी एक राय लिखें , जो आपके कार्यरत शाला के अवलोकन पर आधारित हो।

शिक्षक पालक संघ

सभी कक्षा समितियों के सभी सदस्यों को मिलाकर शिक्षक पालक संघ गठित किया जाएगा। प्रमुख समिति के अध्यक्ष संघ के भी अध्यक्ष होंगे। इसके अलावा सदस्यों द्वारा संघ के उपाध्यक्ष का चयन किया जाएगा जो अध्यक्ष की अनुपस्थिति में सर्वाधिकार सम्पन्न होगा।

संघ के कार्य –

1. शिक्षक पालक संघ की बैठक प्रत्येक मूल्यांकन के बाद होना अनिवार्य होगा।
2. शालेय प्रबन्धन एवं विकास सम्बन्धित कार्ययोजना तथा उसके क्रियान्वयन की समीक्षा करना।
3. कक्षा समितियों को अधिक क्रियाशील तथा कारगर बनाने हेतु मार्ग दर्शन तथा प्रशिक्षण देना।
4. बच्चों में आकादमिक कौशल, जीवन कौशल तथा मानवीय मूल्यों के विकास हेतु कार्य योजना के बिन्दु सुझाना।
5. उपरोक्त कार्यों हेतु पालकों में जागरूकता निर्माण करना।

कियाकलाप

शाला में गठित शिक्षक पालक संघ के बारे में निम्नलिखित जानकारी एकत्र कीजिए–

- शिक्षक पालक संघ का गठन कब हुआ?
- वर्ष भर में ऐसी कितनी बैठकें हुई जिसमें बच्चों के मूल्यांकन संबंधी चर्चा हुई? इस बैठक का सार लिखें।
- क्या समिति ने शालेय प्रबन्धन एवं विकास सम्बन्धित कार्ययोजना तथा उसके क्रियान्वयन की समीक्षा की?
- यदि हां तो उसका सार लिखें।
- पालकों में जागरूकता निमार्ण के लिए अपना सुझाव लिखें।

शाला प्रबन्धन एवं विकास समिति अर्थात् प्रमुख समिति

अध्यक्ष

1. ग्राम पंचायत क्षेत्र के स्कूलों के लिए
    1. ग्राम पंचायत में एक ही स्कूल होने पर सरपंच अथवा कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति इस समिति के अध्यक्ष होंगे। प्रतिष्ठित व्यक्ति का चयन प्रमुख समिति के पालक सदस्य करेंगे।
2. ग्राम पंचायत अन्तर्गत एक से अधिक स्कूल होने पर सरपंच ग्राम पंचायत मुख्यालय की सभी समितियों का अध्यक्ष होगा।

3. पंचायत के अन्य गाँव/मंजरा/टोला स्थित स्कूलों के समितियों में स्थानीय पंच अध्यक्ष होंगे। ऐसे गाँव/मंजरा/टोला में एक से अधिक पंच हैं तो सरपंच द्वारा मनोनीत पंच समिति के अध्यक्ष होंगे।

4. स्कूल स्थित गाँव/मंजरा/टोला में निर्वाचित सरपंच/पंच न होने की स्थिति में सरपंच द्वारा मनोनीत पास ही के गाँव/मंजरा/टोला का पंच समिति का अध्यक्ष होगा।

2. नगरीय निकायों के लिए

शहरी निकायों के स्कूलों में स्थानीय पार्षद अथवा शहरी निकाय के प्रतिष्ठित व्यक्ति अध्यक्ष होंगे। प्रतिष्ठित व्यक्ति का चयन प्रमुख समिति के पालक सदस्य करेंगे।

सदस्य सचिव – शाला के प्राचार्य/प्रधान अध्यापक पदेन सदस्य सचिव होंगे।

कोषाध्यक्ष – समिति के सदस्य सचिव द्वारा मनोनीत शाला का कोई शिक्षक/व्याख्याता/शिक्षाकर्मी कोषाध्यक्ष होगा।

अन्य सदस्य –

1. स्थानीय गाँव/मंजरा/टोला के अन्य निर्वाचित पंच में से अधिकतम दो सदस्य।

2. सभी कक्षा समितियों के अध्यक्ष।

3. सम्बन्धित गाँव/मंजरा/टोला के स्कूल में यदि अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अल्पसंख्यक समुदाय के स्कूल उम्र के बच्चे हैं तो मनोनीत/निर्वाचित सदस्यों में प्रत्येक समुदाय का कम से कम एक सदस्य होना आवश्यक होगा। यदि समितियों में इन समुदाय के लोगों का प्रतिनिधित्व पहले से हो तो इन्हें पुनः समिति में लेने की आवश्यकता नहीं है।

4. गाँव/मंजरा/टोला/नगरीय निकाय से ही शिक्षण गतिविधि में रुचि रखने वाले 3 मनोनीत युवाओं को प्रमुख समिति के सदस्य मनोनीत किया जाएगा (अधिकतम आयु सीमा 35 वर्ष), जिसमें कम से कम एक युवती का होना अनिवार्य होगा, इन शिक्षित युवाओं का मनोनयन समिति के पालक सदस्यों द्वारा किया जाएगा।

कुछ प्रश्न

1. शाला में गठित सभी प्रकार के समितियों में महिलाओं के चयन तथा नियुक्तियों के बारे में क्या–क्या प्रावधान है? समितिवार लिखिए।

2. ग्राम पंचायत क्षेत्र तथा नगरीय निकायों के लिए गठित शाला प्रबंधन एवं विकास समिति में अध्यक्ष कौन–कौन होते हैं?

कोरम –

बैठक हेतु पालक सदस्य में से एक तिहाई सदस्यों तथा मनोनीत युवा में से कम से कम एक सदस्य की उपस्थिति अनिवार्य होगी।

कार्यकाल –

जिस सत्र में समिति का गठन हो उसके प्रारम्भ अर्थात् एक जुलाई से समिति का कार्यकाल 3 वर्षों के लिए होगा। कार्यकाल की समाप्ति समिति निर्माण उपरान्त तीसरे शैक्षणिक सत्र की समाप्ति के साथ होगी।

सदस्यता से मुक्ति –

1. सचिव को त्यागपत्र देकर कोई भी सदस्य अपनी सदस्यता समाप्त कर सकेगा।
2. बिना पर्याप्त कारण के लगातार तीन बैठकों में अनुपस्थित रहने पर सदस्यता समाप्त हो जाएगी। इसकी सूचना सम्बन्धित सदस्य को सचिव द्वारा दी जाएगी।
3. पालक सदस्य के सभी पाल्यों के स्कूल छोड़ देने पर अथवा लगातार एक माह अनुपस्थित रहने पर उनकी सदस्यता समाप्त हो जाएगी जिसकी सूचना सचिव द्वारा दी जाएगी। बच्चे की शारीरिक अस्वस्थता/बीमारी में यह शिथिलनीय होगा।
4. किसी भी सदस्यता के समाप्त होने पर शेष पालक सदस्यों द्वारा उसी प्रकार के सदस्यों का मनोनयन किया जाएगा जिस प्रकार के सदस्य की सदस्यता समाप्त हुई है। ऐसे मनोनीत सदस्यों की सदस्यता मूल समिति के साथ समाप्त हो जाएगी।

बैठक –

1. समिति की बैठक सत्र के प्रारम्भ में तथा उसके अतिरिक्त प्रत्येक तीन माह में कम से कम एक बार बुलाई जाएगी।
2. सदस्यों के सुझाव पर अथवा अध्यक्ष के चाहने पर अथवा स्वविवेक से सचिव द्वारा समिति की बैठक आवश्यकतानुसार बुलाई जाएगी।
3. समिति की प्रत्येक बैठक का ब्यौरा इस कार्य के लिए रखी गई पुस्तिकाओं में सचिव द्वारा अंकित किया जाएगा। और उस पर अध्यक्ष तथा सचिव के हस्ताक्षर होंगे।

समिति का कार्यक्षेत्र –

सम्बन्धित शाला के विद्यार्थियों के प्रवेश से सम्बन्धित ग्राम अथवा शहर जहाँ अन्य शाला नहीं हो।

शाला प्रबन्धन एवं विकास समिति के कार्यः–

1. वे सभी कार्य करना जो शाला के कार्यक्षेत्र के सभी बच्चों के शैक्षिक विकास के लिए आवश्यक एवं उपयोगी हो।
2. शाला की भौतिक आवश्यकताओं जैसे श्यामपट, सजावट, रंगाई–पुताई, फर्नीचर, शैक्षिक सामग्री तथा उपकरण आदि उपलब्ध कराना। इस हेतु शाला विकास निधि, ग्राम पंचायत निधि तथा सामुदायिक सहभागिता से प्राप्त निधि का उपयोग करना।
3. शालेय प्रांगण में बाग–बगीचा, फुलवारी, झूले, फिसलपट्टी इत्यादि निर्माण कर उसका अनुरक्षण करना।
4. विद्यार्थियों के लिए शासन द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सामग्रियों जैसे – पाठ्यपुस्तक, गणवेश, छात्रवृत्ति, बीमानिधि, सायकल, टाटपट्टी, फर्नीचर, स्टेशनरी, मूत्रालय, शौचालय, पेयजल इत्यादि समय पर प्राप्त कर वितरण करना। शासन द्वारा प्रदत्त सामग्रियों की व्यवस्था एवं वितरण की मानिटरिंग करना। शासन से सामग्रियाँ समय पर सही मात्रा में प्राप्त नहीं होने पर वरिष्ठ अधिकारी तथा शासन का ध्यान आकृष्ट करना।

प्रश्न

यदि आप किसी शाला प्रबंधन एवं विकास समिति के अध्यक्ष/सदस्य होते तो बच्चों के शैक्षिक विकास के लिए क्या–क्या करते? सूची बनाइये।

मध्यान्ह भोजन व्यवस्था (प्रारंभिक कक्षाओं के लिए)

1. मध्यान्ह भोजन का साप्ताहिक/पाक्षिक/मासिक मीनू तैयार करना तथा नियमित गरम–स्वादिष्ट भोजन की उपलब्धता बनाए रखना।
2. मध्यान्ह भोजन कार्यक्रम का पर्यवेक्षण करना।
3. कार्यक्रम के अन्तर्गत प्राप्त खाद्यान्न, पकाने का खर्च, खाना बनाने के बर्तन, बच्चों की ऊँचाई एवं वज़न नापने की मशीनों का शासन के निर्देशानुसार रिकॉर्ड रखा जाना सुनिश्चित करना।
4. मध्यान्ह भोजन पकाने वाली एजेन्सी के कार्यों का पर्यवेक्षण करना एवं आवश्यकतानुसार कुकिंग एजेन्सी बदलना/तय करना।
5. बच्चों, पालकों एवं शिक्षकों के साथ चर्चा कर मौसम के अनुसार मीनू तय करना।
6. कार्यक्रम में जन सहयोग की सम्भावनाएँ खोजना एवं उसके लिए कार्य योजना बनाना।
7. शाला के उपलब्ध संसाधनों का उपयोग कार्यक्रम को सुदृढ़ बनाने के लिए करना। (सब्ज़ी उगाने के लिए शाला प्रागंण में बाड़ी लगाना, किचन शेड निर्माण हेतु प्रागंण में स्थान चिह्नित करना। बच्चों के बैठने की जगह चिह्नित करना इत्यादि)

सभी बच्चों के शैक्षिक विकास हेतु

1. शाला की परीक्षाओं में नकल पर रोक लगाना।
2. कक्षा समिति के माध्यम से शालेय मूल्यांकन में ईमानदारी स्थापित करना।
3. मूल्यांकन उपरान्त सभी बच्चों की अकादमिक प्रगति हेतु कार्ययोजना बनाना तथा उसे क्रियान्वित करना।
4. इस कार्ययोजना के क्रियान्वयन में सहयोग नहीं करने वाले शिक्षकों बाबत वरिष्ठ अधिकारियों को प्रमाण सहित जानकारी उपलब्ध कराना।
5. बच्चों के अकादमिक मार्गदर्शन एवं मदद हेतु शालेय कार्य में उत्साही युवक/युवतियों का समूह तैयार कर उनकी मदद लेना।
6. बच्चों में जीवनकौशल, जैसे, समय प्रबन्धन, समस्या हल करने का कौशल, संवाद कौशल, निर्णय कौशल, कड़ी मेहनत का कौशल, सकारात्मक सोच का कौशल, समस्या हल का कौशल, सृजनशीलता इत्यादि हेतु कार्य करना।
7. सभी बच्चे नियमित उपस्थित रहें इस हेतु पालकों में जागृति तथा शिक्षकों में संवेदनशीलता निर्माण करना।
8. बच्चों की निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करना तथा कक्षाओं में उनकी नियमित उपस्थिति सुनिश्चित करना।
9. सभी बालिकाएँ शिक्षा ग्रहण करें इस ओर विशेष ध्यान देना।
10. शाला में भ्रमण पंजी (Movement Register) सन्धारण की व्यवस्था क्रियान्वित करना। इस पंजी में शाला

के बाहर जाने वाले प्रधान पाठक/प्राचार्य, शिक्षकों तथा अन्य कर्मचारी जाने के पूर्व, जाने तथा वापस आने के दिनाँक का कार्यविवरण के साथ स्पष्ट लेख करेंगे। कोई कर्मचारी अवकाश के आवेदन बिना अनुपस्थित हो तथा भ्रमण पंजी में भी नाम न हो तो उसे अनाधिकृत अनुपस्थित मानते हुए इस ओर वरिष्ठ अधिकारियों का ध्यान आकृष्ट करना।

11. प्रत्येक माह के अन्त में वेतन भुगतान प्रमाण पत्र पर हस्ताक्षर करते समय अनाधिकृत अनुपस्थित दिनों, तथा शैक्षिक योजना के क्रियान्वयन में यदि असहयोग की गई हो, तो उसका टीप देना।

12. प्रत्येक वर्ष के शुरू में वर्षान्त तक प्राप्त की जाने वाली गुणवत्ता सुधार कार्यक्रम का विज़न तैयार करना। जैसे –

	इस वर्ष की प्राप्ति	अगले वर्ष (सत्रान्त) का विज़न
नामांकन	100%	100%
उपस्थिति	20% बच्चे अनियमित	अनियमित बच्चों की संख्या शून्य
गुणवत्ता	20% A ग्रेड 30% E ग्रेड	50% A ग्रेड 0% E ग्रेड

13. सही गुणवत्ता प्राप्त करने वाले शिक्षकों को समुदाय द्वारा प्रोत्साहन हेतु इत्यादि प्रदान करना।

अभ्यास

1 शालाओं में गठित की जाने वाली समितियों के नाम लिखिए। इनमें से किसी एक समिति के गठन, उद्देश्यों एवं कार्यों को विस्तार से लिखिए।

2 उपरोक्त बिन्दु क्र. 12 के अनुसार किसी शाला के लिए गुणवत्ता सुधार कार्यक्रम का एक विजन तैयार कीजिए। तथा इसे प्राप्त करने के लिए एक कार्ययोजना बनाइये।

|||||||||